पीअर रिव्यूड एंड रेफेरीड जर्नल

ISSN 2231-1351

PADCHINHA

पदचिन्ह

जनवरी 2025 वर्ष - 14 अंक - 1

https://www.muditeducation.com/padchinha

Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

R.N.I. UPHIN/2011/37086 ISSN 2231-1351

Impact Factor (IIFS): 8 **बहुविषयक पीअर रिव्यूड एंड रेफेरीड जर्नल**

पदचिन्ह PADCHINHA

जनवरी (Jan.) 2025 वर्ष (Vol.): 14 अंक (Issue): 1

संपादक

डॉ. अजय परमार

B-30/239 नगवां, लंका, वाराणसी-221005

padchinhahindi@gmail.com

सह-संपादक

डॉ. पंकज कुमार सिंह

मुदित बाल विद्यालय, त्रिमूर्ति नगर

वर्धा (महाराष्ट्र). पिन कोड - 442001

Mob. 9823696685 **gandhikhadi@gmail.com**

www.muditeducation.com/Padchinha

© पदचिन्ह में व्यक्त विचार और सर्वाधिकार लेखकों के अपने हैं। प्रकाशित विचारों से संपादक व संपादक-मंडल की सहमति अनिवार्य नहीं है। उक्त सभी पद अवैतनिक हैं। किसी भी वाद-विवाद का न्याय क्षेत्र वाराणसी होगा।

संपादक-मंडल/ रेफेरीड बोर्ड

प्रो. प्रेमनारायण सिंह
निदेशक
अंतर विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षा केंद्र
बी. एच. यू. वाराणसी (उ. प्र.) पिन - 221005

प्रो. नृपेन्द्र प्रसाद मोदी
पूर्व अधिष्ठाता, संस्कृति विद्यापीठ
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

डॉ. मनोज कुमार राय
एसोसिएट प्रोफेसर, गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

डॉ. गोविन्द प्रसाद वर्मा
सहायक प्रोफेसर, मानविकी और भाषा संकाय
महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी
(बिहार) पिन - 845401

डॉ. उमेश कुमार सिंह
वर्धा समाज कार्य संस्थान
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन-442001

डॉ. रणजीत कुमार
सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
मौलाना मजहरूल हक अरबी व फारसी विश्वविद्यालय
पटना (बिहार) पिन- 800001

डॉ. प्रदीप त्रिपाठी
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक
(सिक्किम) पिन-737102

डॉ. अमरेन्द्र त्रिपाठी
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
(उत्तर प्रदेश) पिन-211002

डॉ. परिमल प्रियदर्शी
अनुसंधान अधिकारी, शोध सहायता प्रकोष्ठ
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

डॉ. धीरेन्द्र कुमार राय
सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंप्रेषण विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ. प्र.) - 221005

डॉ. आशीष कुमार
संपादक, सृजन समय
बहुद्देशीय सामाजिक संस्था, वर्धा - 442001

डॉ. श्रीकांत जायसवाल
प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

सलाहकार समिति

डॉ. राजीव रंजन गिरि
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, कला संकाय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली - 110007

डॉ. निशीथ राय
सहायक प्रोफेसर, मानवविज्ञान विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन – 442001

डॉ. उमेश तिवारी
सहायक प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास,संस्कृति और
पुरातत्व विभाग, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय
भागलपुर (बिहार) पिन -812007

पदचिन्ह के लिए प्रकाशक अजय परमार, बी.- 30/239, नगवां, लंका वाराणसी द्वारा प्रकाशित और सूर्या आफसेट, 30, विवेकानंद कालोनी, मलदहिया, वाराणसी में मुद्रित। संपादक : अजय परमार

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal ISSN 2231-1351

पदचिन्ह PADCHINHA

Impact Factor (IIFS): 8

जनवरी (Jan.) 2025 वर्ष (Vol.): 14 अंक (Issue): 1

अनुक्रम

		पृष्ठ संख्या
	संपादकीय	
1.	Mahatma Gandhi's Lived Experiences and Public Health **_Dr. Puja Gupta**	05-12
2.	Social sustainability Unleashed: Decoding its role in the Future of Sustainable Development **_Shivani Singh _Shivangi Kashyap**	13-27
3.	आचार्य रामचंद्र शुक्ल : आलोचना की नयी विचारदृष्टी के अन्वेषक **_डॉ. पम्मी राय**	28-32
4.	भारतीय भाषाओं के अग्रदूत : बाबा नागार्जुन **_अमित कुमार**	33-39
5.	'बिहारी-सतसई' का लोकवृत्त **_जितेंत्र कुमार**	40-47
6.	सेक्स और जेंडर की सामाजिक संरचना : भारत में पहचान, भेदभाव और स्वीकृति के बदलते आयाम **_डॉ. स्मिता भगत**	48-55
7.	बस्तर क्षेत्र में पर्यावरण संचार व्यवस्था में मीडिया की भूमिका का मूल्यांकन **_डॉ. ओमप्रकाश _डॉ. नीलेश साहू**	56-63
8.	रघुवीर सहाय के गद्य में सत्ता विमर्श **_अरुण कुमार**	64-68
9.	Policy Gaps and Rehabilitation Challenges: Combating Drug Abuse in Hyderabad **_Md. Adiluddin Mukkarram**	69-74
10.	क्षेत्रीय और स्थानीय समाचारों की प्रासंगिकता और प्रभाव का अध्ययन **_डॉ. नीलेश साहू _डॉ. ओमप्रकाश**	75-85
11.	नर्मदा की उत्पत्ति का वृतांत : विस्तृत विवेचन **_Dr. Savitri Singh Parihar _Dr. Varun Kumar**	86-93
12.	हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श के स्वर **_अंजली**	94-105
13.	स्वामी विवेकानंद का शैक्षिक दर्शन और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन **_डॉ. समरजीत यादव**	106-113
14.	अध्यापक शिक्षा संस्थान के अध्येताओं की व्हाट्सऐप संलग्नता का अकादमिक प्रभाव **_डॉ. सारिका राय शर्मा _जेस्पेंदर सिंह**	114-123
15.	महर्षि पारस्कराचार्य मते संस्काराणां निरूपणम् **_डॉ. जगदीश नारायण तिवारी**	124-129
16.	आदिवासी महिलाओं की शैक्षिक और सामाजिक अस्मिता : संथाल जनजाति का एक अध्ययन **_पिन्टू कुमार**	130-141
17.	Socio-Economic assessment of Manjhi Fishing Community: A Case Study in Sankara Village of Raigarh District, Chhattisgarh **_Sandeep Kumar Sahu**	142-157
18.	गोपालदास नीरज: कविता, गीत और संवेदना के सम्राट **_अनुराग सिंह**	158-164
19.	भगवतीचरण वर्मा और उनका साहित्यिक परिवेश **_जुली कुमारी**	165-170
20.	सामाजिक सरोकारों का कहानीकार : सुदर्शन **_डॉ. अजीत कुमार सिंह**	171-174

संपादकीय

नववर्ष के प्रथम अंक *पदचिन्ह (जनवरी 2025)* में आपका स्वागत है। यह अंक विविध विषयों पर शोध और विमर्श का समृद्ध संकलन प्रस्तुत करता है, जो न केवल अकादमिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक चेतना को भी गहन बनाने वाला है।

इस अंक में प्रस्तुत शोध-पत्र हमें विभिन्न दृष्टिकोणों से समाज, संस्कृति और साहित्य को देखने की प्रेरणा देते हैं। *डॉ. पूजा गुप्ता* का शोध "Mahatma Gandhi's Lived Experiences and Public Health" गांधीजी के जीवनानुभवों को स्वास्थ्य दृष्टि से पुनर्परिभाषित करता है और आज की जनस्वास्थ्य नीतियों के लिए प्रासंगिक संदर्भ प्रस्तुत करता है। इसी क्रम में *शिवानी सिंह* और *शिवांगी कश्यप* का आलेख "Social Sustainability Unleashed" सतत विकास की भविष्य यात्रा में सामाजिक स्थिरता की केंद्रीय भूमिका को उद्घाटित करता है।

साहित्यिक परंपरा और आलोचना के क्षेत्र में भी यह अंक उल्लेखनीय है। *डॉ. पम्मी राय* द्वारा आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना-दृष्टि का विवेचन, *अमित कुमार* द्वारा बाबा नागार्जुन के बहुभाषिक योगदान का अध्ययन और *जितेंद्र कुमार* द्वारा 'बिहारी-सतसई' का लोकवृत्त—हिंदी साहित्य की गहरी परंपरा और उसके बहुआयामी स्वरूप को सामने रखते हैं। इसी धारा में *डॉ. स्मिता भगत* का आलेख "सेक्स और जेंडर की सामाजिक संरचना" सामाजिक पहचान, भेदभाव और स्वीकृति के बदलते आयामों पर गंभीर विमर्श प्रस्तुत करता है।

मीडिया और संचार की भूमिका पर केंद्रित आलेखों में *डॉ. ओमप्रकाश* और *डॉ. नीलेश साहू* का बस्तर क्षेत्र में पर्यावरण संचार व्यवस्था का मूल्यांकन तथा क्षेत्रीय और स्थानीय समाचारों की प्रासंगिकता पर अध्ययन विशेष उल्लेखनीय है। ये शोधपत्र मीडिया की सामाजिक जिम्मेदारी और उसकी प्रभावशाली भूमिका को नए सिरे से समझने का अवसर देते हैं।

इस अंक में *अरुण कुमार* द्वारा रघुवीर सहाय के गद्य में सत्ता विमर्श, *Md. Adiluddin Mukkarram* द्वारा हैदराबाद में नशा मुक्ति की चुनौतियाँ, तथा *डॉ. सवित्री सिंह परिहार* और *डॉ. वरुण कुमार* द्वारा नर्मदा की उत्पत्ति का विस्तृत विवेचन हमें गद्य, समाज और भूगोल—तीनों क्षेत्रों का संगम कराते हैं।

हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श पर *अंजली* का आलेख, स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक दर्शन और *नई शिक्षा नीति 2020* पर *डॉ. समरजीत यादव* का विश्लेषण, तथा *डॉ. सारिका राय शर्मा* और *जेस्पेंदर सिंह* का अध्ययन शिक्षण संस्थानों में *व्हाट्सऐप संलग्नता* के अकादमिक प्रभाव को उजागर करता है। इसी क्रम में *डॉ. जगदीश नारायण तिवारी* का संस्कृत शोध-पत्र *"महर्षि पारस्कराचार्य मते संस्काराणां निरूपणम्"* परंपरा और शास्त्र की ओर लौटने का आह्वान करता है।

सामाजिक अध्ययन की दृष्टि से *पिंटू कुमार* का संथाल जनजाति की महिलाओं पर शोध और *संदीप कुमार साहू* का मंझी मछुआरा समुदाय का केस स्टडी हमारे समाज के उपेक्षित वर्गों की समस्याओं और अस्मिता को सामने रखता है। वहीं साहित्यिक विरासत को पुनर्स्मरण कराते हुए *अनुराग सिंह* ने गोपालदास 'नीरज' की काव्य-संवेदना, *जुली कुमारी* ने भगवतीचरण वर्मा का साहित्यिक परिवेश, और *डॉ. अजीत कुमार सिंह* ने सुदर्शन की कहानियों के सामाजिक सरोकारों को पाठकों तक पहुँचाया है।

निःसंदेह, यह अंक विविध विषयों का ऐसा गुलदस्ता है जिसमें साहित्य, समाज, शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण और संस्कृति के ताजे और सुगंधित पुष्प समाहित हैं। हमें विश्वास है कि *पदचिन्ह* का यह अंक आपके बौद्धिक क्षितिज को विस्तृत करेगा और नए विमर्शों की दिशा में प्रेरणा देगा।

आप सभी पाठकों, लेखकों और शोधकर्ताओं का सहयोग और सहभागिता हमें निरंतर समृद्ध बनाता है। आपके सुझाव और मार्गदर्शन इस यात्रा में हमारे पथप्रदर्शक रहेंगे।

Mahatma Gandhi's Lived Experiences and Public Health

DR. PUJA GUPTA*

p.gupta@osou.ac.in

Abstract

This paper will focus on the fundamental approach to public health provided by Gandhiji. To understand the complexity of problems arising due to improper lifestyle, Mahatma Gandhi's perception on public health becomes important. Gandhiji's understanding of health includes his experiments and his lived experiences. Health for Gandhiji is not limited to physical wellbeing. For him, wellbeing is associated with all round development of an individual be it mind, body, proper working of inner organs, etc. According to Gandhiji mind has an essential role to play in health. It guides inner soul and spirit of an individual. Moreover, Gandhiji's notion on public health may find its relevance in the contemporary society as India is grappled with the double burden of both communicable and non-communicable diseases. Non-communicable diseases are the result of an individual's lifestyle where Social Determinants of Health (SDOH) creates a condition that leads to health disparity. Lifestyle is an important SDOH that affects health and well-being of an individual. Given this background, Gandhiji's lived experiences in health can serve as a catalyst for achieving developmental goals in public health. The developmental goals can be achieved by incorporating modification in behaviour and unhealthy lifestyle habits in the present society. Although his exclusive thought on health and education has widely been acknowledged worldwide, lack of awareness and guidance among the people is a major setback in this regard. Therefore, Gandhi's concept in public health forms an essential parameter in this study where an attempt has been made to understand patterns of healthy lifestyle practices adopted by Gandhiji and importance of religion that stands crucial in Mahatma

* **Assistant Professor, Odisha State Open University Sambalpur**

Gandhi's notion of public health. Understanding Gandhiji's writing especially on health and education is important as it provides a vision for emancipation of the ills of our society.

Keywords: Gandhi, Health, Lifestyle, Behaviour, Religion, Spirituality

Introduction

Health sector in India has made a significant progress with the combined efforts of both public and private sector to deal with life expectancy and maternal and child mortality. Although indicators like maternal and child mortality has shown substantial progress over the years, India is yet grappled with the double burden of both communicable and non-communicable disease (NCDs) also known as lifestyle disease (National Health Policy, 2017). According to WHO (2019) NCDs like cardiovascular disease, diabetics, chronic respiratory disease, cancer, results into 15 million death each year where 85% of these leads to premature death. NCDs are the result of genetic, psychological and environmental factors that affect people of all age group. Poor health status resulting due to NCDs also develops due to the social determinants ingrained within the structures of the society. The Social Determinants of Health (SDOH) include lifestyle, gender, culture, geographical location, etc. (Marmot et al. 2008). These factors are largely responsible for developing health disparity among various sections of society (WHO, 2008). Children in particular are at the greater risk of non-communicable disease due to increasing less physical activity and sedentary lifestyle (Hazza et al. 2011). Therefore, to deal with the problems of lifestyle among children, approaches towards prevention and management of lifestyle diseases serves a strategic measure in the interventional programme (Bijlani et al. 2005; Galal & Hulett, 2005).

Action for the intervention can be expanded through health promotion programme with defined objectives and valued outcomes (Nutbeam, 1998). Although the Ottawa Charter (1986) has added sophisticated analysis and range of action for health promotion, Mahatma Gandhi's understanding on health also serves a fruitful measure to promote health in contemporary society. His lived experience during three years stays in England was followed by good health practices with simple diet and physical activity.

Gandhi's concern for balanced diet became widely visible when he regularly published articles in *Young India and Harijan (1919, 1933)*. Through this column he emphasized the need for healthier food habits; he also presented his reader the benefits of nutritious food and his tried-out recipes that did not require elaborate preparation. Gandhi's belief and practices in health may find its relevance in the contemporary society while it can also pay a pivotal role in promotion of health which can serve as a catalyst to deal with sedentary lifestyle among the children.

Thus, the objective of this paper is to understand Gandhi's idea on health to deal with the problems of lifestyle diseases among children. The experiments and ideology of Gandhiji has also been highlighted to understand its relevance in the contemporary society.

Early life of Gandhiji

Mohandas Karamchandra Gandhi (1869-1948) popularly known as Mahatma Gandhi evokes the spirit of the Indian nationals even several years after his death in 1948. Gandhiji devoted most of his adult life in the liberation on India from British rule. He was an ardent believer of *Swaraj* or self-rule where he wanted his people to take responsibility for their own lives. In his remark, Gandhiji drew attention to the impulse of *Swaraj* to bring spiritual awakening within us and to follow the path from darkness to light, from untruth to truth through the cultivation of self. It is observed that Gandhiji had close association with *Gita*. He articulated his thought through the understanding of Gita in his various personal, social and political campaigns. Gandhiji was deeply inclined with the disciplined and good health practices. He found spirituality and nature as closely associated with the health of human which leads to the strengthening of inner soul and mind. With the passage of time, Gandhiji (1927) became convinced with the basic use of orthodox medicine where the method of nature cure provided more satisfactory alternative. In his Ashram also, he nursed hundreds of people personally and administered nature cure to them. For Gandhiji (1927), physical and mental illness within and individual were primarily due to his disharmony with nature. Therefore, the idea of religion and spirituality is closely associated with health, where he has mostly emphasized upon a healthy and prosperous mind.

Methodology

This study is based on primary and secondary data therefore multiple literatures have been referred for the same. The conception of Mahatma Gandhi's philosophical idea on health is undertaken in the concerned study. Literature search was done in available public domain such as Google Scholar, Jstor, using keywords like Gandhi and Health, relevance of Gandhi's concept of health in contemporary society. Information regarding the early life experience of Gandhi was gathered trough his autobiography *My Experiments with Truth* (1927), *Hind Swaraj* (1909), *Key to Health* (1948) etc.

Gandhi's concept of health

For Gandhiji (1948), a person is said to be healthy if his/her body is free from all disease and has ease to walk at least ten to twelve miles a day. Gandhi puts an emphasis on morals. He believes that person with perfect morals can achieve good health (Alter, 1996). Gandhiji also emphasised upon balanced diet. Food for Gandhiji (1948) is an essential aspect in health that brings stability in mind. Gandhi (1948) believed that there are many drawbacks in consuming meat and milk, as just like human body animals too carry innumerable disease. He believed meat eating is a colonial dietary practice. Therefore, people should not eat for the satisfaction of palate, as he believed that controlling one's palate is intimately correlated with controlling desire (Gandhi, 1948). In his book Key to Health (1948) Gandhiji recognizes the balanced integration of five elements which the ancient philosophers have stressed upon, these are: earth, water, akash (ether), light and air. For Gandhi (1948), all the activities of human body are aided by ten senses. Gandhiji (1948) recognizes thinking as a function of a mind as eleventh sense. These are five senses of action i.e. hands, feet, mouth, anus and the genitals, and five senses of perception, i.e. the sense of touch through skin, nose, tongue, eyes and hearing through ears. In health, the ten senses and the mind work in perfect coordination. Gandhi's consciousness on adopting basic health practices began during his stay in South Africa when his doctor friend Dr. Pranjivan Mehta used to treat Gandhiji with allopathic drugs for all kind of disease. He found that these drugs did not do any good to him due to which he lost faith in medicine. He became critical of allopathic medicine and regarded biomedicine as dangerous because it does not provide

holistic remedy for poor health. In his widely acknowledged book *Hind Swaraj* (1909) he said the doctors and lawyers are the profession created and developed by the colonial perspective. Although at one time he was enthusiastic towards medical profession, Gandhi later presumed it to be a part of a hegemony that these professions created in the minds of the people. He believes that the doctors have themselves given birth to disease by awakening the zeal of taking pills for every single disease which on the other can be relinquished by proper diet over time. For Gandhiji (1909), doctors do not serve the purpose of humanity in our civilization. Gandhiji (1948) also laid the importance of spiritual purity as a requirement of good health. Spiritual purity he underlines to be an important aspect of health that purifies the inner spirit of the people. He says that "the present science of medicine is divorced from religion". He further writes, a man who attends his prayer which may be in the form of Namaz or Gayatri in a proper spirit never gets ill. A clean spirit cleanses the body.

Gandhiji was extremely influenced by two important books on nature cure, Ludwig Kunne's *The New Science of healing* and Adolf Just's *Return to Nature.* As early as 1906, during his stay in South Africa, Gandhiji wrote an article on health in the *Indian Opinion* and later published them under the title *Guide to Health* (1921). During his stay in South Africa Gandhiji worked in a cottage hospital for a short period of time where he got an exceptional opportunity to observe the working of human body in health and disease. He solely attached to the principle of nature cure with enthusiasm. He believed that in country like India naturopathy should form a method of treatment for prolonged result and benefit in health. Gandhiji (1946) believed that nature cure is an ideal mode for sustaining a living whether in town or village. In the entire life of Gandhiji fasting became an integral part either in terms on nation's independence or health. Fasting for Gandhiji (1948) was not only a means to purify the body but also an approach for purifying the mind and spirit. Through fasting, Gandhiji discovered enormous potential in his direction. He used fast(ing) as a tool or weapon for the purification of not only his inner soul but also of others to draw the mind of the people in the path of virtue and justice. Charles (1979) evaluates the1942 civil disobedience movement when Gandhiji launched a movement against the British with the slogan "Quit India". Gandhi was held responsible for the violence. It was during the year 1943

February at the age of seventy-three Gandhiji undertook twenty-one days fast. Although he survived the fast, his health suffered insignificantly. Nutrition is yet another subject that Gandhiji had a profound interest. Gandhi (1948) conspicuously spent most part of his life to understand the subject of proper nutrition. In his book *Key to Health* (1948) Gandhiji provided a handful of knowledge regarding dietary practices and necessary things to avoid for prolonged life. Therefore, Gandhi's observation and understanding in health can help to deal with lifestyle diseases among children in India.

Relevance of Gandhi's concept of health in the lifestyle of children in India

Lifestyle is defined as a set of mediating structure that seeks to reflect upon activities, attitudes, social values, and an array of behavioural patterns depending upon age, education, economic and social factor, among other (Smith, 2006). Lifestyle in the contemporary society is considered to be integrated into the bodily regimens where people have become more responsible for both health and design of their bodies (Cockerham, 2005). Health, as perceived from the social model, is influenced by various factors like political, economic, social, psychological, cultural, and environmental (Booth et al. 2012). Gandhi (1948) principle idea on the dietary practices finds its relevance in the contemporary society where burgeoning burden of lifestyle disease like diabetics, cancer, cardiovascular disease has affected not only the adult member of society but also children across the globe (Singh & Nayak, 2015). SDOH like lifestyle can also be addressed by focusing Gandhi's concept of health. By emphasizing on Gandhi's belief on balanced diet can serve an essential part of health promotion programme in India. An important factor in Gandhi's ideology on health is that it is not limited to a particular section of the society. There is no denial fact that Gandhiji has provided numerous health care measures which can serve a means to the people in the contemporary society. Ironically not much are aware of the health care guidance provided by Gandhiji. His idea on health care measure is a need of an hour in the present era.

Discussion and Conclusion

Gandhi was a charismatic personality whose philosophical thought and scientific observation in the field of health, nutrition, education has been immense. He strongly

opposed the practices of western culture by adopting indigenous tradition not only in health but also in education. He frequently advocated the Indians about their abilities and also their strong tradition. This administered his voluntary engagement for *ahimsa* (non-violent) against British imperialism, untouchablility, and community service. Health forms an essential part of the social structure where the action by government, voluntary organization, socio-economic sector, local authorities, and media works in perfect coordination. Although Gandhiji was critical of modernisation and urged the Indians nationals to return to simple agrarian society, India as a part of British colonialism adopted the path of capitalist development (Chakrabarty, 2006). Under such circumstances, western influence of the colonization has become dominant over the traditional values of Indian society. He wanted to establish social change by uprooting modern practices in health care where he even denounced the profession of doctor. It is to be remembered that the presence of doctors in India is part of Indian civilization that were called *vaids.* Contemporarily technology has provided immense comfort in the life of the people where medical treatment can be provided within a short period of time. Although indigenous practices provide prolong benefit, it does not serve the interest of the people today. Gandhiji wanted to bring social change for the upliftment of the Indian tradition. The Ottawa charter for health promotion (1986) recognizes peace, shelter, education, food, income, a stable eco-system, sustainable resources, media and social justice and equity as prerequisites for health. Health promotion is the latest paradigm that aims to achieve equity in health. The guidelines provided by Ottawa charter find its association with Gandhi's philosophy on health. Since Gandhiji has provided numerous health care practices, not all can be the part of evolutionary model of social change in the contemporary society. People today are so much captivated by the modern practices that it is not possible to make a shift all at one. However, a special monitoring program by creating awareness can be emphasized and the benefits of indigenous practices should be imparted to the citizen for all round development and improving life style deficit of the people at large.

References:

1. Alter, J. S. (1996). Gandhi's body, Gandhi's truth: Nonviolence and the biomoral imperative of public health. *The Journal of Asian Studies, 55*(2), 301–322. https://doi.org/10.2307/2941175

2. Charles, K. J. (1979). Gandhi's views on health. *Journal of Religion and Health, 18*(1), 60–73. https://doi.org/10.1007/BF00924398

3. Bijlani, R. L., Vempati, R. P., Yadav, R. K., Ray, R. B., Gupta, V., Sharma, R., & Mahapatra, S. C. (2005). A brief but comprehensive lifestyle education program based on yoga reduces risk factors for cardiovascular disease and diabetes mellitus. *Journal of Alternative & Complementary Medicine, 11*(2), 267–274. https://doi.org/10.1089/acm.2005.11.267

4. Chakrabarty, B. (2006). *Social and political thought of Mahatma Gandhi*. Routledge.

5. Galal, O. M., & Hulett, J. (2005). Obesity among schoolchildren in developing countries. *Food and Nutrition Bulletin, 26*(2), S261–S266. https://doi.org/10.1177/15648265050262S209

6. Gandhi, M. K. (1927). *My experiments with truth*. Navajivan Publishing House.

7. Gandhi, M.K. (1941). *Constructive Programme its meaning and place*. Ahmedabad: India, Navajivan Publishing House

8. Gandhi, M.K. (1909). *Hind Swaraj*. New Delhi: India, Rajpal publishing

9. Gandhi, M.K. (1947). *India of My Dreams*. Ahmedabad: India, Navajivan Mudranalaya,

10. Gandhi, M.K. (1948). *Key to Health*. Ahmedabad: India, Navajivan Publishing House

11. Giddens, A. (1999). Risk. *Runaway World* (pp. 38-53). New York: Routledge

12. Giddens, A. (1984). Elements of the Theory of structuration. *The Constitution of Society*. (pp.1-28). University of California Press, Berkeley and Los Angeles

13. Kishwar, M. (1985). Gandhi on Women. *Economic and Political Weekly, 20* (41), 1753-1758

14. Koppedrayer, K. (2002). Gandhi's Autobiography as Commentary on the Bhagavad Gita. *International Journal of Hindu Studies*, *6*(1), 47-73

15. Mahakul, BK & Xaxa, J. (2009). Contemporary Relevance of Gandhism. *The Indian Journal of Political Science, 70*(1), 41-54

16. Mattausch, J. (2014). Gandhi's Prescription: Health and Hygiene in the Unfinished Struggle for Swaraj. *Sage Journal* Vol. 34(2), 155-169

17. Smith BJ, Tang KC, Nutbeam D. WHO health promotion glossary: new terms. Health promotion international. 2006 Dec 1;21(4):340-5.

18. World Health Organisation (November, 1986). The Ottawa Charter for Health Promotion. Retrieved from http://www.who.int/healthpromotion

Social sustainability Unleashed: Decoding its role in the Future of Sustainable Development

SHIVANI SINGH* **SHIVANGI KASHYAP†**
shivanisingh10bhu@gmail.com **shivi21kashyap@gmail.com**

Abstract

Sustainable development discourse has traditionally prioritized environmental and economic dimensions, often overlooking the critical role of the social pillar. This paper addresses social sustainability as a foundational and integrative component of sustainable development. Through interdisciplinary synthesis, it examines the conceptual evolution, theoretical roots, and practical frameworks that inform current understandings. Emphasizing social capital, equity, participatory governance, and resilience, the study draws on Sen's capabilities approach, Rawls' theory of justice, and the "just sustainabilities" paradigm to propose a human-centered model grounded in distributive and procedural justice. It further explores the risks of marginalizing social sustainability in urban planning, climate policy, and digital transformation. The paper advocates a multi-scalar framework to embed social sustainability into development practice, positioning it as essential for inclusive, just, and resilient futures.

Keywords: *Social sustainability, Just Sustainabilities, Social Capital, Capabilities Approach, Distributive Justice, Participatory Governance, Sustainable Development, Procedural Justice*

Social Sustainability as a Pillar of Global Development: An Introduction

The evolution of the sustainable development discourse has undergone a significant shift with the delayed yet essential integration of the "social" dimension. Initially, sustainable development focused largely on environmental protection and economic growth, often overlooking social complexities. This oversight limited the effectiveness of development strategies and prompted calls for a more holistic approach. Social sustainability, as part of the broader sustainable development agenda, emphasizes the

* **Research Scholar, Department of Political Science, B.H.U., Varanasi**

† **Research Scholar, Department of Political Science, B.H.U., Varanasi**

centrality of human well-being and societal equity. Over time, it has expanded to encompass human rights, education, health, housing, food security, cultural diversity, and inclusive participation (United Nations, 2015).

Now recognized as a fundamental pillar alongside environmental and economic sustainability, the social dimension fosters inclusive, just, and equitable societies. It promotes fairness, human rights, and access to resources, helping to prevent the uneven and unstable progress that results from social neglect (Dempsey et al., 2011). Grounded in human-centric values, social sustainability strengthens social cohesion, reduces inequalities, and encourages participatory governance (Dillard, Dujon, & King, 2009; Mancini, 2012). It aligns closely with the UN Sustainable Development Goals—particularly SDG 10 (reducing inequality) and SDG 16 (promoting peace, justice, and strong institutions)—underscoring the need to address poverty, gender disparity, and marginalization to realize sustainable development (Colantonio, 2010).

Core components include social inclusion, equitable resource access, human capital development, and community resilience (Colantonio & Dixon, 2011). These elements enable societies to better withstand economic or environmental shocks (Eizenberg & Jabareen, 2017). Moreover, social sustainability reduces tensions arising from inequality and exclusion, thereby enhancing political stability and long-term peace (Boström, 2012). It is both a moral obligation and a strategic requirement for sustainable progress. Academic interest has grown as its relevance in fostering intergenerational equity and fair resource distribution becomes more apparent (Missimer et al., 2017).

This paper explores social sustainability as a critical component of global development, examining its theoretical underpinnings, presence in policy frameworks like the SDGs, and its role in addressing poverty, exclusion, and inequality to promote a just and sustainable future.

Tracing the Trajectory: Theoretical Foundations of Social Sustainability

Conceptual Evolution

Social sustainability has its roots in early sociological and developmental theories that emphasized human welfare, equity, and resilience. The Brundtland Report (WCED,

1987) initiated the modern sustainability discourse, though the social dimension initially received limited attention (Littig & Griessler, 2005). Later contributions by Polanyi (1944) and Sen (1999) foregrounded the importance of social institutions and individual capabilities, with Sen's capability approach emphasizing freedoms and opportunities as central to sustainable development.

Key Theoretical Paradigms

1. The Three-Pillar Model and Its Critiques

The widely accepted three-pillar model (environmental, economic, social) has been criticized for marginalizing the social component (Purvis et al., 2019; Dempsey et al., 2011). Rather than treating it as a supplementary aspect, social sustainability should be viewed as both foundational and resultant in the development process.

2. Social Equity and Justice

Theories of distributive justice (Rawls, 1971) and environmental justice (Bullard, 1990) have significantly shaped the discourse. Rawls emphasizes fair resource distribution as vital to societal stability, while environmental justice draws attention to the burdens disproportionately borne by marginalized groups (Agyeman et al., 2003).

3. Community Resilience and Social Capital

Putnam's (2000) notion of social capital—networks, trust, and civic engagement highlights the role of social cohesion in resilience. Adger (2003) similarly links community capacity and participatory governance to sustainable outcomes.

Integration into Global Frameworks

The Sustainable Development Goals (UN, 2015) formally embed social sustainability through targets like SDG 1 (No Poverty), SDG 5 (Gender Equality), and SDG 10 (Reduced Inequality), reflecting a shift toward inclusive, human-centered development (Lehtonen, 2004).

Theoretical Outlook

Initially overshadowed by ecological concerns, social sustainability encompassing equity, inclusion, resilience, and well-being is gaining prominence in response to

challenges like displacement, inequality, and unrest (Colantonio, 2010). This paper applies a theoretical lens to examine its evolving integration into sustainable development frameworks, particularly its interlinkages with economic and environmental goals in the context of the SDGs.

Integration with Economic and Environmental Sustainability

Unlike economic sustainability, which emphasizes productivity and growth, or environmental sustainability, which focuses on ecological balance, social sustainability centers on equity, justice, and inclusive societal structures. Its integration ensures that development does not lead to community displacement or reinforce social inequalities (Missimer, Robèrt & Broman, 2017).

The Triple Bottom Line (TBL) framework (Elkington, 1997) underlines that sustainable development requires alignment of environmental, economic, and social goals. However, the social pillar is often under-prioritized. Increasingly, scholars highlight its role in connecting ecological and economic efforts through participatory governance, inclusion, and intergenerational equity (Boström, 2012).

Social Sustainability and the SDGs

The UN's 2030 Agenda embeds social sustainability in goals such as SDG 1 (No Poverty), SDG 5 (Gender Equality), SDG 10 (Reduced Inequalities), and SDG 16 (Peace, Justice, and Strong Institutions). These goals emphasize empowerment, equity, and inclusive institutions. However, despite this acknowledgment, implementation tends to rely on quantifiable environmental and economic indicators, leaving social aspects under-assessed (Murphy, 2012).

Realizing social sustainability within the SDG framework requires shifting from technocratic to participatory governance that values human agency. For instance, in climate adaptation or urban planning, inclusive policies ensure that marginalized groups are not just protected but actively shape solutions (Sharifi, 2021).

The Prospective Role of Social Sustainability

Facing global challenges climate change, digital divides, demographic shifts, and political instability future development must prioritize social sustainability as a core

principle. A people-centered approach focused on well-being, justice, and participation is vital. Achieving this requires transformative not incremental change: dismantling systemic inequalities, rethinking governance, and embedding solidarity and care into institutions (Blythe et al., 2018).

Core Dimensions: Equity, Inclusion, and Collective Well-being

Equity

Equity, the ethical foundation of social sustainability, goes beyond equal distribution to address structural inequalities and historical injustices. Rawls' (1971) theory stresses that inequalities must benefit the least advantaged and uphold fair opportunity. Equity operates across scales from local to global and shapes who gains from and who bears the costs of development (Agyeman & Evans, 2004; Fraser, 2009).

Inclusion

Inclusion entails more than representation; it involves meaningful, empowered participation in decision-making. Effective inclusion enhances project legitimacy, strengthens social capital, and increases resilience to shocks (Dempsey et al., 2011; Colantonio, 2010; Pretty, 2003). A socially sustainable system dismantles exclusion based on race, gender, class, or digital access and promotes diversity as a strength.

Collective Well-being

Collective well-being encompassing health, safety, cultural identity, and social trust is both an outcome and enabler of social sustainability. It reflects Sen's (1999) capabilities approach, prioritizing real freedoms over material wealth. Enhancing well-being through education, healthcare, and social protection strengthens social cohesion, democratic stability, and long-term sustainability (Missimer et al., 2017; Fonseca et al., 2018).

Interlinking Social, Economic, and Environmental Pillars: A Theoretical Integration -The Brundtland Report (WCED, 1987) popularized the three-pillar model of sustainability social, economic, and environmental but integrating these domains remains challenging. Traditionally treated in isolation, recent scholarship emphasizes their interdependence, arguing that sustainable development must treat these dimensions as mutually reinforcing (Elkington, 1997; Lehtonen, 2004). This integrative

approach is especially urgent in the Anthropocene, where crises such as climate change, inequality, and economic instability are deeply interconnected.

Systems Theory Perspective - Systems theory provides a useful lens, viewing sustainability as a dynamic interaction among subsystems governed by feedback loops and non-linear effects (Meadows, 2008). For example, economic growth that depletes natural resources often leads to social harms like displacement or health risks. In contrast, inclusive policies can yield environmental and economic benefits, highlighting the need for resilience and adaptive governance across all domains (Boström, 2012; Folke et al., 2010).

Beyond the Triple Bottom Line Elkington's (1997) Triple Bottom Line (TBL) urged integration of people, planet, and profit, but critics argue it tends to prioritize economic indicators over social or ecological depth (Norman & MacDonald, 2004). Alternatives like Raworth's Doughnut Economics (2017) better integrate social foundations and planetary boundaries, offering a justice-oriented model that captures sustainability's full complexity.

Human-Centered Integration Social sustainability is increasingly seen as a prerequisite—not a supplement—for environmental and economic stability. Missimer et al. (2017) argue that exclusion, inequality, and weak institutions reduce societies' ability to cope with ecological or economic shocks. Community resilience depends on social capital, equity, and participation (Adger, 2003), while inclusive economies support fair labor, innovation, and sustainable consumption. Effective integration thus requires structural transformation embedding human rights in environmental governance and aligning economic systems with social justice.

Policy Implications

The interlinking of the three pillars demands policy coherence, cross-sectoral governance, and long-term thinking. Development strategies that consider only economic returns or environmental impacts in isolation are increasingly viewed as insufficient and potentially counterproductive. International frameworks such as the UN Sustainable Development Goals (SDGs) represent an important attempt at integration, with goals like SDG 8 (Decent Work and Economic Growth), SDG 10 (Reduced

Inequalities), and SDG 13 (Climate Action) explicitly intersecting across all three dimensions. However, critics argue that operationalizing such integration requires deeper institutional reform, participatory decision-making, and metrics that capture the interdependencies and trade-offs across the pillars (Nilsson, Griggs & Visbeck, 2016). This also includes developing place-based approaches that consider local social contexts and environmental realities, rather than relying on universal models.

Innovative Approaches to Foster Social Sustainability

Social sustainability encompassing equity, inclusion, cohesion, and well-being remains difficult to operationalize due to its abstract nature and measurement challenges (Boström, 2012). To bridge this gap, innovative approaches primarily institutional, participatory, and socio-political have emerged, embedding social values into governance, planning, and community development (Agyeman & Evans, 2004; Dempsey et al., 2011).

1.Participatory Governance and Co-Production

Participatory governance enhances legitimacy and resilience by engaging communities in decision-making. The co-production model fosters collaboration between citizens and institutions in designing and delivering public services (Bovaird & Loeffler, 2012). Notably, participatory budgeting in Porto Alegre, Brazil, has improved equity and trust by allowing citizens to allocate municipal resources (Wampler, 2007).

2. Social Innovation and Community Development

Social innovation new practices or institutions addressing unmet social needs drives inclusive, community-led development (Moulaert & MacCallum, 2019). In cities like Barcelona, cooperative housing and community land trusts promote affordability and local empowerment through collective ownership (Lang & Novy, 2014).

3. Inclusive Urban Design and the "Right to the City"

Urban design grounded in the "Right to the City" (Lefebvre, 1996) emphasizes accessibility, equity, and participation. Methods like tactical urbanism and co-design engage marginalized populations women, elders, persons with disabilities, migrants in shaping public space (Gehl, 2010), enhancing urban inclusivity.

4. Digital Inclusion and Civic Technology

Civic tech platforms e-budgeting, e-governance, grievance portals can boost transparency and engagement (Gigler & Bailur, 2014). Yet, digital inclusion requires more than access; it entails literacy, content relevance, and addressing socio-cultural barriers. India's Digital India initiative shows promise but must better address gendered and structural digital divides (Gurumurthy & Chami, 2016).

5. Cultural Sustainability and Identity

Integrating cultural identity, traditions, and indigenous knowledge into planning strengthens social cohesion and intergenerational equity (Soini & Birkeland, 2014). Cultural sustainability promotes pluralism and inclusion, particularly for marginalized and indigenous communities.

6. Measuring Social Sustainability

Conventional metrics often overlook social dimensions. New tools such as the OECD's Better Life Index and the Social Sustainability Assessment Tool (SSAT) blend qualitative and quantitative indicators to assess well-being, trust, participation, and equity (Murphy, 2012; Missimer et al., 2017), enabling more socially responsive policymaking.

The Future of Social Sustainability in a Post-Pandemic World

The COVID-19 pandemic exposed systemic inequalities and fragile social foundations, positioning social sustainability as central to recovery and resilience (Patel et al., 2020). In the post-pandemic era, it must be seen not as peripheral, but as a foundational element of sustainable development.

Re-Centering Equity and Social Protection

The pandemic amplified disparities in healthcare, education, employment, and housing especially for marginalized groups (ILO, 2021). A socially sustainable future requires universal, rights-based social protection systems that are responsive to crises. Equity must guide recovery, with expanded access to healthcare, digital services, and essential infrastructure. Social safety nets, such as cash transfers and employment guarantees, are vital not just for welfare, but for structural resilience (Deaton, 2021).

Community Resilience and Local Governance

Community-based organizations, self-help groups, and local institutions played a critical role during the pandemic (Lahariya et al., 2020). Strengthening these through participatory planning, fiscal decentralization, and co-production of services builds long-term resilience. Social infrastructure trust, civic networks, and social capital is as crucial as physical infrastructure (Aldrich & Meyer, 2015).

Rethinking Work and Economic Models

The rise of automation, gig work, and remote employment highlights the need for human-centered economic models that value care work, labor rights, and well-being (Frey & Osborne, 2021; Raworth, 2017). Policies promoting decent work, income security, and formalization of informal sectors are gaining relevance as economies adapt to post-pandemic realities.

Digital Inclusion and Ethical Tech Governance

Digitalization accelerated, but so did the digital divide. Social sustainability demands inclusive digital infrastructure, literacy, and equitable tech access, especially for women and marginalized communities (Gurumurthy & Chami, 2016). Civic tech must prioritize data rights, algorithmic fairness, and participatory access (UNDP, 2021).

Linking Social Sustainability with Climate and Health Governance

Health and climate vulnerabilities are intertwined. Social sustainability must be embedded in climate adaptation and health policies to prevent future crises from worsening inequality (Horton & Lo, 2015). Just transitions to green economies must protect labor rights and promote social equity (ILO, 2019).

Discussion and Way Forward

Social sustainability encompassing equity, participation, and collective well-being is essential for inclusive and resilient development. While conceptual understanding has matured, its integration into policy remains fragmented (Colantonio, 2011; Boström, 2012).

Mainstreaming Social Sustainability into Governance and Policy

Embedding social sustainability in development planning requires frameworks that treat social goals as equal to economic and environmental ones. SDGs like 10, 11, and 16 offer entry points (UNDP, 2021), but effective integration demands participatory governance and local capacity-building (Agyeman et al., 2016).

Bridging Theory and Practice through Metrics

Social outcomes—like trust and cohesion—are harder to quantify. However, composite indices and participatory metrics are emerging tools for monitoring and accountability (Valenti & Cagnin, 2020). Future work must co-create context-specific indicators that translate theory into action.

Strengthening Interlinkages Across the Sustainability Triad

Social, economic, and environmental goals must be pursued synergistically. Climate and economic policies should ensure equity and inclusion. For example, urban greening projects can promote environmental regeneration while advancing public health and job creation (Kabisch et al., 2016). Such integrative strategies are critical for building resilient, just, and sustainable societies.

Way Forward: Toward Transformative Social Sustainability

Advancing social sustainability requires a shift from instrumental development to transformative change rooted in equity, dignity, and participation. Inclusive institutions, redistributive justice, and community-led governance must become central to policy design. Investing in public goods education, healthcare, digital access, housing should be viewed as long-term strategies for resilience, not temporary fixes. Strengthening local governments and grassroots actors is key, as they are often best positioned to drive meaningful change.

Finally, integrating academic and community knowledge through participatory, intersectional approaches will ensure that social sustainability evolves as a foundation for just, inclusive, and future-ready development.

Conclusion: Social Sustainability as a Cornerstone of Global Sustainable Development

Social sustainability, long overshadowed by economic and environmental priorities, has emerged as an essential pillar for navigating today's complex global challenges—from pandemics and climate change to deepening inequality and social unrest. This analysis highlights that values such as equity, inclusion, participation, and collective well-being are not peripheral but foundational to sustainable development. Social sustainability shapes the very environments cultural, institutional, and civic within which economic and environmental goals are realized. True sustainability is not a balancing act among isolated pillars, but a synergistic process rooted in justice and human flourishing. In a world marked by uncertainty and transformation, social sustainability must move beyond rhetoric into concrete policies, governance systems, and participatory practices that empower communities and uphold human dignity. As we advance toward the Sustainable Development Goals and beyond, social sustainability must be recognized not as an optional element but as the cornerstone of any development agenda. Without it, efforts risk exclusion and instability; with it, we can build a future that is not only green and prosperous but also just, inclusive, and resilient.

References

Adger, W. N. (2003). Social capital, collective action, and adaptation to climate change. *Economic Geography, 79*(4), 387–404. https://doi.org/10.1111/j.1944-8287.2003.tb00220.x

Agyeman, J., & Evans, B. (2004). Just sustainability: The emerging discourse of environmental justice in Britain? *Geographical Journal, 170*(2), 155–164. https://doi.org/10.1111/j.0016-7398.2004.00117.x

Agyeman, J., Bullard, R. D., & Evans, B. (2003). *Just sustainabilities: Development in an unequal world*. MIT Press.

Agyeman, J., Schlosberg, D., Craven, L., & Matthews, C. (2016). Trends and directions in environmental justice: From inequity to everyday life, community, and just

sustainabilities. *Annual Review of Environment and Resources, 41*, 321–340. https://doi.org/10.1146/annurev-environ-110615-090052

Aldrich, D. P., & Meyer, M. A. (2015). Social capital and community resilience. *American Behavioral Scientist, 59*(2), 254–269. https://doi.org/10.1177/0002764214550299

Blythe, J., Silver, J., Evans, L. S., Armitage, D., Bennett, N. J., Brown, K., ... & Morrison, T. H. (2018). The dark side of transformation: Latent risks in contemporary sustainability discourse. *Antipode, 50*(5), 1206–1223. https://doi.org/10.1111/anti.12405

Boström, M. (2012). A missing pillar? Challenges in theorizing and practicing social sustainability. *Sustainability: Science, Practice and Policy, 8*(1), 3–14. https://doi.org/10.1080/15487733.2012.11908080

Bovaird, T., & Loeffler, E. (2012). From engagement to co-production: The contribution of users and communities to outcomes and public value. *Voluntas, 23*(4), 1119–1138. https://doi.org/10.1007/s11266-012-9309-6

Colantonio, A. (2010). Urban social sustainability themes and assessment methods. *Proceedings of the Institution of Civil Engineers – Urban Design and Planning, 163*(2), 79–88. https://doi.org/10.1680/udap.2010.163.2.79

Colantonio, A., & Dixon, T. (2011). *Urban regeneration and social sustainability: Best practice from European cities*. John Wiley & Sons.

Dempsey, N., Bramley, G., Power, S., & Brown, C. (2011). The social dimension of sustainable development: Defining urban social sustainability. *Sustainable Development, 19*(5), 289–300. https://doi.org/10.1002/sd.417

Deaton, A. (2021). Health in an age of globalization. *The Lancet, 397*(10288), 1534–1535. https://doi.org/10.1016/S0140-6736(21)00469-3

Eizenberg, E., & Jabareen, Y. (2017). Social sustainability: A new conceptual framework. *Sustainability, 9*(1), 68.

Elkington, J. (1997). *Cannibals with Forks: The Triple Bottom Line of 21st Century Business*. Capstone Publishing.

Folke, C., Carpenter, S. R., Walker, B., Scheffer, M., Chapin, T., & Rockström, J. (2010). Resilience thinking: Integrating resilience, adaptability and transformability. *Ecology and Society, 15*(4). https://doi.org/10.5751/ES-03610-150420

Fonseca, L. M. C. M., McAllister, C., & Mehdi, M. (2018). Sustainability: The missing pillar of quality management. *Total Quality Management & Business Excellence, 29*(3–4), 422–437. https://doi.org/10.1080/14783363.2016.1202734

Fraser, N. (2009). *Scales of Justice: Reimagining Political Space in a Globalizing World*. Columbia University Press.

Frey, C. B., & Osborne, M. A. (2021). The future of employment: How susceptible are jobs to computerisation? *Technological Forecasting and Social Change, 114*(1), 254–280. https://doi.org/10.1016/j.techfore.2016.08.019

Gehl, J. (2010). *Cities for People*. Island Press.

Gigler, B. S., & Bailur, S. (Eds.). (2014). *Closing the Feedback Loop: Can Technology Bridge the Accountability Gap?* World Bank Publications.

Gurumurthy, A., & Chami, N. (2016). Digital India: Whose India? Whose digital? *Internet Policy Review, 5*(1). https://doi.org/10.14763/2016.1.398

Habermas, J. (1996). *Between Facts and Norms: Contributions to a Discourse Theory of Law and Democracy*. MIT Press.

Horton, R., & Lo, S. (2015). Planetary health: A new science for exceptional action. *The Lancet, 386*(10007), 1921–1922. https://doi.org/10.1016/S0140-6736(15)61038-8

International Labour Organization. (2019). *Guidelines for a just transition towards environmentally sustainable economies and societies for all*. ILO.

International Labour Organization. (2021). *World Social Protection Report 2020-22: Social protection at the crossroads – in pursuit of a better future*. ILO.

Kabisch, N., Qureshi, S., & Haase, D. (2016). Human–environment interactions in urban green spaces—A systematic review of contemporary issues and prospects for future research. *Environmental Impact Assessment Review, 50*, 25–34. https://doi.org/10.1016/j.eiar.2014.08.007

Lahariya, C., Sundararaman, T., & Laxminarayan, R. (2020). Challenges to India's pandemic response. *BMJ, 370*, m3612. https://doi.org/10.1136/bmj.m3612

Lang, R., & Novy, A. (2014). Cooperative housing and social cohesion: The role of linking social capital. *European Planning Studies, 22*(8), 1744–1764. https://doi.org/10.1080/09654313.2013.800025

Leach, M., Raworth, K., & Rockström, J. (2010). Between social and planetary boundaries: Navigating pathways in the safe and just space for humanity. *Development Dialogue, 61*(1), 1–26.

Leach, M., Scoones, I., & Stirling, A. (2018). Governing epidemics in an age of complexity: Narratives, politics and pathways to sustainability. *Global Environmental Change, 45*, 189–197. https://doi.org/10.1016/j.gloenvcha.2017.06.007

Lefebvre, H. (1996). *Writings on Cities* (E. Kofman & E. Lebas, Trans.). Blackwell.

Lehtonen, M. (2004). The environmental–social interface of sustainable development: Capabilities, social capital, institutions. *Ecological Economics, 49*(2), 199–214. https://doi.org/10.1016/j.ecolecon.2004.03.019

Littig, B., & Griessler, E. (2005). Social sustainability: A catchword between political pragmatism and social theory. *International Journal of Sustainable Development, 8*(1–2), 65–79.

Meadows, D. H. (2008). *Thinking in Systems: A Primer*. Chelsea Green Publishing.

Missimer, M., Robèrt, K. H., & Broman, G. (2017). A strategic approach to social sustainability–Part 1: Exploring the social system. *Journal of Cleaner Production, 140*, 32–41. https://doi.org/10.1016/j.jclepro.2016.03.170

Moulaert, F., & MacCallum, D. (2019). *Advanced Introduction to Social Innovation*. Edward Elgar Publishing.

Murphy, K. (2012). The social pillar of sustainable development: A literature review and framework for policy analysis. *Sustainability: Science, Practice and Policy, 8*(1), 15–29. https://doi.org/10.1080/15487733.2012.11908081

Nilsson, M., Griggs, D., & Visbeck, M. (2016). Policy: Map the interactions between Sustainable Development Goals. *Nature, 534*(7607), 320–322. https://doi.org/10.1038/534320a

Norman, W., & MacDonald, C. (2004). Getting to the bottom of "Triple Bottom Line." *Business Ethics Quarterly, 14*(2), 243–262. https://doi.org/10.5840/beq200414211

O'Brien, K., Leichenko, R., Kelkar, U., Venema, H., Aandahl, G., Tompkins, H., ... & West, J. (2009). Mapping vulnerability to multiple stressors: Climate change and globalization in India. *Global Environmental Change, 14*(4), 303–313. https://doi.org/10.1016/j.gloenvcha.2004.01.001

Patel, J. A., Nielsen, F. B. H., Badiani, A. A., Assi, S., Unadkat, V. A., Patel, B., ... & Wardle, H. (2020). Poverty, inequality and COVID-19: The forgotten vulnerable. *Public Health, 183*, 110–111. https://doi.org/10.1016/j.puhe.2020.05.006

Pretty, J. (2003). Social capital and the collective management of resources. *Science, 302*(5652), 1912–1914. https://doi.org/10.1126/science.1090847

Rawls, J. (1971). *A Theory of Justice*. Harvard University Press.

Raworth, K. (2017). *Doughnut Economics: Seven Ways to Think Like a 21st-Century Economist*. Chelsea Green Publishing.

Sen, A. (1999). *Development as Freedom*. Oxford University Press.

Soini, K., & Birkeland, I. (2014). Exploring the scientific discourse on cultural sustainability. *Geoforum, 51*, 213–223. https://doi.org/10.1016/j.geoforum.2013.12.001

UNDP (United Nations Development Programme). (2021). *Human Development Report 2021/2022: Uncertain Times, Unsettled Lives: Shaping Our Future in a Transforming World*. https://hdr.undp.org

Wampler, B. (2007). *Participatory Budgeting in Brazil: Contestation, Cooperation, and Accountability*. Penn State Press.

WCED (World Commission on Environment and Development). (1987). *Our Common Future*. Oxford University Press.

आचार्य रामचंद्र शुक्ल : आलोचना की नयी विचारदृष्टी के अन्वेषक

डॉ. पम्मी राय*

pammiraibhu@gmail.com

सारांश:

यह शोध पत्र आधुनिक हिन्दी आलोचना के विकास में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के योगदान को केंद्र में रखकर उनके आलोचनात्मक दृष्टिकोण की समीक्षा करता है। शुक्ल जी ने गुण-दोष विवेचना की परम्परा से हटकर वस्तुनिष्ठ, यथार्थपरक, जनोन्मुख आलोचना का नया स्वर रचा। उन्होंने काव्य को लोकजीवन से जोड़ते हुए रसवाद की पुनर्व्याख्या की और आलोचना को सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों से जोड़ा। भक्तिकाल, विशेषतः तुलसी साहित्य, को उन्होंने अपने आलोचनात्मक मूल्य-निर्धारण का आधार बनाया और लोकमंगल को साहित्य का प्रमुख मानदंड स्वीकार किया। शुक्ल जी का रहस्यवाद-विरोध, छायावाद की सीमाओं की आलोचना, तथा साहित्य को जीवन और समाज की यथार्थ अनुभूतियों से जोड़ने की दृष्टि उनके आलोचकीय दृष्टिकोण की विशिष्टता है। उन्होंने आलोचना को केवल साहित्यिक विश्लेषण का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की प्रेरक शक्ति के रूप में देखा। इस प्रकार, आचार्य शुक्ल हिन्दी आलोचना को परंपरा से आधुनिकता की ओर ले जाने वाले विचारदृष्टा के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं, जिन्होंने आलोचना को एक नई वैचारिक दिशा, चेतना और बौद्धिक आधार प्रदान किया।

मुख्य शब्द (Key Words):

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आधुनिक हिन्दी आलोचना, वस्तुनिष्ठता, लोकमंगल, भक्तिकाल, रस सिद्धांत, यथार्थवाद, छायावाद विरोध, साहित्य और समाज, आलोचना की विचारदृष्टि, प्रगतिशील चेतना, जनवादी मूल्य

आधुनिक हिन्दी आलोचना के विकास-क्रम के तीसरे चरण का आरम्भ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की स्पष्ट और सशक्त आलोचना से होता है। गुण-दोष दर्शन की प्रवृत्ति को छोड़ कवियों की विशेषताओं और उनकी अन्तःवृत्तियों की छानबीन की कोशिश शुक्ल जी के यहाँ ही प्रथमतः मिलती है। आचार्य शुक्ल हिन्दी आलोचना में एक व्यापक दृष्टिकोण और सजग आलोचनात्मक विवेक के साथ आए। आचार्य शुक्ल के आलोचकीय मूल्य जनवादी थे। वे शास्त्रीय और स्वच्छंदतावादी काव्य पद्धति की सीमाओं की सजग पड़ताल

* **सहायक आचार्य, वसंत महिला महाविद्यालय, राजघाट, वाराणसी**

करते हैं। आचार्य शुक्ल ने सैद्धान्तिक 'रस मीमांसा' ग्रंथ में व व्यावहारिक आलोचना 'गोस्वामी तुलसीदास', 'त्रिवेणी', 'सूरदास', 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', 'जायसी ग्रंथावली की भूमिका' जैसे ग्रन्थों में विन्यस्त एक नया मानदण्ड निर्मित किया। अपने युग की आवश्यकताओं की ओर ध्यान केन्द्रित किया। इस ओर संकेत करते हुए निर्मला जैन लिखती हैं कि ''आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अकेले ऐसे आलोचक हैं जिन्होंने परम्परागत आलोचना शैलियों के प्रति सम्मान भाव रखकर भी अपने युग की आवश्यकताओं को पहचाना और उनके अनुरूप सही अर्थों में हिन्दी की अपनी आलोचना शैली को जन्म दिया।''[1] साहित्यिक रूचियों में परिवर्तन के फलस्वरूप नये आलोचकीय मानदण्डों की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। आचार्य शुक्ल इस आवश्यकता की पहचान करते हैं।

राममूर्ति त्रिपाठी आचार्य शुक्ल के इस समृद्ध प्रयत्न पर लिखते हैं- ''इस प्रकार भारतीय परम्परा में शुक्ल जी को उन प्रस्थान-प्रस्थापक आचार्यों की ऋंखला में मैं एक उल्लेख्य कड़ी मानता हूँ जो अपनी पारम्परिक जमीन से जुड़े रहकर एक मौलिक और युगानुरूप स्वतंत्र प्रस्थान देते हैं।''[2] चली आ रही रीतिकाल केन्द्रित आलोचना को भक्तिकाल पर केन्द्रित कर देते हैं। रीतिबद्धता के प्रतिरोध के रूप में वे भक्तिकालीन प्रेम व करूणा की वास्तविक और मार्मिक कविता को केन्द्र में खड़ा करते हैं। ''आचार्य शुक्ल की समीक्षा तथा समीक्षा दृष्टि में मध्यकालीन रीतिवाद तथा दरबारी मानसिकता के विरोध के जो कठोर तेवर हैं वे अभिजात वर्गीय अभिरूचियों से निर्देशित कला मूल्यों के प्रखर विरोध की उसी परम्परा की देन हैं जो भारतेन्दु बाबू तथा आचार्य द्विवेदी से होती हुई आचार्य शुक्ल तक पहुँची थी।''[3] गुण-दोष विवेचन, तारतमिक श्रेणी विभाग या रीतिकालीन कवियों के बीच श्रेष्ठत्व की आलोचनात्मक उहापोह में वे संयमित, सार्थक व व्यावहारिक आलोचना का स्वरूप सामने रखते हैं तथा कर्म व प्रकृति के क्षेत्र को प्रधानता देते हैं। आलोचक के रूप में वे निजी पसन्द-नापसन्द वाली आलोचना को खारिज करते हुए साहित्य के वस्तुवादी दृष्टिकोण के विकास पर जोर देते हैं। वे साहित्य को सामाजिकता के समानान्तर परखने और विकसित करने पर बल देते हैं। यह यथार्थवादी आग्रह ही शुक्ल जी के रहस्यवाद विरोध का आधार है। शुक्ल जी के लिए काव्य भौतिक सत्य है। भौतिक जगत से कटा साहित्य उनके लिए अमान्य है। अज्ञात को शुक्ल जी दार्शनिक और साम्प्रदायिक साधना के क्षेत्र में रखते हैं। उनके लिए साहित्य में भावानुभूति प्रधान है और भौतिक जगत से ही प्राप्त हो सकता है। शुक्ल जी अपने आलोचकीय मूल्यों का आधार भक्तियुगीन साहित्य को बनाते हैं। खासकर वे तुलसी के लोकमंगल की अवधारणा को ही साहित्यिक कसौटी के रूप में अपनाते हैं। उनके यहाँ लोक तथा उसकी भौतिक उपस्थिति ही मूल आधार है। ''इस सम्बन्ध में वे मैथ्यू आर्नल्ड की इन मान्यताओं के काफी निकट है कि साहित्य तथा जीवन का सीधा तथा प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है...इसी दृष्टि ने उन्हें रस के व्यक्तिवादी आधार से हटाकर सामाजिक-नैतिक आधार पर केन्द्रित कर दिया है।''[4]

तुलसी साहित्य को अपने आलोचकीय दृष्टिकोण का एक स्तम्भ इसीलिए निर्धारित करते हैं कि उसमें साधारण जन, लोक के मन की सहज और मार्मिक भावाभिव्यक्ति मिलती है। हालांकि इस क्रम में वे क्रांतिकारी और सहज लोक के कवि कबीर के उचित मूल्यांकन में चूक जाते हैं। रीतिवाद का विरोध शुक्ल जी उसकी

बाधित और रूकी हुई भावधारा के कारण करते हैं। वे इसी क्रम में काव्य की पद्धतियों और प्रबंधकाव्य तथा मुक्तक पर भी विचार करते हैं। शुक्ल जी का विरोध रीतिवादी कला-निपुणता से नहीं अपितु आँख मूँदकर बंधे-बधाएं ढर्रे पर काव्य रचने की पद्धति से था। वे कला-निपुणता के साथ ही सहृदयता को भी काव्य के लिए अनिवार्य मानते हैं। ''आचार्य शुक्ल की रचनाओं से उभरकर सबसे पहले जो बात सामने आती है वह है साहित्य में वस्तुमत्ता अथवा वास्तविकता-सिद्धान्त का आग्रह, जिसे यथार्थवाद की संज्ञा भी दी जा सकती है।''[5] उनके अनुसार इस भौतिक संसार के बाहर कुछ नहीं। वे इसे ही यथार्थ सत्य मानते हैं जिसके आधार पर वे छायावादी रहस्यवाद की आलोचना करते हैं।

आचार्य शुक्ल ने आलोचना का एक व्यवस्थित ढाँचा तैयार किया। शुक्ल जी का सैद्धान्तिक सिद्धान्त रसवाद की पुनरावृत्ति उसकी नये दृष्टिकोण से पुनर्व्याख्या का सार्थक प्रयत्न है। वे रस को काव्य के साध्य के रूप में स्वीकृत करते हैं तो अलंकार को साधन मात्र। चमत्कारिक काव्य सृजन के विपरीत वे भावुकता को जागृत करने वाले रससिद्ध काव्य पर जोर देते हैं। वे प्रबंध और मुक्तक काव्य रूपों पर भी रस के इसी दृष्टिकोण से विचार करते हैं। उनके अनुसार गोचर जगत ही अनुभूति का आधार है। रसानुभूति को वे इसी पर केन्द्रित मानते हैं। ''कुल मिलाकर वे रस को काव्य का सर्वोपरि प्रतिमान मानने में हिचकते नहीं है। किन्तु यह रसपरक चिन्तन परम्परागत न होकर सचेतनवादी चिंतन है जिसमें नवजागरणवादी युग चिन्तन ने आवश्यकतानुकूल परिवर्तन एवं संस्कार किया है।''[6]

परन्तु वे अनुभूति पर जोर देते हुए भी काव्य को विषयी प्रधान होने के पक्षधर नहीं। उनका रसवाद अन्तर्मुखी न होकर बहिर्मुखी था। उसका लोक तथा यथार्थ जगत से तारतमिक सम्बन्ध था। वे इसको ज्ञानयोग तथा कर्मयोग के समकक्ष मानने के पक्षधर थे। वे लोकमंगल और सामाजिकता के संदर्भ में ही भावानुभूति की बात करते हैं। उनकी लोकमंगल की चिंता मानवीय दृष्टिकोण की चिंता है जो न तो 'लोकेत्तर' है न 'लोकोत्तर'। वे मनुष्य मात्र के हृदय को स्वार्थ से मुक्त करने को ही रसदशा स्वीकृत करते हुए कविता का प्रमुख लक्ष्य घोषित करते हैं। वे लिखते हैं ''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है।''[7] जीवन के प्रत्येक मर्मस्पर्शी अंशों के साक्षात्कार पर बल देते हुए उसी कवि की कविता को सफल मानते हैं जिसमें भावुकता का समुचित समन्वय हो। साधारणीकरण को अतिआवश्यक मानते हुए काव्य में विचित्र और असाधारण वस्तुओं के चित्रण पर बल देने वाली विचारधारा पर कड़ा विरोध दर्ज कराते हैं। इसी आधार पर वे क्रोंचे के अभिव्यंजनावाद को उक्तिवैचित्र्य का नवीन रूप मानकर तथा रस सिद्ध न मानकर खारिज कर देते हैं। उनके अनुसार विभाव ही भाव पक्ष का आधार होता है। वे भावों को त्याज्य नहीं मानते अपितु उन्हें आनन्द की सिद्धावस्था तथा आनन्द की साधनावस्था जैसी श्रेणियों में विभक्त कर उनको उपयोगी सिद्ध करते हैं। शुक्ल जी केवल व्यवहारिक समीक्षा ही नहीं काव्य-शास्त्र सम्बन्धी विवेचन में भी अपने नये दृष्टिकोण से भाव, विभाव, रस तथा उसके साधारणीकरण की पुनर्व्याख्या करते हैं। वे इसे लोक सामान्य भाव-भूमि पर ही आश्रित मानते हैं।

शुक्ल जी अपने समकालीन बहसों-विवादों तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों की गहन पड़ताल करते हुए आलोचना की प्रगतिकामी चेतना की धारा को दिशा देने का कार्य करते हैं। इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण उनका छायावाद विरोध है। परन्तु ठीक ढंग से परखने पर यह स्पष्ट हो जाएगा कि शुक्ल जी का विरोध छायावाद से नहीं अपितु छायावाद के आध्यात्मिक रहस्यवादी रूप से है। उनके सिद्धान्तों के अनुसार लौकिक अनुभूतियों की बजाय अदृश्य या अगोचर सत्ता का वर्णन अमान्य है और लोक स्वीकृत नहीं है। सामाजिक उपयोगिता के बिना साहित्य का कोई मूल्य शुक्ल जी को अस्वीकृत है। छायावाद जिस सीमा तक जीवन-जगत की अनुभूतियों की उपेक्षा करता है शुक्ल जी वहीं तक उसका विरोध करते हैं परन्तु आगे चलकर छायावादी कवियों ने सामाजिकता को स्वीकृत करते हुए जीवन-जगत के सत्य को काव्य में चित्रित किया तब शुक्ल जी उनकी प्रशंसा करते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने समय के गद्य साहित्य की सभी पद्धतियों और प्रवृत्तियों को ठीक ढंग से परखा और विवेचित किया। साहित्य के इतिहास की समुचित और प्रगतिशील रूप-रेखा को निर्मित किया। हिन्दी की प्रौढ़ आलोचना के विकास का श्रेय आचार्य शुक्ल को ही है। शुक्ल जी की आलोचना स्वतंत्रता आन्दोलन की प्रगतिशील स्फूर्तिदायी चेतना से सम्बद्ध आलोचना है। हिन्दी आलोचना की बंधी बधायी धारा को एक नयी दिशा में प्रवाहित करने का कार्य आचार्य शुक्ल की आलोचना करती है जिसमें नये ढंग के प्रयोग सामने आते हैं। यह सामंतवाद तथा साम्राज्यवाद से संघर्षों एवं जनवादी मूल्यों की आलोचना है। इसी ओर संकेत करते नंदकिशोर नवल लिखते हैं ''शुक्ल जी भारतीय स्वाधीनता-आन्दोलन के उस आगे बढ़े हुए दौर के आलोचक हैं जिसमें यह आन्दोलन गांवों तक फैल गया था।''[8] इस नयी चेतना ने हिन्दी आलोचना को इस ढंग से प्रभावित किया जिससे उसकी इतिवृत्तात्मक प्रवृत्ति का विकास एक स्वच्छंदतावादी साम्राज्य विरोधी परिवर्तित चेतना का रूप ले लेता है। शुक्ल जी हिन्दी आलोचना का मार्ग प्रशस्त कर उसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान करते हैं जो आगे चलकर प्रगतिशील आलोचना के रूप में विकसित होती है। ''उनके लिए समालोचना कर्म केवल साहित्यिक कृतियों के विश्लेषण और मूल्यांकन तक सीमित नहीं है, बल्कि उनके सम्मुख एक बड़ा सामाजिक और सांस्कृतिक दायित्व है, जिसे वे प्रायः 'लोकमंगल', 'लोक-संग्रह' और 'लोक रक्षा' आदि शब्दों से व्यक्त करते हैं।''[9]

हिन्दी आलोचना को एक नयी चेतना और नये मानदण्डों से जोड़ कर आचार्य शुक्ल ने आगे आने वाले साहित्य के परख के लिए आलोचकों के सम्मुख एक सुदृढ़ आलोचकीय ढांचा खड़ा कर दिया। साहित्य पर विभिन्न वादों की दृष्टी से विचार करने के साथ - साथ उसमें निहित वस्तुतः साहित्यिक मूल्यों की भी पहचान का प्रश्न आलोचकों के सामने आया। इसके साथ ही साहित्य और समाज की पारस्परिक अन्तःक्रियाओं की भी चर्चा लोकमंगल की अवधारणा के अंतर्गत किया जाने लगा।

निष्कर्ष (Conclusion):

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी आलोचना के ऐसे युग निर्माता आलोचक हैं जिन्होंने न केवल आलोचना की परंपरागत दृष्टियों को चुनौती दी बल्कि उसे एक वैज्ञानिक, वस्तुवादी और जनोन्मुखी दिशा प्रदान की। उन्होंने साहित्य को केवल सौंदर्य की वस्तु नहीं, बल्कि सामाजिक उपयोगिता और लोकमंगल की कसौटी पर परखने की आलोचना दृष्टि विकसित की। शुक्ल जी ने आलोचना को निजी रुचियों से मुक्त कर एक सैद्धांतिक आधार दिया, जहाँ काव्य की समीक्षा भाव, विभाव, रस, और साधारणीकरण जैसे तत्वों के पुनर्व्याख्या के माध्यम से की गई।

उनकी आलोचना दृष्टि मध्यकालीन दरबारी मानसिकता और रहस्यवाद का विरोध करते हुए भक्तिकाल के यथार्थ, करुणा और लोकभाव को केंद्र में रखती है। तुलसी साहित्य के माध्यम से उन्होंने लोकमंगल की अवधारणा को आलोचना का केंद्रीय मूल्य बनाया। वे छायावाद के रहस्यवादी और आध्यात्मिक पक्ष के आलोचक तो थे, लेकिन सामाजिक चेतना से युक्त कविताओं के समर्थक भी।

शुक्ल जी ने आलोचना को एक सांस्कृतिक और सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में देखा और हिन्दी आलोचना को एक नये ढांचे, नये मानदंड और नयी चेतना से जोड़ते हुए उसे आधुनिक आलोचना की दिशा में अग्रसर किया। उनकी आलोचना पद्धति ने न केवल समालोचना कर्म को मजबूत किया, बल्कि आने वाली आलोचना प्रवृत्तियों — विशेषकर प्रगतिशील और जनवादी आलोचना — के लिए मार्ग प्रशस्त किया। वे आलोचक मात्र नहीं, आलोचना की नई विचारदृष्टि के अन्वेषक थे।

सन्दर्भ :-

1. जैन, निर्मला. (2014). *हिन्दी आलोचना का दूसरा पाठ*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 40.
2. त्रिपाठी, राममूर्ति. (2008). *आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : प्रस्थान और परम्परा*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 92.
3. मिश्र, शिवकुमार. (2002). *हिन्दी आलोचना की परम्परा और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 11.
4. पालीवाल, कृष्णदत्त. (2009). *हिन्दी आलोचना का सैद्धान्तिक आधार*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 291.
5. सिंह, नामवर. (2013). *हिन्दी समीक्षा और आचार्य शुक्ल*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 150.
6. पालीवाल, कृष्णदत्त. (2009). *हिन्दी आलोचना का सैद्धांतिक आधार*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 273.
7. शुक्ल, रामचन्द्र. (2011). *चिंतामणि भाग : एक*. प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन. पृ. 82.
8. नवल, नंदकिशोर. (2011). *हिन्दी आलोचना का विकास*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 157.
9. सिंह, नामवर. (2013). *हिन्दी समीक्षा और आचार्य शुक्ल*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 149.

भारतीय भाषाओं के अग्रदूत : बाबा नागार्जुन

अमित कुमार*

amitkumar2mgahv@gmail.com

सारांश:

शोधपत्र में बाबा नागार्जुन के भाषिक योगदान को केंद्र में रखते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि वे केवल हिंदी के ही नहीं, बल्कि संपूर्ण भारतीय भाषाओं के सजग रचनाकार, अनुवादक, भाषाविद और भाषाचिंतक थे। मैथिली उनकी मातृभाषा थी, पर वे हिंदी, संस्कृत, बांग्ला, गुजराती, पाली, अंग्रेज़ी आदि कई भाषाओं के ज्ञाता और रचनाकार थे। नागार्जुन ने अनुवाद के माध्यम से भाषाओं के आपसी संवाद को मजबूत किया, जिससे भारतीय भाषाओं के संरक्षण और संवर्धन को बल मिला।

उन्होंने न केवल मैथिली को साहित्यिक मान्यता दिलाने हेतु प्रयास किए, बल्कि हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में भी सशक्त समर्थन दिया, बशर्ते वह अन्य भारतीय भाषाओं के साथ सामंजस्य में रहे। उन्होंने भाषा को सिर्फ अभिजात्य वर्ग की वस्तु नहीं माना, बल्कि लोकजीवन से जुड़ी भाषा की शक्ति को प्राथमिकता दी। अंग्रेजी के अंधानुकरण और भाषाई औपनिवेशिक मानसिकता की वे मुखर आलोचना करते हैं।

बाबा नागार्जुन का भाषिक चिंतन आज की राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के परिप्रेक्ष्य में अत्यंत प्रासंगिक है। उन्होंने मातृभाषाओं को जीविका, शिक्षा और शासन-प्रशासन से जोड़ने की आवश्यकता पर बल दिया और यह चेताया कि भाषाएं तभी जीवित रहेंगी जब समाज उन्हें अपने जीवन का हिस्सा बनाएगा। मैथिली, गुजराती, भोजपुरी, तमिल, मराठी जैसी अनेक भाषाओं को लेकर उनके विचार बहुभाषिक भारत की आत्मा को रेखांकित करते हैं। वे भारतीय भाषाओं की रक्षा के लिए आजीवन संघर्ष करने वाले युगधर्मी चिंतक थे।

मुख्य शब्द (Key Words):

बाबा नागार्जुन, भारतीय भाषाएँ, भाषिक चिंतन, मैथिली, अनुवाद कार्य, हिंदी राष्ट्रभाषा, भाषा और समाज, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, उपनिवेशवादी प्रभाव, भाषाई संघर्ष, लोकभाषा, बहुभाषिकता, भाषाई अस्मिता

हिंदी जनमानस में रचनाकार नागार्जुन की छवि एक लोकप्रिय कवि के रूप में है। जबकि वे कई भारतीय भाषाओं के कवि होने के साथ-साथ एक अनुवादक, निबंधकार एवं हिंदी और मैथिली भाषा के सशक्त उपन्यासकार भी थे। वस्तुतः नागार्जुन बहुभाषाविद् थे। वे संस्कृत, पाली, हिंदी, अंग्रेजी, बांग्ला, मैथिली, सिंधी, गुजराती आदि कई भाषाओं के जानकार थे। उनका मूल नाम वैद्यनाथ मिश्र था। वे मूलतः मैथिली और हिंदी भाषा के रचनाकार थे, किंतु उन्होंने बांग्ला और संस्कृत भाषाओं में भी कविताएं लिखीं। उन्हें हिंदी के साथ-साथ अपनी मातृभाषा मैथिली से गहरा प्रेम था। उनकी पहली कविता 1929 ई. में मातृभाषा मैथिली में प्रकाशित हुई। यह कविता मिथिला नामक पत्रिका में छपी थी। 1949 ई. में उनका पहला मैथिली काव्य-संग्रह 'चित्रा' प्रकाशित हुआ। दूसरे मैथिली काव्य-संग्रह 'पत्रहीन नग्नगाछ' हेतु उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया। नागार्जुन को भारतीय भाषाओं के संरक्षण एवं संवर्धन की अपार चिंता थी। उन्होंने मातृभाषा मैथिली और राष्ट्रस्तर की भाषा हिंदी की प्रगति हेतु निरंतर कोशिशें कीं। एक ओर उन्होंने मैथिली,

* **पी-एच. डी. शोधार्थी, हिंदी साहित्य विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा**

बांग्ला और संस्कृत में रचनाएं करके भारतीय भाषाओं के प्रति अपना अटूट अनुराग व्यक्त किया, दूसरी ओर स्वातंत्रोत्तर भारत में राष्ट्रस्तर की भाषा हिंदी के विकास को लेकर सार्थक चिंता व्यक्त की।

नागार्जुन ने अनुवाद-कार्य के जरिये अन्य भारतीय भाषाओं के प्रसार हेतु विलक्षण कार्य किया। उन्हें मैथिली और हिंदी भाषा के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं की भी व्यापक चिंता थी। उन्होंने 1953 में मेघदूत का मुक्तछंद में अनुवाद किया था। उसी वर्ष साप्ताहिक हिंदुस्तान के एक ही अंक में यह रूपांतर छपा था। उनका पहला उपन्यास 'पारो' सर्वप्रथम मैथिली भाषा में ही प्रकाशित (1946 ई.) हुआ। उन्होंने विद्यापति रचित 'पुरुष परीक्षा' नामक संस्कृत भाषा के ग्रंथ का रूपांतरण किया। 1964 ई. में नागार्जुन की 'विद्यापति के सौ गीत' नामक पुस्तक का प्रकाशन हुआ था। इसी वर्ष उन्होंने कहानियों का रूपांतरण 'विद्यापति की कहानियां' नाम से किया। उन्होंने किशोरों के लिए रामकथा का रूपांतरण 'मर्यादा पुरुषोत्तम राम' नाम से किया था। उन्होंने संस्कृत, हिंदी, मैथिली और बांग्ला भाषा के प्रसार हेतु अनुवाद-कार्य को महत्त्व दिया। सन् 1944 से 1954 के बीच नागार्जुन ने अनुवाद-क्षेत्र में विशाल कार्य किया। उन्होंने बांग्ला उपन्यासकार शरतचंद्र के उपन्यासों और कहानियों का अनुवाद किया तथा 1945 ई. में कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के उपन्यास 'पृथ्वी वल्लभ' का गुजराती से हिंदी में अनुवाद किया। जयदेव कृत गीतगोविंद और विद्यापति के 135 गीतों का गद्यानुवाद भी नागार्जुन ने किया। नागार्जुन के इन अनुवाद-कार्यों से उनके बहुभाषिक प्रेम का पता चलता है।

नागार्जुन भाषाओं के प्रति बहुत संवेदनशील विचार रखते थे। उन्होंने भारतीय भाषाओं को आम जनता के बीच लाने के कार्य को अपरिहार्य समझा। उनका दृढ़ मत था कि कोई भी भाषा सिर्फ अभिजात्य और शिक्षित जनता के बीच फल-फूल नहीं सकती। इसका लोकोन्मुख विस्तार परम आवश्यक है। इससे कोई भाषा खत्म नहीं होती है। वह कालांतर तक प्रवाहमान रहती है। साथ ही वह अपनी पहचान एवं अस्मिता बनाते हुए सरकारी मान्यता हेतु प्रबल दावेदार हो जाती है। इसीलिए उन्होंने स्वतंत्रता के ठीक पूर्व लिखा कि "अब तक का मैथिली साहित्य संपन्न और अभिजात वर्ग का साहित्य रहा है, परंतु अब सर्वसाधारण जनता के सुख-दुख का वाहन बनने जा रहा है।"[1]

ध्यातव्य है कि नागार्जुन स्वतंत्रतापूर्व सन् 1945 में मैथिली भाषा और इसके साहित्य के विकास के प्रति सचेत थे। इस संदर्भ में सन् 1945 में लोकयुद्ध में प्रकाशित उनका 'आज का मैथिली कवि' नामक लेख उल्लेखनीय है। उन्हें बखूबी पता था कि किसी भाषा के परिवर्धन हेतु उस भाषा के लिखित साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान होता है। मैथिली भाषा के सुनहरे भविष्य की आकांक्षा रखने वाले नागार्जुन युगधर्मा रचनाकार थे। वे मैथिली भाषा में लिखने के साथ-साथ इस भाषा की प्रगति हेतु निरंतर चिंतनशील रहे। उन्होंने युगधर्मी रचनाकारों की पहचान करते हुए तत्कालीन मैथिली भाषा की दशा और दिशा का उल्लेख करते हुए लिखा कि "कवि युगधर्म पहचानने लगा है। मधुप, मोहन, किरण, ईशनाथ झा, जयनारायण मलिक आदि अनेकों युवक हैं, जिन्हें हम प्रबुद्ध और प्रगतिशील मैथिली कवि कह सकते हैं।"[2]

नागार्जुन की भाषिक चिंता बहुत व्यापक थी। उन्होंने मैथिली ही नहीं, गुजराती भाषा के प्रति भी चिंता जाहिर की। इस संदर्भ में सन् 1945 में हंस पत्रिका में प्रकाशित उनका लेख 'आज का गुजराती कवि' बेहद

महत्वपूर्ण है। वे किसी भाषा के विकास हेतु उस भाषा के रचनाकारों में युगधर्म की पहचान-शक्ति के गुण को आवश्यक मानते थे। युगद्रष्टा लेखक ही भाषा की प्रगति हेतु संघर्षशील रहता है। नागार्जुन ने स्वतंत्रता पूर्व की गुजराती भाषा की दशा और दिशा का उल्लेख करते हुए सटीक लिखा कि "आज का गुजराती कवि युगधर्म के प्रति काफी जागरूक दिखाई देता है। उमाशंकर जोशी, झवेरचंद मेघाणी, सुंदरम, स्नेहरश्मि, उपवासी, चंद्रवदन मेहता, स्वप्नस्थ, रामप्रसाद शुक्ल, नाथालाल दुबे, मनसुखलाल झवेरी, अरालवाला, सुंदरजी वेटाई, प्रहलाद पारीख- ये लोग काव्यक्षेत्र में नई भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।"[3]

नागार्जुन का भारतीय भाषाओं के प्रति बहुत गहरा सरोकार था। उनकी मातृभाषा मैथिली थी और इसकी प्रगति हेतु वे किसी भी परिस्थितियों में समझौता करना पसंद नहीं करते थे। नागार्जुन मातृभाषा मैथिली के साथ-साथ हिंदी को भी राष्ट्रीय भाषा के रूप में देखने-समझने के पक्षधर थे। वे हिंदी के विकास के लिए अन्य भारतीय भाषाओं की बलि देने के सख्त खिलाफ थे। जब स्वातंत्रोत्तर भारत में राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी के उन्नयन का आंदोलन छिड़ा तो नागार्जुन ने मातृभाषा और राष्ट्रीय भाषा के बीच सुंदर सामंजस्य का परिचय दिया। वे किसी भी तरह की औपनिवेशिकता के खिलाफ थे। उनके लिए किसी भाषा की प्रगति का प्रश्न सामूहिकता और समावेशिकता के साथ सम्बद्ध था। इसीलिए वे उन चिंतकों में नहीं थे जो हिंदी की प्रगति हेतु अन्य भारतीय भाषाओं की बलि देने के पक्षधर थे। नागार्जुन के विलक्षण निबंध उन्हें एक समालोचक और सुचिंतक के रूप में निर्मित करते हैं। जब उनके मित्र रामविलास शर्मा ने मैथिली भाषा की निर्मम आलोचना की तो नागार्जुन ने शर्मा जी के कथनों को तार्किकतापूर्वक ख़ारिज कर दिया। रामविलास जी ने 'मैथिली और हिंदी' नामक अपने निबंध में जो लिखा था, उसे नागार्जुन ने इस प्रकार रेखांकित किया है। "पाटल के जनवरी (1954) अंक में भाई रामविलास शर्मा का एक लेख (मैथिली और हिंदी शीर्षक से) प्रकाशित हुआ है। मैथिली कोई भाषा नहीं, बल्कि एक बोली मात्र है और हिंदी के महासमुद्र में सर्वथा विलीन हो जाने में ही उसका कल्याण है।"[4]

इसका प्रत्युत्तर देते हुए नागार्जुन ने लिखा कि "बंधुवर रामविलास की इस धारणा को मैं उलटबासी मानता हूं। मैथिली कोई मामूली बोली नहीं, वह एक प्राणवंत भाषा है। उसकी पाचन-शक्ति अद्भुत है। मगही के नब्बे प्रतिशत शब्दों को वह पचा गई है, गोरखाली और संथाली के सैकड़ों शब्द अपनी सुविधा के अनुसार मैथिली ने ले लिए हैं। संस्कृत-प्राकृत-पालि-अपभ्रंश से, अरबी-फारसी-तुर्की से और अंग्रेजी से लिए हुए शब्दों की भारी तादाद हमारे यहां मौजूद हैं..... यह मेरी कपोल कल्पना नहीं है- मुजफ्फरपुर, बेगूसराय, भागलपुर, मुंगेर, देवघर, पूर्णिया, सहरसा, विराटनगर, राजविराज, जनकपुर, वीरगंज, सीतामढ़ी, दरभंगा आदि शहरों में आकर बस जाने वाले व्यापारियों, बुद्धिजीवियों और श्रमिकों की जीभ पर किस कदर मैथिली हावी है, इसका सही अंदाज पाना हो तो आप इन इलाकों में तशरीफ लाइए।"[5]

नागार्जुन के उपरोक्त कथनों से तत्कालीन मैथिली भाषा के व्यापक भौगोलिक विस्तार का पता चलता है। साथ ही भारतीय भाषाओं की वर्तमान स्थिति और चुनौतियों के कारक का पता चलता है। आज

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय भाषाओं के प्रति जो चिंता है, उसकी पहचान नागार्जुन ने स्वतंत्रता के ठीक बाद कर ली थी। आज मैथिली का भौगोलिक क्षेत्र संकुचित हो रहा है। वर्तमान मैथिली भाषा मिथिला क्षेत्र तक सीमित हो रही है। मगही और अंगिका भाषा-भाषी मैथिली से अलग अपनी उपस्थिति हेतु संघर्ष कर रहे हैं। आज भोजपुरी की तरह अंगिका भाषी भी अपनी अलग पहचान हेतु आंदोलनरत हैं। वर्तमान दौर में एक ओर जहाँ कई भारतीय बोलियाँ या भाषाएँ विलुप्त हो रही हैं, वहीं दूसरी ओर कई भारतीय भाषाएँ संवैधानिक दर्जा पाने के लिए संघर्षशील हैं।

जिस मैथिली भाषा को सन् 2003 में भारतीय संविधान की अष्टम सूची में सम्मिलित किया गया, इसकी गहरी चिंता नागार्जुन स्वतंत्रता के समय से ही कर रहे थे। मैथिली भाषा के विस्तार से लेकर इसकी विलक्षणता तक की पहचान करने वाले नागार्जुन विरले चिंतक थे। किसी भाषा को संवैधानिक मान्यता प्राप्त करने हेतु जिन शर्तों या मानकों से गुजरना होता है, नागार्जुन ने मैथिली के संदर्भ में उन शर्तों का सटीक उल्लेख किया है। मैथिली भाषियों के संघर्ष और भाषिक चुनौतियों का उल्लेख करते हुए नागार्जुन ने लिखा कि "मैथिली को अपने इलाकों में शासकीय प्रश्रय रत्ती भर भी नहीं है। हिंदी बुरी तरह सवार है उसकी छाती पर। …मिथिला के बुद्धिजीवी पिछले साठ वर्षों से अपनी मातृभाषा को मान्यता दिलाने के लिए शासक वर्ग से संघर्ष करते आ रहे हैं। पहली सफलता उन्हें तब मिली, जब 1919 में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने पोस्ट ग्रेजुएट स्टडी के लिए मैथिली को स्वीकार कर लिया। पीछे काशी विश्वविद्यालय ने भी उसे मान्यता दी और पटना विश्वविद्यालय ने भी, और अब प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षण में भी मैथिली ने अपना साधारण स्थान प्राप्त कर लिया है… परंतु इससे क्या! हमें पग-पग पर दिक्कतें उठानी पड़ती हैं। टेक्स्ट बुक मंजूरी की धांधलियों से लेकर अध्ययन-अध्यापन विषयक अड़चनों तक बाधा ही बाधा है।"[6]

नागार्जुन के उपरोक्त कथनों से स्पष्ट है कि मैथिली भाषा का अकादमिक संघर्ष पुराना और व्यापक है। बिहारी भाषा मैथिली स्वतंत्रतापूर्व से ही शिक्षण संस्थानों में अपना स्थान और पहचान बनाने हेतु संघर्षरत रही है। वस्तुतः बिहार प्राचीन काल से ही शिक्षा का केंद्र रहा है। विक्रमशिला और नालंदा विश्वविद्यालय सरीखे ज्ञान केंद्रों की ऐतिहासिक उपस्थिति इसका प्रमाण है। बिहार में स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के बाद शिक्षा-व्यवस्था की सुदीर्घ परंपरा रही है। ध्यातव्य है कि कोलकाता विश्वविद्यालय, पटना विश्वविद्यालय एवं काशी विश्वविद्यालय में स्वतंत्रता से पूर्व मैथिली भाषा का शिक्षण प्रारंभ था। नागार्जुन ने भारतीय भाषा मैथिली की तत्कालीन यथार्थ स्थिति का महती रेखांकन किया है।

भारतीय भाषाओं के ह्रास होने के कई कारणों में से एक है, किसी भाषा भाषी समाज को अपनी भाषा में जीविका न मिलना। चिंतक नागार्जुन को इसकी गहरी पहचान थी। अकारण नहीं, वे स्वतंत्रता से पूर्व किसान-समस्याओं को लेकर बेहद गंभीर और संघर्षरत थे। आर्थिक कारणों से मातृभाषाओं का विलुप्तीकरण जगजाहिर है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में कई भारतीय भाषाओं के विलुप्तीकरण की चिंता स्वाभाविक है। नागार्जुन ने इस समस्या की पहचान स्वतंत्रता के ठीक बाद कर ली थी। क्षेत्रीय भाषाओं के क्षरण या

विलुप्तीकरण के कारणों को इतनी सटीकता से समझनेवाले भाषा-चिंतक नागार्जुन विरले रचनाकार हैं। इसका जीवंत प्रमाण उनके 'मैथिली और हिंदी' नामक लेख में दर्ज है। निबंध का यह अंश उल्लेखनीय है- "किसान या खेतिहर श्रमिक जब गांव छोड़कर बाहर निकल जाता है और औद्योगिक अंचलों में रहने लगता है तो उस पर बाहरी भाषाओं और बोलियों का असर पड़ता है; अपनी भूमि के शब्दों की स्मृति धुंधली पड़ने लगती है। बच्चों पर तो यह प्रभाव और भी शीघ्रता से पड़ता है। बलचनमा और उसके लड़के पर मैथिली भूलने या फिर फर-फर हिंदी बोलने का यही हेतु है।"[7]

नागार्जुन के उपरोक्त उद्धरण से वर्तमान भारतीय भाषाओं के क्षरण के कारणों को आसानी से समझा जा सकता है।

वस्तुतः नागार्जुन एक मोर्चे पर कई कार्य कर रहे थे। जब आचार्य रामविलास शर्मा ने मैथिली को हिंदी में मिल जाने की बात कही तो नागार्जुन ने गंभीरता और तार्किकता के साथ इसका खंडन किया। उन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में देखते हुए मातृभाषा मैथिली का बचाव किया। वे राष्ट्रभाषा और मातृभाषा को आपस में टकराने के पक्ष में नहीं थे। वे राष्ट्रीय भाषा के विकास को अन्य भारतीय भाषाओं के विकास के साथ सहसंबंध की तरह देखने-समझने के पक्षधर थे। एक प्रकार से उन्होंने संकल्पित राष्ट्रभाषा हिंदी और मातृभाषा मैथिली के बीच सामंजस्य स्थापित करने का कार्य किया। उनका भाषाओं के प्रति व्यक्त चिंतन बेहद सार्थक और समीचीन लगता है। वे भारतीय भाषाओं की प्रगति को राष्ट्रीय भाषा की प्रगति से विलग नहीं मानते थे। राष्ट्रीयता के साथ स्थानीयता का गहरा अंतर्संबंध है। यदि राष्ट्रीयता स्थानीयता का क्षरण करती है या स्थानीयता के कारण राष्ट्रीयता खंडित होती है तो यह सामूहिक और समावेशिक प्रगति नहीं है। अकारण नहीं, उन्होंने आजीवन मैथिली के साथ-साथ हिंदी की भरपूर सेवा और चिंता की। इन सब पहलुओं की गहरी चिंता करते हुए नागार्जुन ने लिखा कि "भूमिहीनों को भूमि मिलेगी और हाथों को काम मिलेंगे तो धरती की जीभ और अच्छी तरह मुखरित होगी- तब वह और अच्छी तरह मैथिली बोलेगी। राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी उसे अब भी मान्य है और आगे भी मान्य होगी। मातृभाषा हमारी मैथिली अधिकाधिक पुष्ट होगी तो राष्ट्रभाषा हिंदी को भी हमारे उस सांस्कृतिक साहित्यिक भरण-पोषण का उचित लाभ मिलेगा ही।"[8]

नागार्जुन अपनी मातृभाषा मैथिली या राष्ट्रीय भाषा हिंदी की प्रगति की चिंता करते हुए अन्य भारतीय भाषाओं की प्रगति को नज़रअंदाज नहीं करते हैं। उन्होंने सदैव मैथिली के साथ-साथ भोजपुरी, बंगला, मराठी, तमिल, तेलुगु आदि सभी भारतीय भाषाओं के उन्नयन की बात की है। वे भाषाई एकता और विविधता के प्रबल हिमायती थे। वे मानते थे कि सभी भाषाप्रेमी अपनी-अपनी मातृभाषाओं की प्रगति हेतु कार्य करेंगे तब भारतीय भाषाओं का विकास संभव हो सकेगा। इसीलिए उन्होंने लिखा कि "हमारी पड़ोसी भाषा भोजपुरी की भी अपनी कई खूबियां हैं। बंगला, मराठी, तमिल, तेलुगु...सबकी अपनी-अपनी विशेषताएं हैं। हमें क्या अधिकार है कि हम किसी को दबाएं या किसी की छाती पर चढ़ बैठें?"[9]

नागार्जुन एक साथ कई भारतीय भाषाओं की चिंता कर रहे थे। वे भारत की पारंपरिक और प्राचीन भाषा संस्कृत के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं के संरक्षण एवं परिवर्धन हेतु बेहद गंभीर और चिन्तनशील थे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में जिस त्रिभाषा प्रणाली की पुरजोर चिंता की गई है, इस चिंता को नागार्जुन ने स्वतंत्रता के ठीक बाद नोटिस किया है। उत्तर से दक्षिण भारत तक के बहुभाषिक रचनाकारों/कवियों के प्रति उनका गहरा सरोकार था। अकारण नहीं, नागार्जुन ने सन् 1958 में महाकवि वल्ल तोल नामक निबंध में केरल के महान कवि वल्लतोल के बहुभाषिक प्रेम और उनके अनुवादक रूप का बखान किया है। उन्होंने महाकवि वल्ल तोल का उल्लेख करते हुए लिखा कि "चाचा घर पर ही संस्कृत और मलयालम पढ़ाते थे। वल्लतोल पंद्रह साल की उम्र तक आते-आते संस्कृत के कितने ही काव्य नाटकों का अध्ययन-अनुशीलन कर चुके थे।"[10]

नागार्जुन भारतीय भाषाओं की चिंता करते हुए इनकी चुनौतियों के प्रति भी सचेत थे। वे अंग्रेजी भाषा के खिलाफ नहीं थे, बल्कि वे इसके अंधानुकरण के खिलाफ थे। वे अंग्रेजी के अंधानुकरण के साथ-साथ इसे फैशन के तौर पर प्रयोग करने वालों के प्रति कटु थे। वे हिंदी भाषा की प्रगति को औपनिवेशिक मुक्ति के संदर्भ में देखने-समझने के पैरोकार थे। उनका दृढ मत था कि जिस प्रकार स्वाधीनता संग्राम में समूचे भारतीय जनता ने संघर्ष किया, उसी प्रकार राष्ट्रीय भाषा हिंदी के विकास में संपूर्ण भारतीय जनता के योगदान को स्वीकार करना आवश्यक है। वे हिंदी को ख़ास समुदाय या क्षेत्र विशेष के अधिकार को नहीं मानते थे। वे हिंदी को अखिल भारतीय जनता की साझी संघर्ष-यात्रा के रूप में देखने के प्रबल हिमायती थे। जब 14 सितंबर 1949 को हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकृति मिली तो उसमें 15 वर्षों तक अंग्रेजी के न्यायालयिक प्रयोग की बात शामिल थी। नागार्जुन ने नवंबर, 1962 में अंग्रेजी की बाध्यता के प्रति चिंता जाहिर करते हुए 'हिंदी की छाती पर अंग्रेजी को नहीं लादा जा सकता' नामक विलक्षण निबंध लिखा। इसमें हिंदी की व्यापक प्रगति कैसे संभव हो, इसकी गहरी चिंता निहित है। उन्होंने लिखा कि "पंद्रह वर्ष हो गए, हमने हिंदी नहीं सिखी! हिंदी वाला सारा काम किरानी लोग कर ही रहे हैं, हम क्या करेंगे हिंदी सीखकर? .... मैंने बहुत बहुत खोजा, मगर यह हिंदी वाला मुझे कहीं नहीं मिला। कहां बोली जाती है हिंदी? बल्कि यह पूछना ठीक होगा कि कहां नहीं बोली जाती है हिंदी? कहां नहीं समझी जाती है? यह समूचे देश की साझी भाषा है, केवल उत्तरवालों की बपौती नहीं है! साधुओं संतों, फकीरों दरवेशों, घुमंतुओं बंजारों सिपाहियों हरकारों बनियों सौदागरों, पंडितों मौलवियों, कारीगरों-दस्तकारों के जत्थे हजारों साल से दूर-दूर घूमते-फिरते रहे हैं। उनमें से गूंगा एक प्रतिशत भी नहीं होगा। सो अभिव्यक्ति का यह प्रबल माध्यम (हिंदी) उन्हीं पूर्वजों की देन मानता हूं मैं, अखिल भारतीय पूर्वजों की देन!"[11]

वस्तुतः नागार्जुन ने राजभाषा हिंदी के साथ-साथ भारतीय भाषाओं के संरक्षण एवं परिवर्धन हेतु अंग्रेजी का विरोध किया। वे अंग्रेजी भाषा के अंधानुकर्ताओं के खिलाफ थे। वे अंग्रेजी के कारण हिंदी भाषा की उपेक्षा करने वालों के प्रति क्षुब्ध थे। उनके लिए राष्ट्रभाषा हिंदी का सवाल राष्ट्र की अस्मिता और अक्षुण्णता बनाए रखने के समान था। वे हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में देखने-समझने के बड़े हिमायती थे।

अकारण नहीं, उन्होंने लोहिया, गांधी, विनोबा सरीखे भाषा-चिंतकों के देसी भाषा संबंधी विचारों का पुरजोर समर्थन किया। आज जिस मैकाले शिक्षा नीति के दुष्प्रभावों की चिंता बार-बार वर्तमान शिक्षा नीतियों के द्वारा की जा रही है, उसकी भर्त्सना नागार्जुन ने साठ के दशक में करते हुए लिखा कि "हमारी हिंदी भी एक ही दिन के अंदर सर्वगुण संपन्न राष्ट्रभाषा नहीं हो जाएगी, बीसियों वर्ष लग जाएंगे इसमें। परन्तु इससे क्या? हम हिंदी की छाती पर अंग्रेजी को आगे भी यों ही लदी रहने देंगे? यों ही क्या हम आगे भी 'मैकाले के मानस पुत्र' कहलवाते रहेंगे?....लोहिया जी ने 'अंग्रेजी हटाओ' का नारा दिया तो विश्वात्मा टाईप के तथाकथित नए अभिजात व्यक्तियों ने उन्हें सनकी कहा। देशी भाषाओं के पक्ष में गांधी जी और विनोबा जी ने जो कुछ कहा है, उसकी चर्चा कीजिए तो सामनेवाला आपसे कहेगा- संतों की बात मत कीजिए।"[12]

निष्कर्षतः बाबा नागार्जुन एक कवि और उपन्यासकार के अलावा एक अनुवादक, भाषाविद, भाषा-चिंतक एवं भारतीय भाषाओं के अग्रदूत हैं। आधुनिक हिंदी कव्येतिहास में बहुत कम ऐसे कवि हैं जिन्होंने कवि के साथ-साथ भारतीय भाषाओं के प्रति इतने विलक्षण और दूरगामी विचार व्यक्त किये। भारतीय भाषाओं से जुड़े उनके निबंध बेहद समीचीन हैं। इस मायने में भी वे विरले निबंधकार हैं जिन्होंने एकसाथ मातृभाषा और राष्ट्रभाषा के अस्तित्व, प्रगति और चुनौतियों की सटीक पहचान करते हुए समाधान प्रस्तुत किया। निस्संदेह, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के विचार-मंथन के दौर में निबंधकार नागार्जुन का भाषिक चिंतन बेहद प्रासंगिक है। साथ ही भारतीय भाषाओं पर उपनिवेशवादी दुष्प्रभाव को समझने में उनके उपरोक्त विचार बेहद लाभप्रद हैं।

संदर्भ :

1. शोभाकांत (सं.). (2011). आज का मैथिली कवि. *नागार्जुन रचनावली-6.* नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 104.
2. शोभाकांत (सं.). (2011). आज का मैथिली कवि. *नागार्जुन रचनावली-6.* नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 105.
3. शोभाकांत (सं.). (2011). आज का गुजराती कवि. *नागार्जुन रचनावली-6.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 106.
4. शोभाकांत (सं.). (2011). मैथिली और हिंदी. *नागार्जुन रचनावली-6.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 167.
5. शोभाकांत (सं.). (2011). मैथिली और हिंदी. *नागार्जुन रचनावली-6.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 168.
6. शोभाकांत (सं.). (2011). मैथिली और हिंदी. *नागार्जुन रचनावली-6.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ.168-169.
7. शोभाकांत (सं.). (2011). मैथिली और हिंदी. *नागार्जुन रचनावली-6.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 175.
8. शोभाकांत (सं.). (2011). मैथिली और हिंदी. *नागार्जुन रचनावली-6.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 169.
9. शोभाकांत (सं.). (2011). मैथिली और हिंदी. *नागार्जुन रचनावली-6.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 176-177.
10. शोभाकांत (सं.). (2011). महाकवि वल्लत्तोल. *नागार्जुन रचनावली-6.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ.193.
11. शोभाकांत (सं.). (2011). हिंदी की छाती पर अंग्रेजी को नहीं लादा जा सकता. *नागार्जुन रचनावली-6.* पृ. 218.
12. शोभाकांत (सं.). (2011). हिंदी की छाती पर अंग्रेजी को नहीं लादा जा सकता. *नागार्जुन रचनावली-6.* पृ. 218.

सहायक ग्रंथ :

1. राय, प्रो. कौलेश्वर. (2021). *बिहार का इतिहास*. नई दिल्ली : किताब महल
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति. (2020). भारत सरकार : मानव संसाधन विकास मंत्रालय. नई दिल्ली

'बिहारी-सतसई' का लोकवृत्त

जितेंत्र कुमार[*]

jkshukla@gmail.com

सारांश :

'बिहारी-सतसई' हिन्दी साहित्य की एक अनमोल मुक्तक काव्य कृति है, जिसमें कवि बिहारीलाल ने केवल 713 दोहों के माध्यम से प्रेम, भक्ति, नीति, समाज, संस्कृति और राजनीति जैसे विविध पक्षों को अत्यंत प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। इस कृति में नायक-नायिका के प्रेम, लोक संस्कृति, मानवीय भावनाओं और नीति-संबंधी विचारों का अत्यंत सघन और कलात्मक चित्रण किया गया है। बिहारी की भाषा ब्रजभाषा है, जिसमें अलंकारों की छटा और संगीतमयता के साथ-साथ लोकजीवन की सजीव झलक मिलती है। यह कृति न केवल साहित्यिक सौंदर्य से समृद्ध है, बल्कि समाजशास्त्रीय और सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यंत मूल्यवान है। 'बिहारी-सतसई' रीतिकालीन सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक वातावरण की झलक प्रस्तुत करती है, तथा लोक और शास्त्र की समानांतर सत्ता को भी उद्घाटित करती है।

मुख्य शब्द :

बिहारी-सतसई, लोकवृत्त, ब्रजभाषा, नीति काव्य, श्रृंगार रस, कृष्ण भक्ति, लोक संस्कृति, सामाजिक चेतना

'बिहारी-सतसई' प्रसिद्ध हिन्दी कवि बिहारीलाल द्वारा रचित, एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह रचना रस, अलंकार, और नीति के उत्कृष्ट प्रयोग के लिए जानी जाती है। इसमें कुल 713 दोहे हैं, जो प्रेम, भक्ति, नीति, और समाज के विभिन्न पहलुओं को संक्षिप्त और प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करते हैं। बिहारी की एकमात्र कृति 'सतसई' है और यह इस बात का प्रमाण है कि किसी कवि की श्रेष्ठता की अंतिम कसौटी उसके कृतित्व का परिणाम नहीं गुण ही है। शुक्ल जी के अनुसार:- *"बिहारी ने इस सतसई के अतिरिक्त और कोई ग्रंथ नहीं लिखा। यही एक ग्रंथ उनकी इतनी बड़ी कीर्ति का आधार है। यह बात साहित्य क्षेत्र के इस तथ्य की घोषणा कर रहा है कि किसी कवि का यश उसकी रचनाओं के परिमाण के हिसाब से नहीं होता, गुण के हिसाब से होता है"*[1]। लगभग चौदह सौ पंक्तियाँ लिखकर बिहारी ने जो यश अर्जित किया, वह ज्यादातर चौदह हजार पंक्तियों के रचयिता के लिए भी दुर्लभ है।

बिहारी का जन्म 1595 ई. में बसुवा गोविन्दपुर गाँव, ग्वालियर में हुआ था। बचपन में ही पिता के साथ ग्वालियर से ओरछा आ गए यहीं इनकी शिक्षा दीक्षा हुई:-

[*] **शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

बसुवा ग्राम गोविन्दपुर में जन्म बिहारी ने पाया
बसे ससुर के घर मथुरा में जयसिंह नृप का कवि कहलाया
बिहारी-सतसई की रचना कर जग में अपना नाम कमाया
नखशिख, नायिकाभेद, खट्ऋतु वर्णन करने वाले
ये अलंकार मय भाषा में दोहा रचना करने वाले।

बिहारी का विवाह मथुरा में हुआ और विवाहोपरांत बहुत दिनों तक यहीं रहे। बिहारी ने लिखा है :- ''जनम ग्वालियर जानिये खंड बुंदेले बाल। तरुनाई आई सुघर मथुरा बसि ससुराल''।।

लोकवृत्तः

'लोकवृत्त' दो शब्दों से मिलकर बना है जिसमें 'लोक' का अर्थ होता है 'लोग' या 'जनता' और 'वृत्त' का अर्थ है 'परिधि' या 'क्षेत्र'। अतः 'लोकवृत्त' का अर्थ हुआ 'जनता का क्षेत्र,' 'जनता से संबंधित क्षेत्र' या 'सार्वजनिक क्षेत्र'। आधुनिक संदर्भ में, यह शब्द उस क्षेत्र या वातावरण का संदर्भ देता है जहां सार्वजनिक मुद्दों, चर्चाओं, और विचारों का आदान-प्रदान होता है। इसे हम 'सार्वजनिक क्षेत्र' या 'पब्लिक स्फीयर' भी कहते हैं। वासुदेवशरण अग्रवाल ने लोक पर विचार व्यक्त करते हुए कहा था ''लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है। उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है लोक प्रायोगिक ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शस्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है । लोक की धात्री सर्वभूत माता पृथ्वी और लोक व्यक्ति रूप मानव – यही हमारे नये जीवन अध्यात्म शास्त्र है। इनका कल्याण हमारे मुक्ति का द्वार है और निर्माण या नवीन रूप है। लोक पृथ्वी मानव इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है''[2] साधारण शब्दों में 'लोक' सर्व साधारण जनता ही है। वह जनता जो एक देश, एक प्रभुसत्ता, एक साध्यता आउए उसके भीतर नाना संस्कृतियों को निर्मित कर अपने अस्तित्व को प्रकाशित करती है। गोस्वामी तुलसीदास ने इस 'लोक' का प्रयोग सार्थक रूप में करते हुए उसकी सत्ता को स्वतंत्र माना है –

''लोकहु वेद सुसाहिब रीती। विनय सुनत पहिचानत प्रीती ।।
गनी गरीब ग्राम नर नागर । पंडित मूड मलिन उजागर''[3] ।।

अर्थात 'लोक' और 'वेद' दोनों की परंपरा है कि सुसाहिब यानी प्रतिपालक, विनय सुनकर प्रीति को पहचान लेता है। उसके लिए पंडित, मूर्ख, मंदबुद्धि जो भी हों, वे उजागर (प्रकट) हो जाते हैं। यहाँ बल 'लोक' और 'वेद' पर है और जाहिर है तुलसीदास ने लोक को वेद यानी शास्त्र के समानांतर सत्ता (परम्परा) स्वीकार किया है। स्पष्ट है दो ही सत्ताएँ हैं – एक लोक की, दूसरी शास्त्र की। बिहारी सतसई के दोहे तत्कालीन समाज के रीति-रिवाज, परंपराओं, और आचार-व्यवहार का स्पष्ट चित्रण करते हैं। बिहारी के समय में समाज में भक्ति, प्रेम, और राजनीति का विशेष महत्व था, और उन्होंने इन विषयों पर गहन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। बिहारी सतसई का लोकवृत्त उस समय के राजपूताना और ब्रज क्षेत्र की संस्कृति, समाज, और धार्मिक मान्यताओं का

दर्पण है। यह रचना न केवल साहित्यिक दृष्टि से बल्कि समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह उस समय के जीवन, सोच, और मूल्यों को प्रतिबिंबित करती है। बिहारी सतसई का लोकवृत्त निम्नलिखित बिंदुओं में समझा जा सकता है:

प्रेम, भक्ति और नीति का मिश्रण:

बिहारी सतसई में प्रेम भक्ति और नीति का अद्वितीय संगम मिलता है। प्रेम के विभिन्न रूपों जैसे राधा-कृष्ण का दिव्य प्रेम, नायक-नायिका भेद, और गृहस्थ जीवन की नीतियों का वर्णन अत्यंत सुंदरता से किया गया है। रीतिकालीन कवियों का प्रेम श्रृंगार से जुड़कर ही विकसित होता है।"*बिहारी में रीतिकालीन भंगिमाँए बहुत अच्छी तरह देखी जा सकती हैं*"[4]। ऐंद्रिक प्रेम से अतींद्रिय प्रेम की छवि यहाँ देखी जा सकती है। प्रेम में प्रिय की सभी वस्तुएँ प्यारी लगती हैं:-

"उड़ति गुड़ी लखि ललन की, अंगना अंगना माँह।
बौरी लौं दौरी फिरति, छुअत छबीली छाँह"[5]॥

नायक पतंग उड़ा रहा है, उसकी परछाई नायिका के घर पर पड़ रही है। नायिका उस परछाई के पीछे-पीछे भाग रही है तथा पतंग की छाया को छूकर प्रिय-स्पर्श के सुख का अनुभव कर रही है। बिहारी के अनेक दोहों में इस प्रकार की मनोवैज्ञानिक अवस्था का चित्रण किया गया है। प्रेम में प्रेमिका और प्रेमी को जग का ख्याल नहीं रहता। नायिका जगनिंदा के डर से प्रेमी के घर से बाहर जाती है लेकिन प्रेम की संवेदना इस कदर प्रभावी हैं कि वह बार-बार प्रेमी के घर ही पहुँच जा रही है:

"चलतु धेरू घर घर, तऊ घरी न घर ठहराइ।
समुझि उहीं घर कौं चलै, भूलि उहीं घर जाइ"[6] ॥

प्रिय का इंतज़ार कठिन और पीड़ादायी होता है। आसपास की चीज़ों में प्रिय की ही तस्वीर नज़र आती हे पर प्रिय नहीं होता। कवि ने प्रेमिका की इसी संवेदना को निम्नलिखित दोहे में व्यक्त किया है-

"स्याम-सुरति करि राधिका, तकति तरनिजा-नीर।
अँसुवनि करति तरौंस को खिनक खरौहों नीर"[7]॥

राधा श्याम का स्मरण करके बार-बार श्याम-वर्णी यमुना की ओर देख रही है। यमुना में उसे श्याम का प्रतिबिंब दीख रहा है पर श्याम आते नहीं दीखते। यमुना तट को देखकर न जाने कितनी यादें ताज़ा हो जाती हैं। आँसू खारा है और इसके निरंतर प्रवाहित होने से यमुना तट का जल भी खारा हो जाता है।

"श्रृंगार रस के ग्रंथों में जितनी ख्याति और जितना मान 'बिहारी सतसई' का हुआ उतना और किसी का नहीं। इसका एक-एक दोहा हिंदी साहित्य में एक-एक रत्न माना जाता है"[8]।

बिहारी का मन जब कभी श्रृंगार वर्णन से थक जाता है तो वे भक्ति रस में मग्न हो जाते हैं। कहना न होगा कि उनकी भक्ति भी श्रृंगारिकता का ही एक अंग है। जीवन की अतिशय रसिकता से घबराए, बिहारी के धर्मभीरु मन को भक्ति ही सहारा देती है। रीतिकालीन कवियों ने श्रृंगार के साथ भक्ति को स्थान दिया है भिखारीदास ने कहा है "रीझहि सुकवि सो तो जानौ कविताई, न तो रधिका कन्हाई सुमरिन को बहानो है"। सतसई का पहला दोहा मंगलाचरण यही सिद्ध करता है:-

"मेरी भव–बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।

जा तन की झाईं परै, स्यामु हरित–दुति होई"[9]।।

बिहारी को लोक की गहरी पहचान है। नीति के दोहे में उनके लोक ज्ञान की परख होती है। मानवीय स्वभाव और जीवन बोध को उन्होंने कई दोहों में व्यक्त किया है। जगह-जगह इन दोहों में धन अथवा स्वर्ण की निंदा है। कभी-कभार शासन भार से भयभीत और दुःखी जनता की भी वे चर्चा करते हैं। नीच मनुष्यों के अपरिवर्तनशील स्वभाव का उन्हें अच्छा अनुभव है यथा-

"कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय।

बा खाए बैराय जग, या पाये बौराइ"[10] ।।

स्वर्ण आदमी को पागल बना देता है उसका लोभ नाश का कारण है। नीच प्रकृति के व्यक्ति के लिए उनका विचार है कि वह अपरिवर्तनशील होता है-

"कोरि जतन कोअ करौ, परै प्रकृतिहिं बीचु ।

नल-बल जलु ऊँचैं चढैं अंत नीच कौ नीचु"[11] ।।

साहित्यिक और भाषाई परिवेशः

सतसई की भाषा ब्रजभाषा है, जो उस समय की मुख्य काव्य भाषा थी। ब्रजभाषा अपनी सहजता, सरसता, और मिठास के कारण विभिन्न वर्गों में लोकप्रिय थी। सतसई में अलंकारों का सुंदर प्रयोग मिलता है, जो उस समय की काव्यशैली को दर्शाता है। "ब्रजभाषा पर बिहारी का असाधारण अधिकार था। उनको शब्द और वर्ण के स्वभाव की परख थी। शब्द और वर्ण उनके दोहों में नगों के समान जड़े हैं और रत्नों की आभा बिखेरते हैं। शब्द को मांजने, चमकाने, मोड़ने और संवारने की कला में बिहारी सिद्धहस्त हैं। उनकी रचना में ब्रजभाषा अपनी प्रौढ़ता और भाव-संपन्नता में इठलाती हुई फलती है। वह लय और गति, संगीत और नर्तन की विशेषताओं से युक्त हैं। उनकी भाषा प्रांजल, प्रौढ़, मधुर और सरस है। निम्नलिखित उदाहरण इसके प्रमाण हैं:

"अंग अंग नग जगमगति, दीप सिखा सी देह।

दीया बुझाए हूँ रहे, बड़ो उजेरो गेह"[12]।।

"डॉ ग्रियर्सन के अनुसार यूरोप में 'बिहारी-सतसई' के समकक्ष कोई रचना नहीं है"[13]। कहना न होगा पूरी सतसई को छोड़ दीजिए अगर बिहारी के एक-एक दोहे की बात करें तो भी शायद ही कोई रचनाकार इनके पास नज़र आएगा। एक उदाहरण देखते हैं:-

"कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।

भरे भौन मैं करत हैं, नैननु ही सब बात"[14]॥

यूरोप में ही नहीं शायद ही विश्व का कोई रचनाकार मात्र दो पंक्तियों में सात क्रियाओं का प्रयोग करके सार्थक अर्थ देते हुए ऐसा वर्णन किया होगा। शुक्ल जी के अनुसार:- *"जिस कवि में कल्पना की समाहारशक्ति के साथ भाषा की समाहारशक्ति जितनी अधिक होगी उतनी ही वह मुक्तक की रचना में सफल होगा। यह क्षमता बिहारी में पूर्ण रूप से वर्तमान थी। इसी से वे दोहे ऐसे छोटे छंद में इतना रस भर सके हैं। इनके दोहे क्या हैं रस के छोटे-छोटे छीटें हैं। इसी से किसी ने कहा है- सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर। देखत में छोटे लगें, बेधैं सकल सरीर"[15] ॥*

धार्मिक और सांस्कृतिक वातावरण:

किसी भी रचनाकार का रचनात्मक व्यक्तित्व और उसकी रचना पर युगीन परिवेश का गहरा असर होता है । बिहारीलाल का जीवनकाल राजस्थान और ब्रज क्षेत्र में बीता था, और उनकी रचनाओं में इस क्षेत्र की सांस्कृतिक झलक मिलती है। उनके काव्य में राजपूताना के वीरता, सम्मान, और ब्रज की प्रेममयी भूमि का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। सतसई में कृष्ण-भक्ति और राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन मिलता है, जो उस समय की भक्ति आंदोलन की प्रवृत्ति को दर्शाता है। यह ब्रज क्षेत्र की संस्कृति, धार्मिक आस्था, और परंपराओं को भी उजागर करता है। बिहारी का कवि-व्यक्तित्व भले ही नागर हो लेकिन उनमें किसानी और पशुपालन संस्कृति की भी झलक है। राधा-कृष्ण के प्रेम का चित्रण करते हुए बिहारी की कविता की मनमोहक छवियों को देखा जा सकता है। प्रेम की गहन अनुभूति और पशुपालन संस्कृति का निम्नलिखित दोहा प्रमाण है। इस दोहे में कृष्ण राधा से अपनी गाय के झुंडों में उनकी गाय न मिलाने का आग्रह करते हैं, लेकिन कृष्ण के प्रेम में मगन राधा कहाँ मानने वाली वह गायें मिला देती हैं। फिर इस कार्यकलाप में दोनों शामिल हैं, दोनों की आँखें मिल जाती हैं तो मन भी मिल जाता है:-

"उन हरकी हँसी कै, इतै, इन सौंपि मुसकाइ।

नैन मिलै मन मिलि गए दोऊ, मिलवत गाइ"[16]।

ग्रामीण संस्कृति को प्रस्तुत करता एक अन्य उदाहरण निम्नलिखित हैं:-

"पाइ महावरु दैंन कौं नाइनि बैठी आइ।

फिरि फिरि, जानि महावरी, एड़ी मीड़ति जाइ॥"[17]॥

नाइन नायिका के महावर लगाने के लिए आई हुई है। वह पैरों में महावर लगाने के लिए आती है और नायिका के समक्ष बैठ जाती है। नाइन महावरी अर्थात् लाल रंग से सराबोर कपड़ा कहीं रखकर भूल जाती है और भ्रम से नायिका की एड़ी को ही महावरी समझ बैठती है, क्योंकि नायिका की एड़ी इतनी कोमल और लाल है कि नाइन को भ्रम हो जाता है और परिणाम स्वरूप वह बार-बार नायिका की एड़ियों को मींड़ती जाती है।

सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति:

किसी भी रचना की सामाजिक-आर्थिक **एवं राजनीतिक** आधारों की उपेक्षा करके हम उसके भीतरी बाहरी अंतर्विरोधों, तनावों और मूल्यों को सही तरह नहीं समझ सकते हैं। रचना की सौन्दर्य दृष्टि उसके सामाजिक आधारों के भीतर से ही फूटती है। इसी तरह की दृष्टि से बिहारी और रीतिकाल के परिवेश को समझना आवश्यक है, क्योंकि इसी रीतिकालीन परिवेश ने बिहारी की रचनात्मक मानसिकता का गठन किया है। बिहारी का समय मुगल काल था, जिसमें राजनीति और सत्ता का केंद्रीकरण था। सतसई में राजनीतिक चातुर्य और समकालीन सत्ता की नीतियों का सूक्ष्म संकेत मिलता है। बिहारी ने महाराज जयसिंह के दरबार में भी अपनी सेवाएं दी थीं, इसलिए राजदरबार की जीवनशैली और राजनीति का प्रभाव भी सतसई में देखा जा सकता है। बिहारी का काल अकबर के शासनकाल का उत्तरार्ध और औरंगजेब के राज्याभिषेक के कुछ वर्षों तक फैला हुआ है। उन्होंने तीन मुगल शासकों और उनकी नीति देखी थी। जहांगीर-शाहजहां का काल वैभव विलास और कला की नक्काशी का काल था। जनता उपेक्षित, शोषित और पीड़ित थी तथा उच्च वर्ग आमोद-प्रमोद के सुख-साधनों को भोगने में मस्त था। अवध, दिल्ली, बुंदेलखंड, राजस्थान के राजाओं, नवाबों के विलासिता के किस्सों का प्रमाण उस युग के कवियों की रचनाओं में साफ देखा जा सकता है। रीतिकाल के इस दौर में अधिकांश कवि सामंती वैभव की चमक-दमक की प्रशंसा करते हैं लेकिन बिहारी जैसे कुछ विरले कवि युगीन यथार्थ का चित्रण करते, उससे टकराते और आश्रयदाता को झकझोरते हुए अपने कवि व्यक्तित्व का विकास करते हैं। अपने आश्रयदाता जयपुर नरेश राजा जयसिंह द्वारा प्रजा विमुख होकर नवविवाहिता पत्नी के साथ अधिक आसक्त होने पर उन्हें चेताते हुए यह दोहा लिखना उस दौर में एक बड़े कवि के कवि व्यक्तित्व का साहस ही कहा जा सकता है:

"नहिं परागु, नहिं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहिं काल।
अली, कली ही सौं बंध्यौ, आगें कौन हवाल"[18] ।।

बिहारी के समय में स्त्री की स्थिति समाज में कैसी थी इसका एक बहुत अच्छा उदाहरण है:

"कहति न देवर की कुबत, कुल-तिय कलह डराति।
पंजर-गत मंजार-ढिग, सुक ज्यौं सूकति जाति"[19]।।

नायिका कुलवधू है, पतिव्रता है, लड़ाई-झगड़े से डरती है। इसी कारण अपने देवर की ओछी और अश्लील हरकतों को किसी के भी सामने व्यक्त नहीं करती है। किसी से न कह पाने के कारण वह निरंतर सूखती जा रही है और उसका शरीर क्षीण से क्षीणतर होता जा रहा है। उसकी स्थिति ऐसी हो गई है जैसे पिंजरे के पास बैठे हुए बिलार को देखकर पिंजड़े में बंद तोते की हो जाती है।

नैतिक और शिक्षाप्रद दृष्टिकोण:

सतसई में नैतिकता और जीवन के व्यवहारिक पहलुओं पर भी जोर दिया गया है। बिहारी के नीति दोहों में समाज में व्याप्त दोष, व्यक्तियों के चरित्र की कमी, और आदर्श जीवन की दिशा को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। बिहारी निश्चित रूप से श्रृंगार के बड़े कवि हैं। उनके दोहों में इस भाव की तमाम बारीकियाँ अत्यंत कुशलता से चित्रित हुई हैं। लेकिन कवि को श्रृंगारेतर अनुभव भी है। वह जीवन और समाज की जटिलताओं से भी परिचित है। इस भाव के दोहे सतसई में संख्या की दृष्टि से कम अवश्य है, परंतु मार्मिकता में कहीं से भी कम नहीं हैं।

“संगति दोषु लगै सबनु कहे ति साँचे बैन।
कुटिल बंक भ्रुव संग भए कुटिल बंक गति नैन”[20]॥

संगति का दोष सबको लगता है, सचमुच यह बात सच्ची कही गई है। तिरछी टेढ़ी भँवों की संगति से आँखें भी टेढ़ी और तिरछी चाल वाली हो गई है।

निष्कर्ष :-

इस प्रकार ‘बिहारी-सतसई’ के समग्र विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने अपने काव्य में लोक की ही विवेचना की है। ‘बिहारी सतसई’ के अध्ययन से यह निष्कर्ष सहज ही निकलता है कि वे इस काल की संस्कृति, धर्म, आर्थिक-सामाजिक स्थिति व राजनीति के दांव पेचों से अनभिज्ञ न थे। बिहारी के दोहे हाथी-दांत के टुकड़े पर किए गए बेलबूटे की तरह हैं जिसे बार-बार देखने पर भी हृदय की अभिलाषा तृप्त नहीं होती। बिहारी के दोहों की संख्या सीमित होने से हम निराश हो सकते हैं किन्तु उन्होंने रूप चित्रों के कनक कटोरों में इतना लावण्य उड़ेल दिया है कि हम उनकी उपेक्षा नहीं कर पाएंगे। शुक्लजी ने भी कहा है : “यदि प्रबंधकाव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है”[21]। ‘बिहारी-सतसई’ चुने हुए फूलों का गुलदस्ता ही है

अर्थात बिहारीलाल ने अपने काव्य में तत्कालीन लोक जीवन, संस्कृति, राजनीति, नारी की स्थिति, सामाजिक व्यवस्थाएं, और धार्मिक प्रवृत्तियों को अत्यंत सूक्ष्मता और कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है। उनके दोहे जहाँ एक ओर श्रृंगार रस की ऊँचाइयों को छूते हैं, वहीं दूसरी ओर नीति, भक्ति और यथार्थ बोध से भी भरपूर हैं। सीमित पंक्तियों में उन्होंने इतनी व्यापक और गहन अभिव्यक्ति दी है कि उनका काव्य लोक मानस

का प्रतिबिंब बन गया है। 'बिहारी-सतसई' वास्तव में एक ऐसा कलात्मक गुलदस्ता है, जिसमें लोक संस्कृति की सुवास और साहित्यिक सौंदर्य का अद्वितीय संगम देखा जा सकता है।

संदर्भ :-

[1] शुक्ल, रामचन्द्र. (2021). *हिंदी साहित्य का इतिहास. (*17वीं इ.). इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन. पृ. 168.

[2] सम्मेलन पत्रिका (2010). पृ. 65

[3] तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड 27/3

[4] चतुर्वेदी, रामस्वरूप. (2011). *हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास. (*22वीं इ.). इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.

[5] 'रत्नाकर' श्री जगन्नाथदास. (संपा.). (2006). *बिहारी रत्नाकर*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान. दोहा सं.373 पृ.150

[6] 'रत्नाकर' श्री जगन्नाथदास. (संपा.). (2006). *बिहारी रत्नाकर*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान. दोहा सं.461 पृ.181

[7] 'रत्नाकर' श्री जगन्नाथदास. (संपा.). (2006). *बिहारी रत्नाकर*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान. दोहा सं.292 पृ.124

[8] शुक्ल, रामचन्द्र. (2021). *हिंदी साहित्य का इतिहास. (*17वीं इ.). इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन. पृ. 168.

[9] 'रत्नाकर' श्री जगन्नाथदास. (संपा.). (2006). *बिहारी रत्नाकर*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान. दोहा सं.1 पृ.20

[10] 'रत्नाकर' श्री जगन्नाथदास. (संपा.). (2006). *बिहारी रत्नाकर*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान. दोहा सं.192 पृ.90

[11] 'रत्नाकर' श्री जगन्नाथदास. (संपा.). (2006). *बिहारी रत्नाकर*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान. दोहा सं.341 पृ.141

[12] 'रत्नाकर' श्री जगन्नाथदास. (संपा.). (2006). *बिहारी रत्नाकर*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान. दोहा सं.69 पृ.49

[13] नगेन्द्र. (संपा.). (2018). *हिंदी साहित्य का इतिहास. (*62वीं इ.). नई दिल्ली: मयूर बुक्स. पृ. 324.

[14] 'रत्नाकर' श्री जगन्नाथदास. (संपा.). (2006). *बिहारी रत्नाकर*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान. दोहा सं.32 पृ.36

[15] शुक्ल, रामचन्द्र. (2021). *हिंदी साहित्य का इतिहास. (*17वीं इ.). इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन. पृ. 168.

[16] 'रत्नाकर' श्री जगन्नाथदास. (संपा.). (2006). *बिहारी रत्नाकर*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान. दोहा सं.128 पृ.69

[17] 'रत्नाकर' श्री जगन्नाथदास. (संपा.). (2006). *बिहारी रत्नाकर*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान. दोहा सं.35 पृ.37

[18] 'रत्नाकर' श्री जगन्नाथदास. (संपा.). (2006). *बिहारी रत्नाकर*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान. दोहा सं.38 पृ.38

[19] 'रत्नाकर' श्री जगन्नाथदास. (संपा.). (2006). *बिहारी रत्नाकर*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान. दोहा सं.85 पृ.54

[20] 'रत्नाकर' श्री जगन्नाथदास. (संपा.). (2006). *बिहारी रत्नाकर*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान. दोहा सं.303 पृ.128

[21] शुक्ल, रामचन्द्र. (2021). *हिंदी साहित्य का इतिहास. (*17वीं इ.). इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन. पृ. 168.

सेक्स और जेंडर की सामाजिक संरचना: भारत में पहचान, भेदभाव और स्वीकृति के बदलते आयाम

डॉ. स्मिता भगत*

smitabhagat9096@gmail.com

सारांश :-

भारतीय समाज ऐतिहासिक रूप से एक द्वैध लिंग संरचना (binary gender structure) का पोषक रहा है, जिसमें केवल स्त्री और पुरुष को ही सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। इस ढाँचे में जैविक सेक्स और सामाजिक जेंडर को एक ही रूप में देखा जाता रहा, जिससे अनेक जेंडर पहचानों को हाशिए पर धकेल दिया गया। यह शोध भारत में सेक्स और जेंडर की सामाजिक संरचना की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, समकालीन चुनौती और नवाचारों का सामाजिक-न्यायिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार सेक्स (जैविक लक्षण) और जेंडर (सामाजिक भूमिका) के भेद को समझना आवश्यक है ताकि ट्रांसजेंडर, हिजड़ा, समलैंगिक और उभयलिंगी जैसे समुदायों की पहचान, अधिकार और गरिमा को मान्यता मिल सके। शोध में नालसा बनाम भारत सरकार (2014) और नवतेज सिंह जौहर बनाम भारत सरकार (2018) जैसे ऐतिहासिक निर्णयों की समीक्षा की गई है, जिन्होंने जेंडर विविधता की संवैधानिक स्वीकृति को दिशा दी। साथ ही ट्रांसजेंडर पर्सन्स (अधिकारों की सुरक्षा) अधिनियम, 2019 की आलोचनात्मक समीक्षा यह दर्शाती है कि कानूनी ढांचे में सुधार के बावजूद सामाजिक स्तर पर भेदभाव, पूर्वाग्रह और अस्वीकार्यता अभी भी व्यापक हैं। इस शोध में शहरी और ग्रामीण भारत की तुलना, जेंडर के चित्रण में मीडिया की भूमिका, और शिक्षा में समावेशन की स्थिति पर भी चर्चा की गई है।

शोध निष्कर्ष यह संकेत करता है कि जेंडर पहचान की स्वीकृति के लिए केवल कानूनी सुरक्षा पर्याप्त नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, नीति-सुधार और सांस्कृतिक संवाद की आवश्यकता है। समावेशी विकास के लिए यह ज़रूरी है कि सेक्स और जेंडर को सामाजिक संरचना की एक गतिशील इकाई के रूप में देखा जाए, जो समय और संदर्भ के अनुसार विकसित होती है।

प्रमुख शब्द-

सेक्स और जेंडर, ट्रांसजेंडर अधिकार, जेंडर भेदभाव, सामाजिक संरचना, न्यायिक हस्तक्षेप, LGBTQIA+ समुदाय जेंडर पहचान।

---

* **साहस एन्क्लेव्ह बिल्डींग फ्लॅट क्रमांक-१०१ पाटील नगर, नालवाडी वर्धा**

प्रस्तावना :-

भारतीय समाज में सेक्स (Sex) और जेंडर (Gender) की अवधारणाएँ सदियों से सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक व्यवस्था से जुड़ी रही हैं। परंपरागत दृष्टिकोण में इन दोनों को एक-दूसरे का पर्याय मान लिया गया है, जिससे लैंगिक भूमिकाएँ (Gender Roles) एक निश्चित और कठोर ढाँचे में ढली हुई रही हैं। हालाँकि, आधुनिक समाजशास्त्र और नारीवादी विमर्श ने यह स्पष्ट किया है कि सेक्स एक जैविक सच्चाई है, जबकि जेंडर एक सामाजिक निर्माण (Social Construct) है, जो समय, समाज और संस्कृति के अनुसार बदलता है।

जूडिथ बटलर (Judith Butler) के अनुसार, "Gender is not something that one is, it is something one does, an act… a doing rather than a being." (Butler, Gender Trouble, 1990)। इस कथन से स्पष्ट होता है कि जेंडर कोई स्थिर पहचान नहीं, बल्कि सामाजिक क्रियाओं और भूमिका-अभिनय का परिणाम है, जिसे समाजिक दबावों द्वारा ढाला जाता है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में, सेक्स और जेंडर की यह समझ अधिक जटिल हो जाती है, क्योंकि यहाँ पितृसत्ता, धर्म, जाति और नैतिकता का गहरा प्रभाव सामाजिक पहचान पर पड़ता है। हिजड़ा, किन्नर, ट्रांसजेंडर, उभयलिंगी और समलैंगिक समुदायों की ऐतिहासिक उपस्थिति के बावजूद उन्हें सामाजिक अधिकारों और सम्मान से वंचित रखा गया।

प्रसिद्ध मानवविज्ञानी सेरेना नंदा (Serena Nanda) अपनी पुस्तक Neither Man nor Woman: The Hijras of India (1990) में लिखती हैं, “The hijras represent a form of institutionalized gender diversity that has long existed in South Asia, yet they are marginalized both legally and socially.” इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि भले ही विविध लिंग पहचानों की सांस्कृतिक स्वीकृति रही हो, लेकिन वास्तविक सामाजिक और कानूनी स्वीकृति का अभाव बना रहा।

21वीं सदी में, वैश्विक और राष्ट्रीय स्तर पर LGBTQIA+ अधिकारों, ट्रांसजेंडर की मान्यता, और यौनिकता के लोकतंत्रीकरण की दिशा में अहम परिवर्तन देखे गए हैं। भारत में सुप्रीम कोर्ट द्वारा 2014 में दिए गए ‘NALSA बनाम भारत सरकार’ निर्णय ने ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को 'तीसरे लिंग' के रूप में संवैधानिक मान्यता प्रदान की, वहीं 2018 में ‘धारा 377’ को असंवैधानिक घोषित करते हुए समलैंगिक संबंधों को अपराध की श्रेणी से बाहर किया गया।

यह परिवर्तन न केवल कानूनी स्तर पर महत्वपूर्ण रहे, बल्कि सामाजिक विमर्श और पहचान की राजनीति में भी व्यापक परिवर्तन लाए हैं। आज जब भारत ‘न्यू इंडिया’ और ‘डिजिटल भारत’ की बात कर रहा है, तब जेंडर समानता, लैंगिक अधिकारों की रक्षा, और सामाजिक समावेशन की मांग और अधिक प्रासंगिक हो गई है।

इस शोध पत्र का उद्देश्य है- भारतीय समाज में सेक्स और जेंडर की सामाजिक संरचना की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक समीक्षा करना, साथ ही यह विश्लेषण करना कि किस प्रकार पहचान, भेदभाव और स्वीकृति के आयाम समय के साथ बदलते रहे हैं। यह शोध उन अंतर्विरोधों को उजागर करने का प्रयास करता है जहाँ एक ओर कानूनी मान्यता मिल रही है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक अस्वीकार्यता और भेदभाव अब भी यथावत हैं।

सेक्स एक जैविक तथ्य है जो जन्म के समय व्यक्ति के जननांगों, गुणसूत्रों और हार्मोनों के आधार पर निर्धारित किया जाता है। इसके अंतर्गत सामान्यतः दो श्रेणियाँ आती हैं – पुरुष और स्त्री। इसके विपरीत, जेंडर एक सामाजिक और सांस्कृतिक निर्माण (social construct) है, जो यह तय करता है कि समाज में किसी व्यक्ति से किस प्रकार की भूमिकाएँ, व्यवहार और व्यक्तित्व अपेक्षित हैं। जेंडर को केवल 'नारी' या 'पुरुष' तक सीमित नहीं रखा जा सकता। आधुनिक समाजशास्त्र, विशेष रूप से जूडिथ बटलर (Judith Butler, Gender Trouble, 1990) यह तर्क देती हैं कि जेंडर एक स्थायी पहचान नहीं बल्कि एक प्रदर्शनात्मक प्रक्रिया (performativity) है- अर्थात व्यक्ति समाज की अपेक्षाओं के अनुरूप जेंडर व्यवहार करता है।

भारत में पारंपरिक दृष्टिकोण जेंडर को स्थिर और धर्म-आधारित भूमिका में बाँधता है – स्त्री को पालन-पोषण और पुरुष को नियंत्रण का अधिकारी माना जाता है। परंतु आज यह स्पष्ट हो चुका है कि न तो सभी पुरुष 'मर्दाना' होते हैं, और न ही सभी स्त्रियाँ 'कोमल' होती हैं। इसके अतिरिक्त, हिजड़ा, ट्रांसजेंडर, गैर-बाइनरी, लैंगिक तरलता (gender fluidity) आदि जेंडर पहचानों का भी समाज में अस्तित्व है, जिन्हें अब समझे जाने और मान्यता दिये जाने की आवश्यकता है।

सिद्धांतात्मक पृष्ठभूमि :-

सेक्स और जेंडर की सामाजिक संरचना को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम उन्हें केवल जैविक अंतर नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक निर्माण के रूप में देखें। पितृसत्ता, क्वीयर थ्योरी और जेंडर प्रदर्शनवाद जैसे सिद्धांत इस विमर्श को गहराई देते हैं। यह पृष्ठभूमि स्पष्ट करती है कि जेंडर पहचान समाज द्वारा थोपे गए दायित्वों की नहीं, बल्कि व्यक्ति की स्वतंत्र अनुभूति की अभिव्यक्ति है। भारत में यह बहस सामाजिक न्याय और मानवाधिकार के मूल मुद्दों से जुड़ी हुई है।

(क) सेक्स और जेंडर का अंतर:
Sex एक जैविक तथ्य है, जबकि Gender सामाजिक और सांस्कृतिक भूमिका से परिभाषित होता है। जूडिथ बटलर (Judith Butler) के अनुसार जेंडर एक 'प्रदर्शन' (Performativity) है—जो सामाजिक रूप से निर्मित होता है।

(ख) सामाजिक संरचना और पितृसत्ता:
भारतीय समाज में पितृसत्ता (Patriarchy) जेंडर भूमिकाओं का निर्धारण करती है। यह संरचना स्त्रियों और जेंडर विविधताओं को दोयम दर्जे की स्थिति में रखती है।

(ग) क्वीयर थ्योरी (Queer Theory):

यह सिद्धांत जेंडर और यौनिकता को एक निरंतरता पर देखने का आग्रह करता है और बाइनरी सोच को खंडित करता है।

भारतीय समाज में जेंडर आधारित भेदभाव के स्वरूपों को पहचानना :-

भारत में जेंडर आधारित भेदभाव के कई आयाम हैं, जो स्त्री, ट्रांसजेंडर और LGBTQIA+ समुदाय पर गंभीर प्रभाव डालते हैं:

(क) स्त्रियों के प्रति भेदभाव:

लिंगानुपात में असमानता, भ्रूण हत्या, घरेलू हिंसा, दहेज, और यौन शोषण।

शिक्षा और रोजगार में अवसरों की कमी।

नेतृत्व और राजनीतिक भागीदारी में अवरोध।

(ख) ट्रांसजेंडर और अन्य जेंडर विविधताओं के प्रति भेदभाव:

परिवार से बहिष्करण, सामाजिक उपहास और कलंक।

शिक्षा संस्थानों में दाखिला और स्कूल में उपेक्षा।

रोजगार, स्वास्थ्य सेवाओं, और सरकारी योजनाओं में सीमित पहुँच।

ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को अक्सर भीख माँगने, नाचने या यौन कार्य में धकेल दिया जाता है, क्योंकि मुख्यधारा की अर्थव्यवस्था उन्हें शामिल नहीं करती।

(ग) कानूनी पहचान और दस्तावेजों में जटिलता :

कई लोगों को उनके चुने हुए जेंडर के आधार पर पहचान पत्र, पासपोर्ट, राशन कार्ड आदि नहीं मिलते, या इससे संबंधित प्रक्रिया अत्यंत जटिल और अपमानजनक होती है।

बदलते कानूनी, सांस्कृतिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में जेंडर की स्वीकृति का विश्लेषण करना-

भारत में बीते एक दशक में जेंडर की स्वीकृति की दिशा में न्यायिक, सांस्कृतिक और सामाजिक बदलाव तेज़ हुए हैं:

न्यायिक परिप्रेक्ष्य :-

NALSA बनाम भारत सरकार (2014) – सुप्रीम कोर्ट ने ट्रांसजेंडर को 'तीसरे लिंग' के रूप में मान्यता दी।

धारा 377 का खंडन (Navtej Singh Johar बनाम भारत सरकार, 2018) – समलैंगिक संबंधों को अपराध की श्रेणी से बाहर किया गया।

ट्रांसजेंडर पर्सन्स (अधिकारों की सुरक्षा) अधिनियम, 2019 – ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा हेतु कानून।

सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य :-

फिल्मों, वेब सीरीज़ और विज्ञापनों में ट्रांसजेंडर और LGBTQIA+ समुदाय के चरित्रों का सशक्त और यथार्थवादी चित्रण। जैसे – Shubh Mangal Zyada Saavdhan, Aligarh, Paatal Lok, Made in Heaven आदि।

सामाजिक पहल :-

शहरों में प्राइड परेड, ट्रांसजेंडर कार्यकर्ताओं की नियुक्तियाँ, और कॉर्पोरेट क्षेत्र में जेंडर-समावेशी नीतियाँ।

कुछ राज्यों (जैसे केरल, तमिलनाडु) ने ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के लिए विशेष कल्याण योजनाएँ प्रारंभ की हैं।

स्वीकृति के बदलते आयाम :-

भारत में सेक्स और जेंडर की पहचान को लेकर सामाजिक स्वीकृति धीरे-धीरे परिवर्तन के दौर से गुजर रही है। न्यायालयों के ऐतिहासिक निर्णय, मीडिया में प्रतिनिधित्व और नीतिगत सुधारों ने जेंडर विविधता को नई पहचान दी है। अब ट्रांसजेंडर और LGBTQIA+ समुदाय के प्रति संवेदनशीलता बढ़ रही है, हालांकि यह अभी शहरी केंद्रों तक सीमित है। यह परिवर्तन दर्शाता है कि जेंडर की स्वीकृति केवल वैधानिक अधिकार नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का भी हिस्सा बन रही है। इस संदर्भ में कुछ आयामों को निम्न में दर्शाया गया है-

(क) न्यायिक पहल :

नालसा बनाम भारत सरकार (2014): सुप्रीम कोर्ट ने ट्रांसजेंडर को 'तीसरे लिंग' की मान्यता दी।

नवतेज सिंह जौहर बनाम भारत सरकार (2018): धारा 377 को असंवैधानिक घोषित किया गया।

(ख) सामाजिक पहल :

मीडिया और फिल्मों में ट्रांसजेंडर और समलैंगिक पात्रों का चित्रण (जैसे Shubh Mangal Zyada Saavdhan, Aligarh आदि)। कॉरपोरेट सेक्टर में जेंडर-न्यूट्रल पॉलिसीज़।

(ग) शिक्षा और जागरूकता:

विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में जेंडर स्टडीज़ और लिंग समावेशन पर पाठ्यक्रम का समावेश।

चुनौतियाँ और बाधाएँ :-

भारत जैसे विविधतापूर्ण समाज में सेक्स और जेंडर की पारंपरिक व्याख्याएँ आज भी गहरी सामाजिक संरचनाओं में समाई हुई हैं। हालाँकि न्यायालयों द्वारा ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को मान्यता, धारा 377 का निरसन, और कानूनों में लैंगिक समावेशन के प्रयास प्रगतिशील संकेत हैं, परंतु इन संवैधानिक सुधारों को ज़मीनी स्तर पर लागू करना अब भी एक कठिन कार्य है।

जेंडर पहचान को लेकर सामाजिक मानसिकता में बदलाव की गति धीमी है, विशेषकर ग्रामीण और पारंपरिक क्षेत्रों में, जहाँ पितृसत्ता, धार्मिक रूढ़ियाँ और नैतिक दायरे आज भी मजबूत हैं। ट्रांसजेंडर समुदाय को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सामाजिक सुरक्षा जैसी बुनियादी सेवाओं तक पहुंच में लगातार बाधाएँ आती हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक हो जाता है कि हम न केवल इन चुनौतियों को पहचानें, बल्कि यह भी समझें कि क्यों अब तक बनाए गए कानून और नीतियाँ अपेक्षित सामाजिक परिवर्तन लाने में असफल रही हैं। इनके संदर्भ में कुछ समस्याओं की ओर इंगित करने का प्रयास किया गया है-

- ग्रामीण भारत में जेंडर विविधता पर संकीर्ण दृष्टिकोण।
- धार्मिक रूढ़ियाँ और सांस्कृतिक प्रतिरोध।
- ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए आर्थिक अवसरों की कमी।
- मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच की अनुपलब्धता।

निष्कर्ष-

भारत जैसे लोकतांत्रिक और सांस्कृतिक रूप से विविध देश में सेक्स और जेंडर की सामाजिक संरचना केवल जैविक भिन्नता का मुद्दा नहीं है, बल्कि यह एक गहरे सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और कानूनी विमर्श का विषय है। पारंपरिक भारतीय समाज ने जेंडर को लंबे समय तक केवल स्त्री और पुरुष की सीमित परिभाषा तक बाँधे रखा है, जिससे ट्रांसजेंडर, समलैंगिक, उभयलिंगी और अन्य जेंडर पहचानें हाशिये पर चली गईं।

हालाँकि 21वीं सदी में भारत ने जेंडर के क्षेत्र में कई ऐतिहासिक और कानूनी उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं— जैसे NALSA बनाम भारत सरकार (2014) में ट्रांसजेंडर की पहचान की संवैधानिक मान्यता, धारा 377 का खंडन (2018), और ट्रांसजेंडर अधिकार अधिनियम (2019)। इन निर्णयों और कानूनों ने एक मजबूत नींव रखी है, जिसके बल पर भारत एक समावेशी समाज की दिशा में अग्रसर हो सकता है।

फिर भी यह स्पष्ट है कि केवल कानूनी मान्यता से सामाजिक समानता की गारंटी नहीं दी जा सकती। जेंडर आधारित भेदभाव आज भी शैक्षिक संस्थानों, कार्यस्थलों, स्वास्थ्य सेवाओं, मीडिया और घरेलू जीवन

में व्याप्त है। सामाजिक मानसिकता में परिवर्तन की प्रक्रिया धीमी, विरोधाभासी और अक्सर केवल शहरी क्षेत्रों तक सीमित रही है।

ट्रांसजेंडर और LGBTQIA+ समुदाय के सामने आज भी आर्थिक अवसरों की कमी, मानसिक स्वास्थ्य उपेक्षा, सामाजिक बहिष्कार, और शारीरिक हिंसा जैसी गंभीर समस्याएँ मौजूद हैं। कई बार नीतियाँ 'कल्याणकारी' होने के बावजूद, उनकी क्रियान्वयन प्रक्रिया जटिल और अपमानजनक बन जाती है – विशेष रूप से जब ट्रांसजेंडर पहचान के लिए "प्रमाण" की शर्तें रखी जाती हैं।

इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि:

- सेक्स और जेंडर को केवल जैविक या पारंपरिक ढाँचों में बाँधना अब अप्रासंगिक हो गया है।
- सामाजिक स्वीकृति, संवेदनशीलता शिक्षा, और संस्थागत समावेशन जेंडर समानता की कुंजी हैं।
- नीतियों, कानूनों और जनसंचार माध्यमों को मिलकर काम करना होगा ताकि विविध जेंडर पहचानों को केवल सहन नहीं, बल्कि सम्मान और अधिकार के साथ स्वीकार किया जा सके।

अंततः एक समावेशी भारत की कल्पना तभी साकार हो सकती है जब हम सेक्स और जेंडर की बहुलता को सामाजिक शक्ति मानें, न कि कमजोरी या विचलन। यह केवल जेंडर विविधताओं की बात नहीं है – यह एक न्यायपूर्ण, संवेदनशील और लोकतांत्रिक समाज की बुनियाद से जुड़ा विषय है।

सुझाव-

- शिक्षा प्रणाली में जेंडर समावेशी पाठ्यक्रमों का विस्तार।
- ट्रांसजेंडर एवं LGBTQIA+ समुदाय के लिए आरक्षण व आर्थिक सहयोग।
- मानसिक स्वास्थ्य सहायता केंद्रों की स्थापना।
- मीडिया में समावेशी और सशक्त चित्रण।
- सभी सरकारी योजनाओं में जेंडर के तीसरे विकल्प की पूर्ण मान्यता।

संदर्भ :-

Butler, J. (1990). *Gender Trouble: Feminism and the Subversion of Identity*. Routledge.

Nanda, S. (1990). *Neither Man Nor Woman: The Hijras of India*. Wadsworth Publishing.

Supreme Court of India. National Legal Services Authority v. Union of India (2014).

Supreme Court of India. Navtej Singh Johar v. *Union of India* (2018).

Narrain, A. (2004). *Queer: Despised Sexuality, Law and Social Change*. Books for Change.

Ministry of Social Justice and Empowerment. (2019). *The Transgender Persons (Protection of Rights) Act.*

Agrawal, A. (2008). Gender and Law in India: Cases and Materials. Oxford University Press.

Dutta, A., & Roy, R. (2014). *Decolonizing transgender in India: Some reflections*. TSQ: Transgender Studies Quarterly, 1(3), 320–337.

Khan, S. (2001). *Culture, Sexualities and Identities: Men Who Have Sex with Men in India.* Sage Publications.

Menon, N. (2007). *Sexualities.* New Delhi: Women Unlimited.

Narrain, A. (2004). *Queer: Despised Sexuality, Law and Social Change*. Books for Change.

Vanita, R. (2005). *Love's Rite: Same-Sex Marriage in India and the West*. Palgrave Macmillan India.

Vimal, B. (2016). *LGBTQ अधिकार और भारतीय कानून व्यवस्था.* दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन.

Misra, G. (2009). Decriminalising homosexuality in India. *Reproductive Health Matters,* 17(34), 20–28.

Roy, P. (2018). *Gender Identity and Social Exclusion: A Study of Transgenders in Odisha*. Kalpaz Publications.

बस्तर क्षेत्र में पर्यावरण संचार व्यवस्था में मीडिया की भूमिका का मूल्यांकन

डॉ. ओमप्रकाश* **डॉ. नीलेश साहू†**

ajayomprakash77488@gmail.com **nk.nilesh18@gmail.com**

सारांश

'पर्यावरण' जहाँ मानव जीवन का अभिन्न अंग है, वहीं 'संचार' भी मानव समाज की मूलभूत आवश्यकता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण जीवन-यापन के लिए निरंतर संवाद करता है। दूसरों से विचारों का आदान-प्रदान करना उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इस शोध का उद्देश्य बस्तर क्षेत्र में पर्यावरण संरक्षण से संबंधित संचार व्यवस्था का विश्लेषण करना है, विशेषतः यह समझना कि विभिन्न संचार माध्यम — जैसे प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और सोशल मीडिया — पर्यावरणीय चेतना बढ़ाने में किस हद तक उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। शोध की प्रविधि में अन्वेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है, जिसमें गणनात्मक तकनीकों के माध्यम से आंकड़ों और तथ्यों का संग्रह और विश्लेषण किया गया है।

परिणामों से स्पष्ट होता है कि बस्तर क्षेत्र में समाचार पत्र, टेलीविज़न, रेडियो, व्हाट्सएप और फेसबुक जैसे माध्यमों के माध्यम से पर्यावरणीय जानकारी, जैसे आगजनी, प्राकृतिक आपदाएँ और वृक्षारोपण संबंधी समाचारों को जनता द्वारा सक्रिय रूप से पढ़ा और देखा जा रहा है। इलेक्ट्रॉनिक एवं सोशल मीडिया की पहुँच और प्रभाव बस्तर के सूचना प्राप्तकर्ताओं में अपेक्षाकृत अधिक है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि यद्यपि बस्तर में संचार क्रांति का प्रसार देश के अन्य क्षेत्रों की तुलना में धीमा है, फिर भी पारंपरिक ज्ञान एवं आधुनिक तकनीकों के समन्वय से पर्यावरण संरक्षण की दिशा में सार्थक प्रगति हो रही है।

मुख्य शब्द:

पर्यावरण, संचार, मीडिया, बस्तर क्षेत्र, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक जागरूकता, प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, सोशल मीडिया

***सहायक प्राध्यापक, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, श्री रावतपूरा सरकार विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़**

†अतिथि व्याख्याता, जनसंचार विभाग, कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विवि, रायपुर, छत्तीसगढ़,

प्रस्तावना –

'पर्यावरण' मानव जाति का एक अभिन्न भाग है जो इनके जीवन का प्रमुख आधार होता है। पर्यावरण और मानव की सम्मिलित रूप से पारिस्थितिकी का निर्माण होता है। यह पर्यावरण ना केवल पृथ्वी की सुंदरता के लिए आवश्यक है बल्कि मानव जीवन के अस्तित्व के लिए बहुत आवश्यक है क्योंकि मानव का जैविक एवं अजैविक क्रियाकलाप पूर्ण रूप से प्रकृति पर निर्भर रहता है (Cox, 2006)। जिस तरह से 'पर्यावरण' मानव जीवन का अभिन्न अंग होता है उसी तरह 'संचार' भी मानव समाज का अभिन्न अंग है क्योंकि मानव सामाजिक प्राणी होने के नाते किसी ना किसी प्रकार से जीवन –यापन करने के लिए संचार का उपयोग करते हैं। दूसरे शब्दों में कहे तो दूसरों के साथ संवाद करने की क्षमता मनुष्य का सबसे महत्वपूर्ण स्वभाव होता है या एक प्रकार से कह सकते हैं कि बिना संवाद या संचार के मानव जीवन संभव नहीं हो सकता है। Silverman (1980) ने संचार प्रक्रिया को समाज के सभी संबंधों का आनंद लेने के लिए सबसे महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में स्वीकार किया है। यह मानव समाज को नवाचार और आधुनिकीकरण की ओर लेकर जाता है (Wright, 1960)।

संचार प्रक्रिया दो या दो से अधिक लोगों के बीच शुरू की जाती है जिसमें एक प्रेषक दूसरों को विचार साझा करने का निर्णय लेता है (Rogers, 1962)। और जब रिसीवर (सूचना ग्रहण करने वाला) संदेश को ठीक से समझ कर प्रतिक्रिया देता है, तो यह समझा जाता है कि संचार प्रक्रिया सफलतापूर्वक पूरी हो गई है (Deb, 1968)। संचार मनुष्य के बीच संबंधों को समृद्ध करता है। यह एक दूसरे के साथ अपने सुख और दुख की भावना को साझा करने के लिए एक दूसरे के साथ बातचीत बढ़ाने की एक प्रक्रिया है। इस तरह प्रेषक और रिसीवर बातचीत में व्यस्त हो जाते हैं। यह दो लोगों के बीच संबंधों को प्रोत्साहित करने की ओर जाता है। इसलिए, इसे 'डाईडिक' प्रक्रिया भी कहा जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखे तो प्रारंभ में यह माना जाता था कि संचार एक रेखीय प्रक्रिया है लेकिन जैसे-जैसे जन संचार अनुसंधान धीरे-धीरे विकसित हुआ है, संचार प्रक्रिया दो तरफा प्रक्रिया के रूप में स्थापित हो गई (Atal, 1971)।

संचार सामाजिक परिवर्तन की एक प्रक्रिया है। यह मानव जीवन का सार है। हमें संचार अनुसंधान के अध्ययन के प्रमुख उद्देश्यों को समझना चाहिए। यह संचार सिद्धांत और मॉडल संचार वैज्ञानिकों की गहन जांच के परिणाम हैं (Damle, 1985)। संचार शोधकर्ताओं ने मनोविज्ञान और सामाजिक व्यवस्था पर संचार तकनीकों और प्रौद्योगिकी के प्रभाव का पता लगाने के लिए वर्षों से अनुसंधान कार्य किए हैं (Bandura, 1977)। इस अनुसंधान कार्य के परिणाम स्वरूप विभिन्न विद्वानों ने संचार माध्यम की प्रभावशीलता, विश्वसनीयता, पहुंच का आकलन किया और तभी संचार वैज्ञानिक ने संचार को एक नया विषय बनाने के लिए नए सिद्धांतों और मॉडलों का सुझाव दिया। इस तरह संचार का प्रौद्योगिकी पर प्रभाव और समाज पर प्रभाव से संबंधित कई पहलुओं पर प्रकाश डाला गया (Emery, 1974)।

'पर्यावरण संचार' शब्द की प्रकृति एक प्रकार से अंतःविषयी (Inter-Disciplinary) है। पर्यावरण एवं संचार दोनों अलग-अलग शब्द है या दोनों को एक साथ परिभाषित कर शोध के आयाम को बढ़ाया जा

सकता है। लेकिन विभिन्न विद्वानों में मतभेद है क्योकि प्रत्येक शब्द का अपना अलग अर्थ होता है। 'पर्यावरण' शब्द का अर्थ, हमारे परिवेश के साथ होता है तो वही 'संचार' शब्द किसी के विचारों, भावनाओं आदि को संप्रेषित, व्यक्त तथा साझा करने के अर्थ में उपयोग किया जाता है (Meisner, 2008)। विभिन्न पर्यावरणविद् और शिक्षाविद् 'पर्यावरण संचार' शब्द को शोध कार्य के लिए एक साथ उपयोग कर रहे हैं। जिसका अर्थ पर्यावरण के मुद्दों के बारे में संवाद करना होता है (Senecah et. al, 2004)।

इसी तारतम्य में पर्यावरण में संचार माध्यमों की भूमिका की उपयोगिता को दृष्टिगत रखते हुये बस्तर क्षेत्र में निवासरत समुदायों में संचार माध्यमों का मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है।

शोध के उद्देश्य –

1. बस्तर क्षेत्र में पर्यावरण संचार व्यवस्था का अध्ययन करना।
2. बस्तर क्षेत्र में पर्यावरण संरक्षण में संचार माध्यमों की भूमिका का अध्ययन करना।
3. जनसंचार माध्यमों का बस्तर क्षेत्र में उपयोगिता का अध्ययन करना।

शोध प्रविधियाँ –

प्रस्तुत शोध (छत्तीसगढ़ के बस्तर संभाग के गोंड समुदाय में पर्यावरण संचार व्यवस्था का अध्ययन) की प्रकृति व्यावहारिक दृष्टि से जहां एक ओर अन्वेषणात्मक अनुसंधान है वही सैद्धांतिक दृष्टि से दूसरी ओर विशुद्ध रूप से गणनात्मक अध्ययन है। छत्तीसगढ़ के बस्तर क्षेत्र में निवासरत सुचनादाताओं का चयन यादृच्छिक प्रतिचयन निदर्शन पद्धति से 301 सुचनादाताओं को शोध में शामिल किया गया है। इसी तरह आंकड़ों के संकलन करने के लिए साक्षत्कार अनुसूची, समूहवार्ता एवं केंद्रीय समूहवार्ता जैसे संख्यातमक उपकरण का उपयोग किया गया है।

परिणाम एवं विश्लेषण

प्रिंट मीडिया की भूमिका

वर्तमान समय भले ही डिजिटल खबरों या डिजिटल युग का हो लेकिन इसके बाद भी प्रिंट मीडिया का महत्व कम नहीं हुआ है। डिजिटल खबरों के प्रसार बढ़ने के बाद भी प्रिंट मीडिया से प्रकाशित होने वाले खबरों को पढ़ने वाले व्यक्तियों की संख्या में कमी नहीं हुई है। इसी क्रम में प्रिंट मीडिया में प्रकाशित होने वाले पर्यावरण संबंधी खबरों के प्रकाशन तथा उसे पढ़ने वालों की रुचि का विश्लेषण किया गया है।

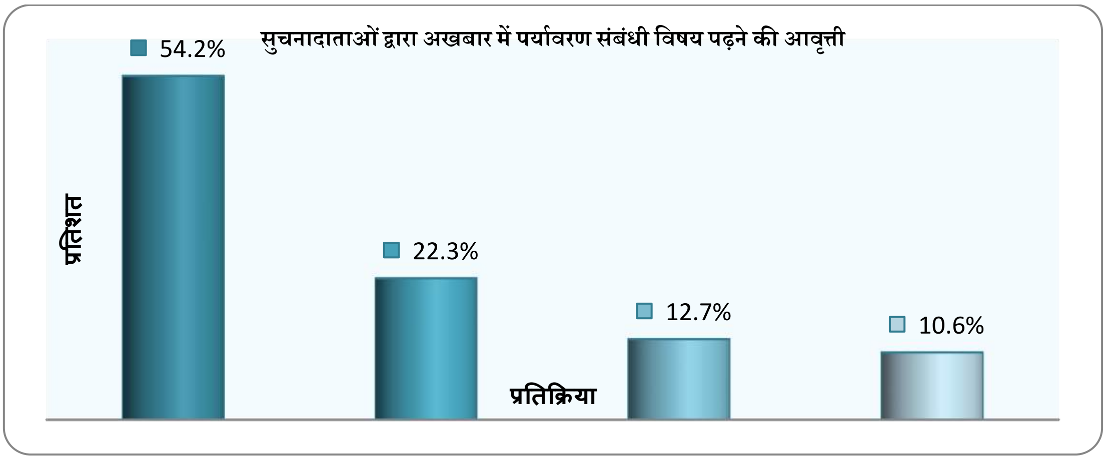

आरेख क्रमांक 01: सुचनादाताओं द्वारा अखबार में पर्यावरण संबंधी खबरे पढ़ने की आवृत्ती

वर्तमान शोध में सम्मिलित सुचनादाताओं द्वारा प्रिंट मीडिया के रूप में विभिन्न दैनिक समाचार पत्रों का पढ़ा जाता है। इसी दैनिक समाचार पत्रों में प्रमुख रूप से पर्यावरण संरक्षण से संबंधी खबरों को पढ़ने में अधिक रुचि दिखाते हैं इसके साथ ही आगजनी, प्राकृतिक आपदाओं तथा पेड़ –पौधे उगाने की विधि संबंधी खबरों को पढ़ने में रुचि दिखाते हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि पर्यावरण संरक्षण के संबंध में प्रकाशित खबरों की ओर सुचनादाताओं की रुचि होती है तथा उस भाग को बहुत ही गंभीरपूर्वक पढ़ा जाता है जो कि पर्यावरण संरक्षण में एक महत्वपूर्ण कदम है। इसी तरह आरेख क्रमांक 02 में प्रिंट मीडिया में प्रकाशित होने वाले पर्यावरणीय मुद्दो को 44 प्रतिशत सूचनादाताओं ने उपयोगी तथा 31 प्रतिशत सुचनादाताओं तोड़ा बहुत ही उपयोगी बताया और 25 प्रतिशत सुचनादाताओं को प्रिंट मीडिया में प्रकाशित होने वाले पर्यावरणीय उपयोगी नहीं लगे। इस आधार पर कहा जा सकता है कि बहुत से सुचनादाताओं को प्रिंट मीडिया में प्रकाशित होने वाले पर्यावरणीय मुद्दे को पढ़ कर उसे अपने आस-पास के पर्यावरणीय संरक्षण के लिए उपयोगी समझे तथा कुछ सुचनादाताओं को प्रिंट मीडिया में प्रकाशित होने वाले पर्यावरणीय मुद्दे आस-पास के वातावरण के लिए उपयोगी नहीं लगे।

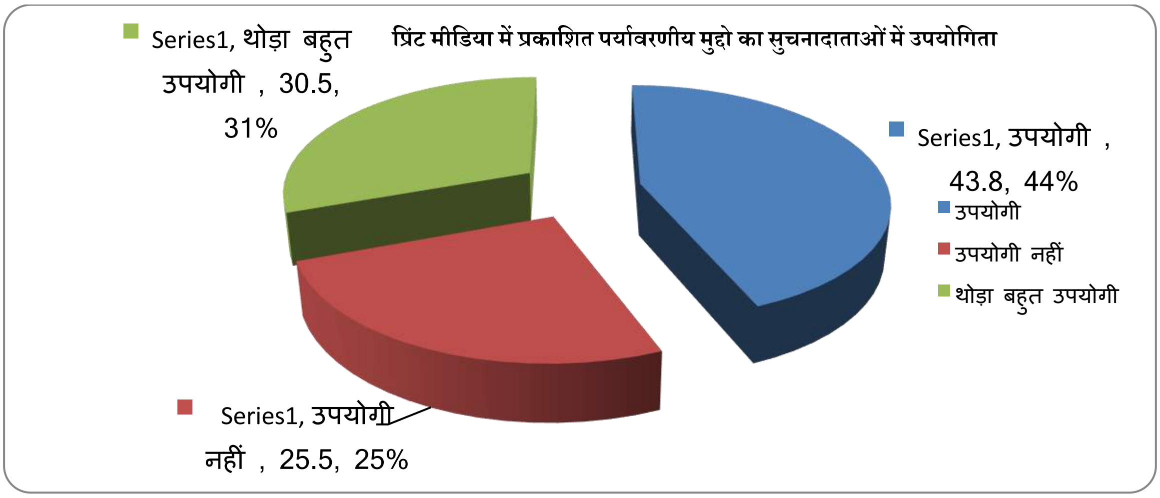

आरेख क्रमांक 02: प्रिंट मीडिया में प्रकाशित पर्यावरणीय मुद्दो का सुचनादाताओं में उपयोगिता

इलेक्ट्रानिक मीडिया की भूमिका

इलेक्ट्रानिक मीडिया के अंतर्गत वर्तमान में रेडियों, टेलीविज़न, फिल्म, स्लाइड और मल्टी मीडिया जैसे विभिन्न उपकरण सम्मिलित है। जिसे मनुष्य सुन कर तथा चलचित्रों को देखकर समझ सकता है। इसी क्रम में रेडियों में पर्यावरण से संबंधित विभिन्न कार्यक्रम का प्रसारण भी किया जाता है तथा उसी तरह टेलीविज़न में दूरदर्शन और समाचार प्रसारित करने वाले विभिन्न चैनलों में पर्यावरण संरक्षण संबंधी विभिन्न कार्यक्रम का प्रसारण भी किया जाता है। इसी क्रम में आरेख क्रमांक 03 में 40.8 प्रतिशत सुचनादाताओं को इलेक्ट्रानिक मीडिया से पर्यावरण संरक्षण से संबंधी खबरे मिलने की बात को स्वीकार किया गया इसी तरह 26.2 प्रतिशत लोगों को पेड़-पौधे उगाने की विधि, 21.1 प्रतिशत सुचनादाताओं को प्राकृतिक आपदाओं तथा 11.6 प्रतिशत लोगों को आगजनी से संबंधी खबरों को देखने में रुचि दिखाते हैं अर्थात यह कहा जा सकता है कि सुचनादाताओं को पर्यावरण संबंधी विभिन्न सुचना इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों के द्वारा भली भांति प्राप्त होती है जिसे सुचनादाताओं द्वारा अपने रुचि के अनुसार देखते हैं।

इसी तरह इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों से प्राप्त होने वाले पर्यावरण संबंधी खबरों में से 47 प्रतिशत सुचनादाताओं ने उसे उपयोगी बताया तथा 22 प्रतिशत सुचनादाताओं ने इन खबरों को थोड़ा बहुत उपयोगी बताया इसी तरह 31 प्रतिशत सुचनादाताओं ने इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों से प्राप्त होने वाले पर्यावरण संबंधी खबरों को उपयोगी नहीं बताया अर्थात कहा जा सकता है कि आधे से भी अधिक सुचनादाताओं को इलेक्ट्रानिक मीडिया से प्राप्त होने वाले खबरों को अपने दैनिक जीवन में भली-भांति तरीके से उपयोगी समझ कर उसका अनुपालन करते हैं। यह स्वाभाविक भी हो सकता है क्योंकि टेलीविज़न के माध्यम से श्रव्य और दृश्य माध्यम को अधिकतर लोगों द्वारा रुचिपूर्वक देखा भी जाता है और उसका अनुपालन करने का प्रयास भी करते हैं। इस तरह कहा जा सकता है कि पर्यावरण संरक्षण के रूप में इलेक्ट्रानिक मीडिया बहुत प्रभावी माध्यम है।

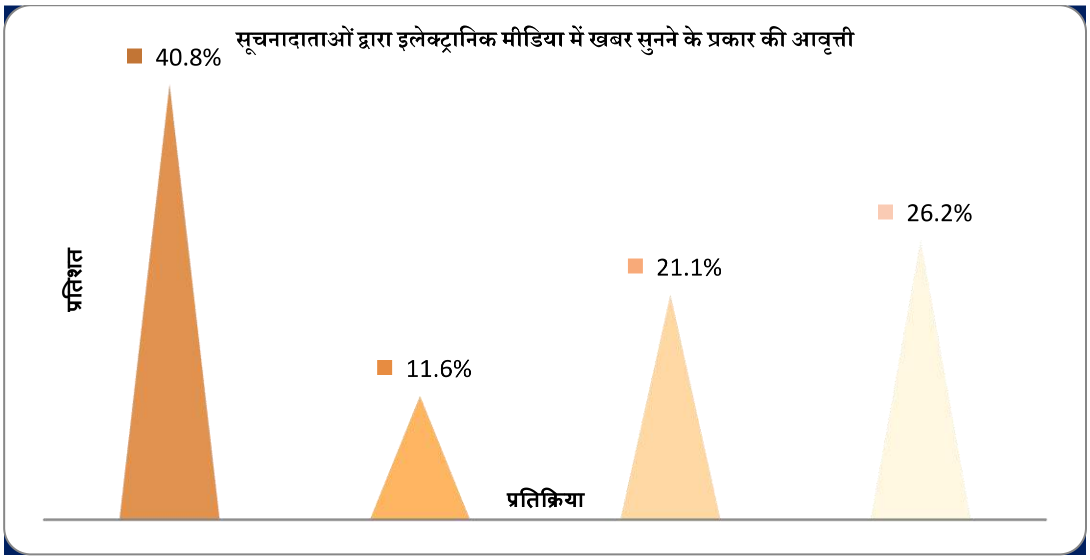

आरेख क्रमांक 03: सुचनादाताओं द्वारा इलेक्ट्रानिक मीडिया में खबर सुनने के प्रकार की आवृत्ती

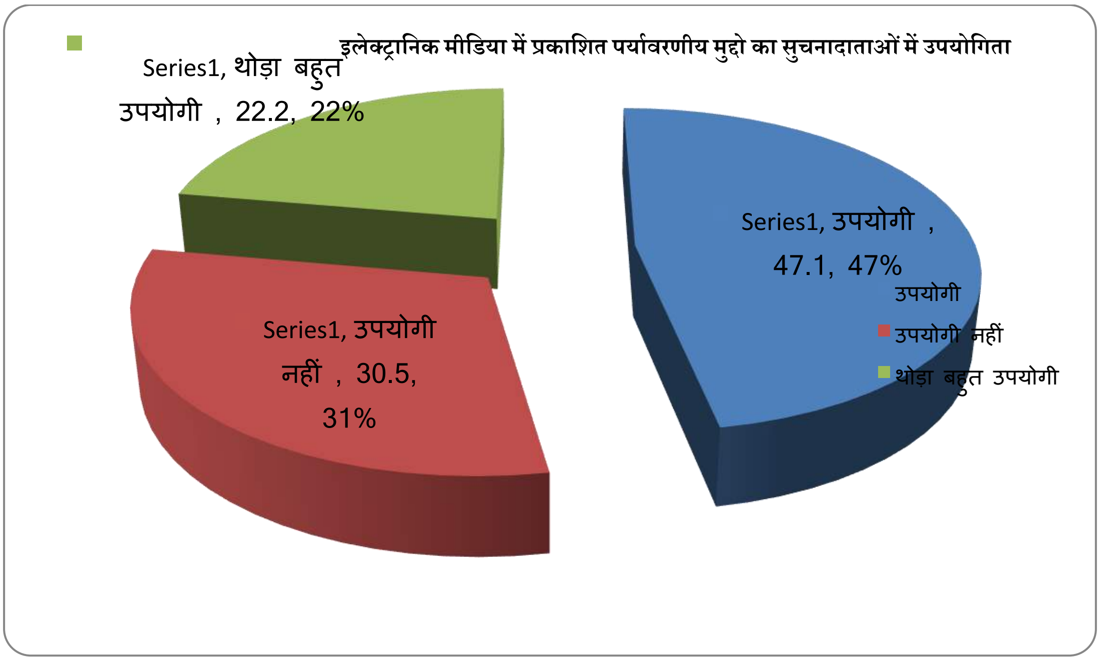

आरेख क्रमांक 04: इलेक्ट्रानिक मीडिया में प्रकाशित पर्यावरणीय मुद्दो का सुचनादाताओं में उपयोगिता

सोशल मीडिया की भूमिका –

वर्तमान में सबसे अधिक किसी प्रकार के खबरों एवं सुचनाओं को लोगों द्वारा पढ़ा और देखा जाता है वह सोशल मीडिया है। सोशल मीडिया के रूप में व्हाट्सएप, फ़ेसबूक, ट्यूटर, यू –ट्यूब इत्यादि का उपयोग बहुतया रूप में किया जा रहा है। इसमें खबरों का प्रसार करने का माध्यम भी सरल एवं सहज है। इसी क्रम में वर्तमान अध्ययन में 43.9 प्रतिशत सुचनादाताओं को इंटरनेट के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण संबंधी खबरे मिलती है इसी तरह सोशल मीडिया माध्यम के इंटरनेट से 34.1 प्रतिशत सुचनादाताओं को प्राकृतिक आपदा संबंधी खबरे, 14.6 प्रतिशत सुचनादाताओं को आगजनी संबंधी खबरे पढ़ने को मिलती है।

इसी तरह सोशल मीडिया के व्हाट्सएप और फ़ेसबूक जैसे माध्यमों से 38.2 प्रतिशत सुचनादाताओं को पर्यावरण संरक्षण के संबंध में सूचना प्राप्त होती है। उसी तरह 34.1 प्रतिशत सुचनादाताओं को प्राकृतिक आपदा संबंधी खबरे, 14.6 प्रतिशत सुचनादाताओं को आगजनी संबंधी खबरे तथा 7.3 प्रतिशत सुचनादाताओं को पेड़-पौधे उगाने की विधि के संबंध में खबरे मिलती है अर्थात कहा जा सकता है कि सोशल मीडिया से सुचनादाताओं को पर्यावरण संरक्षण के संबंध में पर्याप्त जानकाकरी प्राप्त होती है। इसी तरह सोशल मीडिया से प्राप्त होने वाली खबरे 36 प्रतिशत सुचनादाताओं को उपयोगी तथा 35 प्रतिशत सुचनादाताओं को सोशल मीडिया से मिलने वाली खबरे थोड़ा कम उपयोगी लगे और 29 प्रतिशत सुचनादाताओं को सोशल मीडिया से मिलने वाली किसी भी प्रकार से उपयोगी नहीं लगे। इस आधार प कहा जा सकता है कि सोशल मीडिया से प्राप्त होने वाली खबरों का अनुपालन सुचनादाताओं अधिकतर ढंग से किया जाता है ताकि पर्यावरण के क्षेत्र में कुछ बेहतर ढंग से कार्य करते हुये पर्यावरण का संरक्षण किया जा सके।

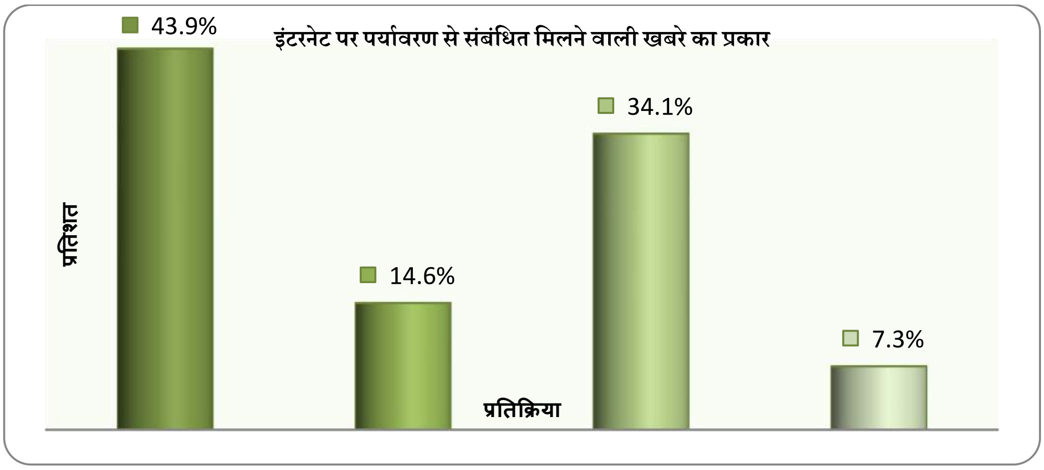

आरेख क्रमांक 05: इंटरनेट पर पर्यावरण से संबंधित मिलने वाली खबरों की स्थिति

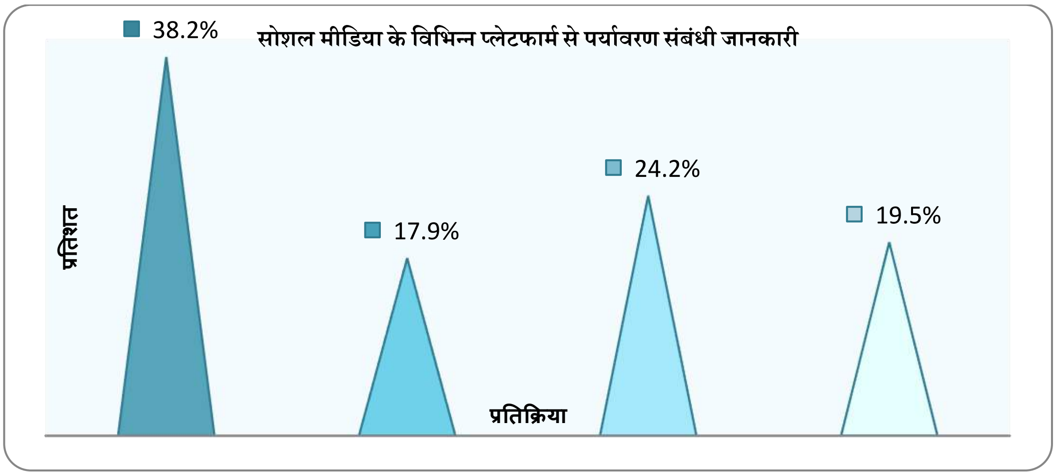

आरेख क्रमांक 06: सोशल मीडिया के विभिन्न प्लेटफार्म से पर्यावरण संबंधी जानकारी की स्थिति

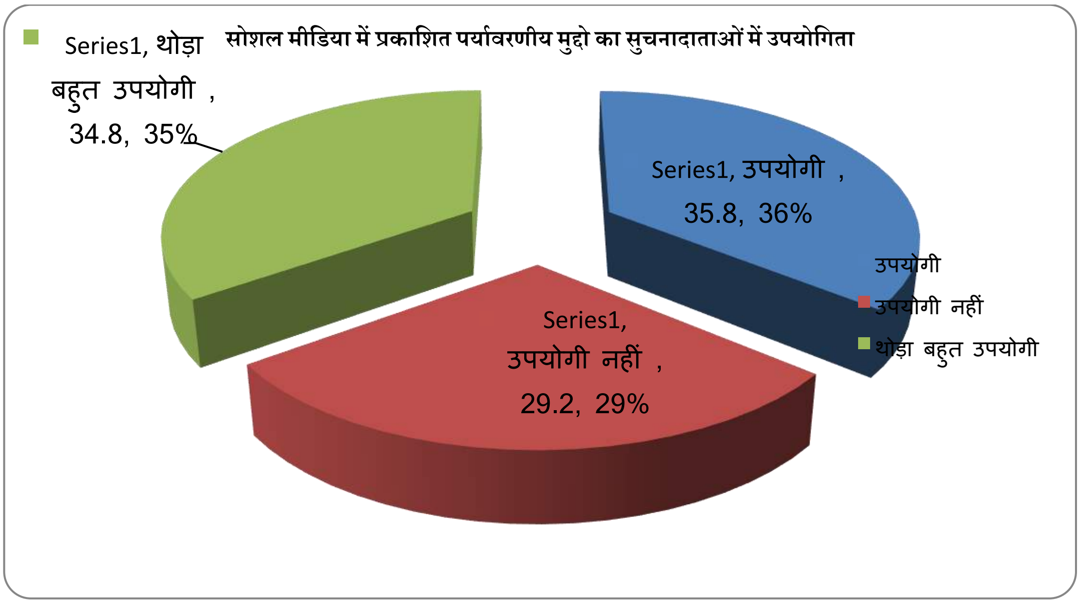

आरेख क्रमांक 07: सोशल मीडिया में प्रकाशित पर्यावरणीय मुद्दो का सुचनादाताओं में उपयोगिता

निष्कर्ष –

वर्तमान में संचार के विभिन्न माध्यम विकसित हो गया है या एक प्रकार से कह सकते हैं कि यह संचार क्रांति का युग है। जिसमें विभिन्न माध्यमों से दर्शकों को पर्यावरण संरक्षण से संबंधी विभिन्न खबरों को प्रसारित किया जाता है। इसी क्रम में छत्तीसगढ़ के बस्तर क्षेत्र में संचार क्रांति का प्रसार अन्य क्षेत्रों के तुलना में बहुत ही कम हुआ है या एक प्रकार से कह सकते हैं कि बस्तर में संचार क्रांति के क्षेत्र में बहुत ही पिछड़ा हुआ है फिर भी अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों एवं सुचनाओं के आधार पर कह सकते हैं पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में बस्तर क्षेत्र बहुत ही आगे है क्योंकि बस्तर क्षेत्र में निवासरत लोगों में पर्यावरण संरक्षण के पारंपरिक ज्ञान के साथ-साथ आधुनिक संचार माध्यमों से मिलने वाले ज्ञान के सामंजस्य से पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में बेहतर कार्य कर रहे हैं।

संदर्भ :–

Atal, Y. (1971). *Local communities and national policies: A study in communication links and political involvement*. New Delhi: National Publishing House.

Bandura, A. (1977). *Social learning theory*. Englewood Cliffs, NJ: Prentice Hall.

Cox, R. (2006). *Environmental communication and the public sphere*. Thousand Oaks, CA: Sage.

Damle, Y. B. (1956). Communication for modern ideas: Knowledge in Indian villages. *Public Opinion Quarterly*, *20*.

Deb, P. C. (1968). Characteristics of adopters & non-adopters of improved practice. *Indian Sociological Bulletin*.

Emery, E., Ault, P. H., & Agee, W. K. (1974). *Introduction to mass communication*. New York: Dodd, Mead & Company.

Rogers, E. M. (1962). *Diffusion of innovations*. New York: The Free Press.

Silvermann, A. (1980). The sociology of mass media and mass communication. *International Social Science Journal*, *32*, 215–219.

Wright, C. R. (1960). *Mass communication: A sociological perspective*. New York: Random House.

रघुवीर सहाय के गद्य में सत्ता विमर्श

अरुण कुमार*

karun7556@gmail.com

सारांश (Abstract):

रघुवीर सहाय हिंदी साहित्य में एक बहुआयामी रचनाकार के रूप में जाने जाते हैं, जिन्होंने न केवल कविता बल्कि गद्य में भी सत्ता, समाज, राजनीति और मनुष्य के संबंधों पर तीव्र दृष्टि डाली। यद्यपि साहित्यिक आलोचना में उन्हें प्रायः केवल एक कवि के रूप में ही देखा गया है, किन्तु उनका गद्य – विशेषतः निबंध, कहानी और पत्रकारीय लेखन – गहन सत्ता विमर्श प्रस्तुत करता है। उनके गद्य में सत्ता और रचना के बीच का तनाव, लोकतंत्र की असली चुनौती, जाति, भ्रष्टाचार, गरीबी, राजनीतिक अवसरवाद, और सामाजिक असमानता के विरुद्ध तीखा प्रतिरोध दिखाई देता है। वे सत्ता को जनता की शक्ति का प्रतिनिधि मानते हैं और बार-बार सत्ता के नैतिक पतन की ओर इंगित करते हैं। सहाय का मानना है कि साहित्य और राजनीति दोनों समाज परिवर्तन के माध्यम हैं, और लेखक का दायित्व है कि वह सत्ता को उसकी जिम्मेदारी का बोध कराए। पत्रकार और गद्य लेखक के रूप में सहाय ने जिस प्रतिबद्धता और आत्मचिंतन से सत्ता का विश्लेषण किया है, वह हिंदी साहित्य में अप्रतिम है।

मुख्य शब्द (Keywords):

रघुवीर सहाय, सत्ता विमर्श, हिंदी गद्य, लोकतंत्र, राजनीतिक आलोचना, जातिवाद, भ्रष्टाचार, पत्रकारिता, सामाजिक असमानता, साहित्य और राजनीति

हिंदी साहित्य में रघुवीर सहाय ने अपने अद्वितीय लेखन से महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया है। उन्होंने साहित्य की लगभग सभी विधाओं में गंभीरता से लिखा है। वे व्यापक अर्थों में साहित्यकार हैं उनके साहित्य का प्रयोजन कालातीत है। उनके लिए साहित्य उनके शब्द और कर्म दोनों में रचा बसा है। साहित्य की आधारभूमि पर स्थित रहकर वे राजनीति, समाज, कानून, इतिहास, संस्कृति, आर्थिक विकास आदि सभी क्षेत्रों में भ्रमण करते हैं। रघुवीर सहाय का इतना प्रबल गद्य साहित्य उपलब्ध होते हुए भी उनके व्यक्तित्व को सदा एक कवि के नज़रिए से देखा, समझा व आँका गया है। उनकी कविताओं पर तो आलोचकों का खूब ध्यान गया है, उनकी समुचित आलोचनात्मक व्याख्या भी हुई है परंतु वह गद्य, जो उनकी कविता से कहीं आगे जाता है, कुछ हद तक उपेक्षित सा प्रतीत होता है। बहुमुखी विकास और समानता के अवसर की राह दिखाने वाले उनके गद्य पर गंभीर कार्य का अभाव दृष्टिगोचर होता है। गद्य की समस्त विधाओं में उनका साहित्य उपलब्ध होने के कारण उनके साहित्य पर शोध का कार्य चुनौती भरा अवश्य है किंतु असंभव नहीं। जिस प्रकार वह नितांत

* **शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

भिन्न प्रकार के कवि हैं, उसी प्रकार भिन्न प्रकार के कहानीकार भी थे रघुवीर सहाय जी ने अपनी कहानियों में गद्य को जगह - जगह तोड़ा है और एक नए किस्म का गद्य लिखने की कोशिश की है। वे लिखते हैं कि :- "गद्य लिखना भाषा को सार्वजनिक बनाते जाना है"[1]

रघुवीर सहाय ने साठ के दशक में कांग्रेस के नेतृत्व के बारे में चुटकी लेते हुए भारत के सत्ताधारी वर्गों के वर्गचरित्र की असलियत खोल दी थी। साठोत्तरी दौर के हिंदी साहित्य में मोहभंग की जो अनुगूंज सुनायी देती है, उस अनुगूंज में रघुवीर सहाय की आवाज़ भी शामिल थी। उनकी उस समय की रचनाओं को देख कर किसी को यह लग सकता है कि वे लोकतंत्र विरोधी थे। मगर सच्चाई यह है कि ये लोकतंत्र के मूल्यों के भ्रष्टीकरण से आहत थे। वे शासकों के उन कारनामों से दुखी हो रहे थे जिनसे अन्याय और नाबराबरी को ही बढ़ावा मिलता था। शोषक वर्गों की नुमाइंदगी करने वाले राजनेता किसी रचनाकार को भी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नहीं देना चाहते थे। राजसत्ता की यह प्रवृत्ति एमर्जेंसी में एक सच्चाई बनकर सामने आ गयी जब रचनाकारों पर भी सेंसरशिप लागू हो गयी थी। इस बात को रघुवीर सहाय इस तरह कहते हैं :- "संगठित राजनीति और रचना में तनाव का रिश्ता होना चाहिए और सत्ता और रचना में भी तनाव का रिश्ता होना चाहिए"[2]

रघुवीर सहाय की रचनायें मनुष्य, समाज और सामाजिक, राजनैतिक संबंधों की गहरी पड़ताल करती है। वे समाज निर्माण में साहित्य और राजनीति को एक माध्यम के रूप में स्वीकार करते हैं। सहाय जी की दृष्टि में साहित्य और राजनीति में कोई अंतर नहीं है, ये दोनों समाज में परिवर्तन लाने वाले साधन हैं। वे लिखतें हैं :- "राजनीति की जो समझ साहित्य और राजनीति को अलग अलग रखने वालों ने बना ली है वह है कि राजनीति तो सिर्फ कुर्सी बदलने का साधन है। मैं साहित्य के लिए अच्छी राजनीति को बहुत जरुरी समझता हूँ और साहित्य अकेले कोई चीज़ नहीं है जब तक राजनीति मानवीय संबंधों को बदलने के लिए सत्ता के मार्ग से उपलब्ध साधनों को नए समाज के लिए हासिल नहीं करेगी"।[3]

पत्रकार और संपादक की भूमिकाओं में रघुवीर सहाय ने राजनीति को एक तरह की शैक्षिक चुनौती बना लिया जिससे निपटने का मुख्य औज़ार बनी भाषा। हिंदी की राजनीति से उन्हें लगातार कोफ़्त रही, पर शब्द की राजनीति को उन्होंने असाधारण गंभीरता से लिया। रघुवीर सहाय के काव्य साहित्य की तरह ही उनका गद्य साहित्य भी वही समस्याओं को लेकर चलता है जो समस्याएं उन्होंने अपने काव्य के जरिये उठाई थी मोहभंग, जातिवाद, गरीबी, भ्रष्टाचार और भारतीय राजनीति पर कटाक्ष ये सब उनके गद्य में भी हमें देखने को मिलता है। "सीमा के पार का आदमी" कहानी के अंत में जाति राष्ट्रवाद की दीवार में छेद करती है। जाति से जुड़ी पोशाक, मुद्राएं, चेष्टाएं रघुवीर सहाय के पत्रकारीय गद्य से जगह जगह झाँकती है और कहीं कटाक्ष तो कहीं नैराश्य का विषय बनती है। ये उत्पीड़न बेरोजगारी और धार्मिक अलगाववाद पर उनकी टिप्पणियां कई बार जाति व्यवस्था के बने रहने के क्षोभ पर लौटती है। राजनीति के विश्लेषण की धुरी तो जाति थी ही। उन्होंने अपने निबंध "दुर्घटना भारत की झांकी" में लिखा है :- "आज के भारत में सत्ता जन के सम्बन्ध का प्रतिबिम्ब

बन गयी है सत्ता के शीर्ष पर तथा जहाँ जहाँ लोग बैठे हैं, वहां जनता से ली हुई शक्ति है जनता के प्रति जिम्मेदारी नहीं। उस शक्ति का इस्तेमाल वे कैसे कर रहे हैं यह बताने तक की जिम्मेदारी नहीं है। इस गैरजिम्मेदारी का असर प्रशासन में सत्ता स्थान के पास के लोगो पर और तरह से पड़ता है, दूर के लोगों पर और तरह से"।[4]

रघुवीर सहाय का गद्य उस समय की वे समस्याएं उठाता है जो सत्ता और उनके लोगों द्वारा सीधे तौर पर एक तरह से नकार दी जाती हैं, क्यूंकि सत्ता देश के लिए काम कर ही नहीं रही थी। वह अपने कर्तव्य भूल गयी थी और उनका निर्वहन सही ढंग से नहीं कर पा रही थी यही सब देख कर रघुवीर सहाय ने अपने गद्य साहित्य में सत्ता को उनके कर्तव्य का निर्वाह करना याद दिलाया है। रघुवीर सहाय अपने निबंध "एक बिगड़ा हुआ मामला" में लिखते हैं :- "कोई चीज़ तो इस ऋतु में हैं जो इक्कठा लोगों का इस्तेमाल, लार टपकाती और गुर्राती इस सत्तावादी संस्कृति के विरुद्ध होगी जिसने यह अपच और यह भुखमरी एक साथ पैदा की है क्या चीज़ है वह? जरा ज़मीन के पास जाएं - और खोजने की कोशिश करें"।[5] रघुवीर सहाय यहाँ साफ़ - साफ़ सत्तावादी लोगों को गरीबी और भुखमरी के लिए जिम्मेदार ठहरा रहे हैं और कह रहे हैं कि हमें ज़मीन पर जा कर खोज करनी चाहिए कि ये स्तिथि क्यूँ पैदा हुई है और इसके पीछे क्या कारण रहे होंगे।

ज्यादातर विद्वानों ने रघुवीर सहाय के काव्य को पढ़ के उन्हें सिर्फ कवि के रूप में ही श्रेष्ठ मान लिया है। उन्ही विद्वानों को उनके गद्य को पढ़ने की जरुरत है, ताकि वे समझ पाएं की उनका गद्य कविता के समान श्रेष्ठ वर्ग में शामिल करने लायक ही नहीं बल्कि उनका गद्य उनके काव्य से एक कदम आगे ही ठहरता है। वे लिखते हैं :- "साहित्य की विधाओं के अलग-अलग ख़ेमे बनाकर रहना लेखक को और भी असहाय करेगा"।[6] सहाय जी इस बात को भलीभाँति जानते थे कि कविता में जो बात वो कह रहे हैं, वही बात वो निबंध व कहानी के द्वारा भी सीधे तौर पर कही जा सकती है।

रघुवीर सहाय कहीं न कहीं आज़ाद भारत में जिस तरह से लोगों में अपने देश के सत्ताधारी लोगों के प्रति जो अविश्वास पैदा हुआ है और देश में फैले जातिवाद, भ्रष्टाचार, भुखमरी जैसी समस्याओं पर अपनी गद्य रचनओं में चिंता व्यक्त करते हैं। वे आपातकाल लागू होने की स्तिथि को भी पहले ही भांप लेते हैं और हुआ भी वैसा ही कुछ समय बाद इंद्रा गाँधी द्वारा भारत में आपातकाल की घोषणा कर दी जाती है। रघुवीर सहाय इस स्तिथि पर अपने निबंध "हज़ार साल पीछे जाने वाली सड़क" में लिखते हैं :- "आज हिंदुस्तान में बहुत कम हाथों में ताकत और पैसा सिमट के रह गया है इस केन्द्रीयकरण के दुष्परिणामों के तले पिसता हुआ मध्यवर्ग आज देश का सबसे अधिक समृद्ध और संगठित वर्ग होने के नाते अपने अधिकार मांगने के आंदोलनों में सबसे आगे है"।[7]

रघुवीर सहाय लोकतंत्र को लेकर भी इसी निबंध में कहते हैं :- "लोकतंत्र के सारे बाहरी उपकरण - न्यायपालिका विधायिका आदि बने रहने दिए जाएं केवल राजनीतिक व्यवस्था का रूप राजा और प्रजा सम्बन्ध के अनुसार बनता चला जाये तो एक नए ढंग का अलोकतंत्री लोकतंत्र बन सकता है"।[8] इस तरह ही वे

अपने पूरे गद्य साहित्य में देश के लोकतंत्र की स्तिथि पर अपनी चिंता व्यक्त करते हैं। उस समय सत्ताधारी लोग स्वार्थी हो गए थे, सभी अपने स्वार्थ सिद्ध करने में लगे थे, सबको शासन करना था कोई भी विपक्ष में बैठने को तैयार नहीं सबको सत्ता भोगनी है। सत्ता में रहने वाले लोग अगर सत्ता में नहीं रहेंगे तो शक्तिहीन हो जायेंगे, लेकिन हमारे समाज में शक्तिहीन लोगों की क्या स्तिथि होती है इससे हम सभी लोग अच्छी तरह से अवगत हैं। इसलिए हर व्यक्ति शक्तिशाली बनना चाहता है, वह राजनीति चुन कर सत्ता में आकर खुद को शक्ति संपन्न बनाने की होड़ में लग जाता है। रघुवीर सहाय इन्ही मुद्दों को अपने साहित्य में उठाते हैं। उनके काव्य और गद्य में स्पष्टतः दिखाई पड़ता है। वे अपने लेख "लोहिया अस्पताल में लोहिया की मौत" में कहते हैं :- "आज की राजनीति जो सिर्फ सत्ता को उद्देश्य मानती है और उससे परे समाज को अपना उद्देश्य नहीं मानती, भविष्य के लिए कुछ छोड़ रखना नहीं चाहती क्योंकि वह ऐसा समझती है कि लोग सिर्फ आज के चुनाव के लिए जमा होते हैं या आज कि हिंसा के लिए जमा होते हैं"[9]।

इस निबंध के माध्यम से उन्होंने बताया कुछ सत्तासीन लोग कैसे पूरे देश की जनता का शोषण करते हैं। उन्हें चुनने वाली जनता है, लेकिन जन प्रतिनिधि चुनाव के बाद कैसे पथभ्रष्ट हो जाता है ये जनता भी नहीं समझ पाती। अपने स्वार्थ के लिए दल - बदल हो या फिर भ्रष्टाचार करना उसके लिए सब कुछ सामान्य हो जाता है। वह अपनी शक्ति का उपयोग निजी स्वार्थ सिद्ध करने के लिए उपयोग करता है जबकि शक्तियाँ उसको जानता की सेवा करने के लिए मिलती हैं। अपनी शक्ति का या कह लें अपनी कुर्सी का दुरुपयोग आजकल की राजनीति में सामान्य बात हो गयी है। रघुवीर सहाय को आधार बनाकर अभय कुमार ठाकुर द्वारा किए गए अपने शोध में लिखा है "भारतीय लोकतंत्र और उस पर आधारित राजनीति अब तक गुलामी का स्वातंत्र्योत्तर संस्करण तैयार करने में ही अधिक मशगूल रही है। वर्तमान राजनीति जनता को जागृत कर उसका जीवन स्तर उठाने की नहीं, बल्कि उसकी कमज़ोरियों, अज्ञान और विभेदों का फ़ायदा उठाकर सत्ता में आने के लिए समर्थन जुटाने की राजनीति बन गयी है"।[10]

रघुवीर सहाय का गद्य उनके काव्य के और पत्रकार के सामने धूमिल नज़र आता है लेकिन उनके गद्य की समीक्षा की जाए तो उनका गद्य साहित्य वही प्रश्न खड़े करता है जो उनके काव्य और पत्रकारिता ने किए।उनके लेखों और कहानियों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है। उनका गद्य सत्ता से सवाल करता है। वह आम जन की आवाज़ अपनी कविता के साथ - साथ अपने गद्य के माध्यम से भी उठा रहे थे। आत्महत्या के विरुद्ध काव्य संकलन की भूमिका में उन्होंने लिखा है - "विराट भीड़ों के समाज को बदलने का आज सिर्फ़ एक साधन है : वह है उस सत्ता का उपयोग जो समुदाय का एक - एक व्यक्ति अलग - अलग निर्णयों से कुछ हाथों में देता है। सरकार, जो राज्य की प्रतिनिधि है, जो समाज की प्रतिनिधि है, जैसी भी वह हो सकती है - अधूरी, टूटी, नक़ली, मिलावटी, मूर्ख - अकेला कारगर साधन भीड़ के हाथ में है। मैं इस साधन के अधिक से अधिक सही इस्तेमाल के लिए लड़े बिना नहीं रह सकता लेकिन इसके माने यह नहीं कि मैं भीड़ का कायल हूँ। मैं बदमाशों, गधों, आधे पागलों और मक्कारों के लिए एक जिम्मेदारी महसूस करता हूँ। पर जो कुछ मैं रचता हूँ - सिर्फ़ अपनी ज़िम्मेदारी पर रचता हूँ - या फिर नहीं रचता"।[11]

निष्कर्ष (Conclusion):

रघुवीर सहाय का गद्य उनकी कविताओं की भाँति ही सामाजिक, राजनीतिक और नैतिक सरोकारों से गहराई से जुड़ा हुआ है। उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से सत्ता के चरित्र, उसकी जिम्मेदारी और उसके दुरुपयोग पर सतत प्रश्न उठाए। वे सत्ता को मात्र शासकीय शक्ति नहीं, बल्कि जनमानस से प्राप्त उत्तरदायित्व के रूप में देखते हैं। उनके अनुसार जब यह सत्ता जनसेवा के बजाय निजी स्वार्थ का उपकरण बन जाती है, तब साहित्य को हस्तक्षेप करना चाहिए। सहाय के गद्य में न केवल सत्ता की आलोचना है, बल्कि उसमें सामाजिक चेतना, नागरिक जिम्मेदारी और परिवर्तन की आकांक्षा भी निहित है। इस दृष्टि से उनका गद्य साहित्य न केवल सैद्धांतिक विमर्श करता है, बल्कि व्यवहारिक राजनीति के विरुद्ध एक बौद्धिक प्रतिरोध भी प्रस्तुत करता है। अतः यह कहना उचित होगा कि रघुवीर सहाय का गद्य न केवल उनके काव्य का विस्तार है, बल्कि स्वयं में एक स्वतंत्र और शक्तिशाली विमर्श है जो सत्ता के नैतिक आधारों की पड़ताल करता है और साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का औजार मानता है।

संदर्भ :-

[1] सहाय, र. (2020). *रघुवीर सहाय संचयिता* (कृष्ण कुमार, सं.). वर्धा: महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय. पृ. 20

[2]सहाय, र. (2020). *रघुवीर सहाय संचयिता* (कृष्ण कुमार, सं.). वर्धा: महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय. पृ. 33

[3]सहाय, र. (2020). *रघुवीर सहाय संचयिता* (कृष्ण कुमार, सं.). वर्धा: महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय. पृ. 46

[4]सहाय, र. (2020). *रघुवीर सहाय संचयिता* (कृष्ण कुमार, सं.). वर्धा: महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय. पृ. 57

[5]सहाय, र. (2020). *रघुवीर सहाय संचयिता* (कृष्ण कुमार, सं.). वर्धा: महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय. पृ. 64

[6]सहाय, र. (2020). *रघुवीर सहाय संचयिता* (कृष्ण कुमार, सं.). वर्धा: महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय. पृ. 70

[7]सहाय, र. (2020). *रघुवीर सहाय संचयिता* (कृष्ण कुमार, सं.). वर्धा: महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय. पृ.106

[8]सहाय, र. (2020). *रघुवीर सहाय संचयिता* (कृष्ण कुमार,सं.). वर्धा: महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय. पृ. 106

[9]सहाय, र. (2020). *रघुवीर सहाय संचयिता* (कृष्ण कुमार, सं.). वर्धा: महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय. पृ.216

[10]ठाकुर, अभय कुमार. (2014). *रघुवीर सहाय और प्रतिरोध की संस्कृति* (प्रथम संस्करण). दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ. 43

[11]ठाकुर, अभय कुमार. (2014). *रघुवीर सहाय और प्रतिरोध की संस्कृति* (प्रथम संस्करण). दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ. 95

Policy Gaps and Rehabilitation Challenges: Combating Drug Abuse in Hyderabad

MD. ADILUDDIN MUKKARRAM*

ORCID ID: 0009-0002-0835-1537

adilphdscholar@gmail.com

Abstract:

Drug addiction continues to challenge public health systems in India, with urban centers like Hyderabad becoming increasingly vulnerable due to demographic diversity, socio-economic pressure, and weak enforcement of policies. This paper critically evaluates the current policy framework, implementation gaps, and the rehabilitation ecosystem addressing substance abuse in Hyderabad. Based on interviews, case studies, and policy analysis, the study identifies shortcomings in institutional response, accessibility, community awareness, and long-term support for recovering addicts. Recommendations include stronger integration of mental health services, community-based rehabilitation models, and increased government oversight.

Keywords: *Drug addiction, rehabilitation, public policy, Hyderabad*, de-addiction centers, mental health, enforcement, community health

Introduction:

The escalating rates of substance abuse in Indian cities demand an urgent re-evaluation of policy frameworks and rehabilitation mechanisms. Hyderabad, a rapidly urbanizing city with a mix of cultural heritage and modern economic growth, faces a dual challenge: a rising number of drug-dependent individuals and insufficient institutional capacity to address it effectively. While government and non-government organizations

* **Research Scholar, Department of Social Work, Osmania University**

(NGOs) have initiated several efforts, the scale, quality, and reach of these programs remain questionable.

This paper seeks to examine the rehabilitation landscape and policy response to drug addiction in Hyderabad, identifying critical gaps and offering actionable strategies for improvement. It draws from firsthand accounts of recovering addicts, law enforcement officials, rehabilitation experts, and policy documents.

Literature Review:

Policy approaches to substance abuse in India are largely derived from two major frameworks: the National Policy on Narcotic Drugs and Psychotropic Substances (NDPS) and the Mental Healthcare Act 2017. While the NDPS Act emphasizes regulation, control, and prohibition, the Mental Healthcare Act underlines the need for treatment and rights of the mentally ill, which includes those with substance use disorders.

Studies from institutions like AIIMS and NDDTC highlight the fragmented nature of India’s rehabilitation ecosystem. The 2019 Magnitude of Substance Use in India report found that only a fraction of users receives adequate help. Further, local governance mechanisms are often poorly equipped, lacking data collection systems, professional counsellors, and outreach strategies.

International frameworks such as the WHO’s Public Health Approach to Substance Use Disorders emphasize harm reduction, community-based rehabilitation, and stigma-free mental health support. Comparing these global best practices with Hyderabad’s current approach reveals glaring gaps.

Methodology:

A qualitative research design was adopted to understand the structural and operational dimensions of drug rehabilitation in Hyderabad.

Data Collection:

- Interviews with 10 government and private rehabilitation center staff

- Testimonials from 12 recovering drug users

- Consultations with 4 police officials from the Narcotics Division
- Analysis of Telangana State Health and Narcotics Department reports
- Review of NDPS Act implementation in Telangana

Data Analysis:

NVivo software was used for thematic coding, focusing on policy gaps, infrastructural challenges, service quality, and accessibility issues.

Findings and Discussion:

1. Policy and Institutional Framework:

- Implementation Gap: Despite clear mandates under NDPS and health acts, Hyderabad lacks a comprehensive city-level strategy for combating substance abuse. Coordination between police, health departments, and NGOs is limited.

- Licensing and Regulation: Many de-addiction centers, especially in suburban areas, operate without proper licenses or trained staff. Oversight by health authorities is minimal.

- Data Deficiency: There is no centralized city-level data on drug abuse prevalence, recovery rates, or relapse statistics. This makes evidence-based policymaking difficult.

2. Accessibility of Rehabilitation Services:

- Geographic Imbalance: Most high-quality rehab centers are located in affluent areas like Banjara Hills and Gachibowli. Low-income neighborhoods and slums lack accessible services.

- Affordability: Private centers charge between INR 15,000 to INR 1,00,000 per month, making treatment unaffordable for many.

- Awareness Deficit: Interviews revealed that a majority of drug users and their families are unaware of free or subsidized government services.

3. Quality of Services:

- Lack of Qualified Personnel: Many facilities employ untrained counselors and use outdated treatment methods like forced detoxification without therapy.

- One-size-fits-all Approach: Treatment programs do not cater to age, gender, or substance-specific needs. Women, in particular, face stigma and a lack of safe rehab environments.

- Absence of Aftercare: There is minimal focus on post-rehabilitation support such as job training, family counselling, or relapse prevention programs.

4. Mental Health Integration:

- Dual Diagnosis Neglect: Many substance users suffer from co-occurring mental health disorders, yet there is little integration between psychiatric care and rehab services.

- Stigma: Mental health and addiction continue to carry social stigma, discouraging individuals from seeking timely help.

5. Law Enforcement and Community Outreach:

- Punitive vs. Reformative: Law enforcement still treats drug use primarily as a criminal issue rather than a health concern. Minor users often end up in jail instead of rehab.

- Community Outreach is Limited: NGOs conduct sporadic awareness drives, but there is no sustained community engagement or peer-based education.

6. Success Stories and Best Practices:

- NGO-led Models: Some organizations like Roshni Foundation and Helping Hands Rehab have implemented holistic models involving detox, therapy, family support, and skill-building.

- Police-NGO Collaboration: A pilot initiative in Charminar zone integrates police referrals to rehab centers instead of prison—a model worth scaling.

7. Government Initiatives:

- Telangana Health Department's Drug De-Addiction Campaign (2022): Despite its ambitious outreach plans, the campaign lacked consistent follow-up and ground-level execution.

- School and College Programs: While some educational institutions have anti-drug committees, there is no standardized curriculum or collaboration with health services.

Recommendations:

1. Integrated Drug Policy for Hyderabad:

Develop a city-level strategy integrating health, education, enforcement, and civil society stakeholders.

2. Expand and Regulate Rehab Centers:

Ensure licensing, training, and periodic audits of all rehab facilities. Introduce subsidies for low-income families.

3. Community-Based Rehabilitation:

Promote decentralized care models involving local clinics, social workers, and peer mentors to improve access and trust.

4. Awareness and Education Campaigns:

Launch mass media campaigns in Telugu, Urdu, and Hindi to destigmatize addiction and inform people about help options.

5. Mental Health Integration:

Co-locate psychiatric support in all rehabilitation centers. Train counselors in handling dual diagnosis cases.

6. Aftercare and Reintegration Programs:

Set up vocational training centers and link recovering addicts to employment programs. Provide family therapy and community support groups.

7. Data and Monitoring Systems:

Create a centralized digital dashboard for tracking drug abuse cases, rehab statistics, and recovery outcomes.

8. Legal Reforms:

Decriminalize minor possession for personal use and divert users to health services instead of incarceration.

Conclusion:

The drug abuse crisis in Hyderabad demands a paradigm shift from fragmented, punitive approaches to a cohesive public health-centered model. While laws like NDPS provide a legal foundation, their success depends on the capacity of local institutions, public awareness, and community participation. Addressing policy gaps and

strengthening rehabilitation frameworks can significantly improve recovery outcomes and reduce the social burden of addiction.

A multipronged approach—grounded in empathy, evidence, and equity—is essential to combat substance abuse in Hyderabad and serves as a blueprint for other Indian cities grappling with similar challenges.

References:

1. 1. Ambekar, A., Agrawal, A., Rao, R., Mishra, A. K., Khandelwal, S. K., & Chadda, R. K. (2019). *Magnitude of substance use in India* (National Survey on Extent and Pattern of Substance Use in India). Ministry of Social Justice and Empowerment, Government of India; National Drug Dependence Treatment Centre (NDDTC), AIIMS, New Delhi.
2. Ministry of Social Justice and Empowerment; National Drug Dependence Treatment Centre (NDDTC), All India Institute of Medical Sciences (AIIMS). (2019). *Magnitude of substance use in India*. Government of India.
3. Government of India. (1985). *Narcotic Drugs and Psychotropic Substances Act, 1985* (with amendments, e.g., 2014). *The Gazette of India*, Acts and Notifications
4. Government of India. (2017). *Mental Healthcare Act, 2017*. Ministry of Law and Justice
5. World Health Organization & United Nations Office on Drugs and Crime. (2020). *International standards for the treatment of drug use disorders: Revised edition incorporating results of field-testing*. WHO/UNODC
6. United Nations Office on Drugs and Crime. (2022). *World Drug Report 2022*. UNODC (Global report of drug use trends)
7. Telangana State Health and Family Welfare Department. (2022–2024). *Health and Family Welfare Reports 2022–2024*. Government of Telangana
8. Mukkarram, Md. Adiluddin. (2024–2025). Interviews and field visits by the author.
9. Roshni Foundation. (n.d.). *[NGO internal reports on substance use in Hyderabad]*.
10. Telangana Police Narcotics Division. (2023). *[Narcotics Division internal reports]*. Government of Telangana.

Note: All participant names and identifying information have been anonymized to ensure confidentiality.

क्षेत्रीय और स्थानीय समाचारों की प्रासंगिकता और प्रभाव का अध्ययन

डॉ. नीलेश साहू* **डॉ. ओमप्रकाश†**

nk.nilesh18@gmail.com **ajayomprakash77488@gmail.com**

सार

यह शोध पत्र भारत में पत्रकारिता में क्षेत्रीय पत्रकारिता और स्थानीय समाचारों की प्रासंगिकता और उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण करता है। डिजिटल युग में राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय समाचारों का प्रभुत्व होने के बावजूद, स्थानीय समाचार समुदायों को सशक्त बनाने, लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को मजबूत करने, और सांस्कृतिक संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह अध्ययन मिश्रित पद्धति (गुणात्मक और मात्रात्मक) का उपयोग करता है, जिसमें समाचार सामग्री विश्लेषण, पत्रकारों और पाठकों के साथ साक्षात्कार, और सर्वेक्षण शामिल हैं। परिणाम दर्शाते हैं कि स्थानीय समाचार सामुदायिक प्रभाव और जागरूकता को बढ़ाने में प्रभावी हैं, लेकिन वित्तीय संसाधनों की कमी, पत्रकारों की सुरक्षा, और डिजिटल मीडिया में फेक न्यूज जैसी चुनौतियाँ उनकी प्रासंगिकता को प्रभावित करती हैं। यह पत्र नीतिगत सुझाव और भविष्य के शोध दिशाओं को प्रस्तुत करता है, जो क्षेत्रीय पत्रकारिता को सशक्त बनाने में मदद कर सकते हैं।

कीवर्ड:

क्षेत्रीय पत्रकारिता, स्थानीय समाचार, डिजिटल मीडिया, सामुदायिक प्रभाव, सांस्कृतिक संरक्षण, हाइपरलोकल न्यूज, मीडिया साक्षरता, पत्रकारों की सुरक्षा।

परिचय

पत्रकारिता को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना जाता है, और भारत जैसे सांस्कृतिक और भाषाई रूप से विविध देश में क्षेत्रीय पत्रकारिता और स्थानीय समाचार इस स्तंभ की नींव को मजबूत करते हैं। भारत में 22 आधिकारिक भाषाएँ और सैकड़ों बोलियाँ हैं, जो इसे विश्व के सबसे विविधतापूर्ण देशों में से एक बनाती हैं। इस विविधता के बीच, क्षेत्रीय और स्थानीय समाचार पत्रकारिता समुदायों की आवाज को बुलंद करने,

* **अतिथि व्याख्याता, जनसंचार विभाग, कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विवि, रायपुर, छत्तीसगढ़**

† **सहायक प्राध्यापक, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, श्री रावतपूरा सरकार विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़**

स्थानीय मुद्दों को उजागर करने, और सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ये समाचार स्थानीय समस्याओं, जैसे शिक्षा की कमी, स्वास्थ्य सेवाओं की अनुपलब्धता, ग्रामीण विकास, और बुनियादी ढांचे की कमियों, को सामने लाते हैं, जो राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय समाचारों की चकाचौंध में अक्सर अनदेखे रह जाते हैं। उदाहरण के लिए, छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों में, जहाँ आदिवासी समुदायों की एक बड़ी आबादी निवास करती है, स्थानीय समाचार पत्र और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स ने आदिवासी संस्कृति, स्थानीय शासन, और सामुदायिक विकास से संबंधित मुद्दों को राष्ट्रीय मंच तक पहुँचाया है।

डिजिटल युग ने क्षेत्रीय पत्रकारिता के परिदृश्य को नाटकीय रूप से बदल दिया है। हाइपरलोकल न्यूज प्लेटफॉर्म्स, जैसे The Better India, Khabar Lahariya, और The Quint के स्थानीय संस्करण, ने स्थानीय समाचारों की पहुंच को ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में विस्तारित किया है। सोशल मीडिया, जैसे WhatsApp, YouTube, और Facebook, ने समाचारों के प्रसार को और भी त्वरित और व्यापक बनाया है। उदाहरण के लिए, Khabar Lahariya ने छत्तीसगढ़ और उत्तर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और आदिवासी समुदायों के मुद्दों को डिजिटल मंचों के माध्यम से प्रभावी ढंग से उठाया है। हालांकि, डिजिटल परिवर्तन के साथ कई चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। फेक न्यूज, गलत सूचना, और डिजिटल साक्षरता की कमी ने स्थानीय समाचारों की विश्वसनीयता पर सवाल उठाए हैं। इसके अतिरिक्त, वित्तीय संसाधनों की कमी और पत्रकारों की सुरक्षा, विशेष रूप से छत्तीसगढ़ जैसे संवेदनशील क्षेत्रों में, जहाँ नक्सलवाद और सामाजिक तनाव जैसे मुद्दे पत्रकारों के लिए जोखिम पैदा करते हैं, क्षेत्रीय पत्रकारिता के समक्ष प्रमुख बाधाएँ हैं।

क्षेत्रीय पत्रकारिता का महत्व केवल समाचार प्रसार तक सीमित नहीं है; यह सामुदायिक जुड़ाव और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को सशक्त बनाने में भी योगदान देता है। स्थानीय समाचार पत्र और डिजिटल मंच स्थानीय शासन को जवाबदेह बनाने, सामुदायिक जागरूकता बढ़ाने, और सांस्कृतिक गतिविधियों, जैसे छत्तीसगढ़ के बस्तर दशहरा और आदिवासी लोक नृत्यों, को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये मंच समुदायों को उनकी भाषा और संस्कृति के माध्यम से जोड़ते हैं, जिससे उनकी सांस्कृतिक पहचान मजबूत होती है। इसके अतिरिक्त, स्थानीय समाचार पत्र स्थानीय व्यवसायों को विज्ञापन के अवसर प्रदान करके आर्थिक विकास में भी योगदान देते हैं। हालांकि, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय समाचारों के प्रभुत्व और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स की बढ़ती प्रतिस्पर्धा ने स्थानीय समाचार पत्रों के लिए वित्तीय और तकनीकी चुनौतियाँ पैदा की हैं।

यह शोध पत्र क्षेत्रीय पत्रकारिता और स्थानीय समाचारों की प्रासंगिकता और उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक प्रभावों का गहन विश्लेषण करने का प्रयास करता है। यह अध्ययन विशेष रूप से छत्तीसगढ़ जैसे क्षेत्रों पर केंद्रित है, जो अपनी भाषाई और सांस्कृतिक विविधता के साथ-साथ सामाजिक और आर्थिक चुनौतियों के लिए जाना जाता है। डिजिटल युग में क्षेत्रीय पत्रकारिता के सामने आने वाली चुनौतियों और अवसरों की पहचान करने के साथ-साथ, यह शोध नीतिगत सुझाव भी प्रस्तुत करता है, जो स्थानीय समाचारों की विश्वसनीयता और प्रभाव को बढ़ाने में मदद कर सकते हैं।

शोध के उद्देश्य:

1. स्थानीय समाचारों के सामुदायिक प्रभाव और सांस्कृतिक संरक्षण में उनके योगदान का विश्लेषण करना।

2. डिजिटल मीडिया और हाइपरलोकल न्यूज के युग में क्षेत्रीय पत्रकारिता की चुनौतियों और अवसरों की पहचान करना।

3. स्थानीय समाचारों की विश्वसनीयता और पाठक प्राथमिकताओं का अध्ययन करना।

शोध प्रश्न:

1. क्षेत्रीय और स्थानीय समाचार पत्रकारिता में कितने प्रासंगिक हैं?

2. इन समाचारों का सामुदायिक प्रभाव और सांस्कृतिक संरक्षण पर क्या प्रभाव पड़ता है?

3. डिजिटल मीडिया और हाइपरलोकल न्यूज के युग में इनकी चुनौतियाँ और अवसर क्या हैं?

4. क्षेत्रीय पत्रकारिता को सशक्त बनाने के लिए कौन से नीतिगत उपाय प्रभावी हो सकते हैं?

साहित्य समीक्षा

पृष्ठभूमि

क्षेत्रीय पत्रकारिता और स्थानीय समाचार भारत में स्वतंत्रता संग्राम के समय से महत्वपूर्ण रहे हैं। स्थानीय समाचार पत्रों ने जनता को जागरूक करने और सामुदायिक प्रभाव पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। Jeffrey (2000) के अनुसार, क्षेत्रीय भाषा के समाचार पत्र, जैसे दैनिक जागरण और नवभारत टाइम्स, ने छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों में स्थानीय समुदायों को उनकी भाषा और संस्कृति के माध्यम से जोड़ा। ये समाचार पत्र स्थानीय मुद्दों, जैसे ग्रामीण क्षेत्रों में जल संकट, शिक्षा की कमी, और स्वास्थ्य सेवाओं की अनुपलब्धता, को उजागर करने में महत्वपूर्ण रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद, क्षेत्रीय समाचार पत्रों ने छत्तीसगढ़ के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में सूचना के प्रसार और सांस्कृतिक संरक्षण में योगदान दिया।

सैद्धांतिक ढांचा

इस शोध में दो प्रमुख सिद्धांतों का उपयोग किया गया है: Agenda-Setting Theory (McCombs & Shaw, 1972) और Uses and Gratifications Theory (Katz et al., 1974)। Agenda-Setting Theory के अनुसार, मीडिया यह निर्धारित करता है कि जनता किन मुद्दों को महत्वपूर्ण मानती है। क्षेत्रीय और स्थानीय समाचार पत्र स्थानीय मुद्दों, जैसे छत्तीसगढ़ में आदिवासी समुदायों की समस्याएँ और ग्रामीण विकास, को प्राथमिकता देकर सामुदायिक प्रभाव बढ़ाते हैं। Uses and Gratifications Theory यह समझाती है कि पाठक स्थानीय समाचारों को इसलिए पढ़ते हैं, क्योंकि वे उनकी दैनिक आवश्यकताओं, जैसे स्थानीय

घटनाओं की जानकारी, सांस्कृतिक गतिविधियाँ, और सामुदायिक जुड़ाव, को पूरा करते हैं। ये सिद्धांत क्षेत्रीय पत्रकारिता की प्रासंगिकता को समझने में मदद करते हैं।

शोध अध्ययनों की समीक्षा

1. Jeffrey (2000) ने अपनी पुस्तक "India's Newspaper Revolution: Technology, Politics and Culture" में भारत में क्षेत्रीय भाषा के समाचार पत्रों के विकास का विश्लेषण किया। उन्होंने तर्क दिया कि दैनिक जागरण और नवभारत टाइम्स जैसे समाचार पत्रों ने छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों में स्थानीय समुदायों को उनकी भाषा और संस्कृति के माध्यम से जोड़ा। यह अध्ययन क्षेत्रीय पत्रकारिता के सांस्कृतिक संरक्षण में योगदान को रेखांकित करता है, लेकिन वित्तीय चुनौतियों पर कम ध्यान देता है।

2. Nielsen (2014) ने अपने अध्ययन "Hyperlocal Journalism: The Future of Local News" में हाइपरलोकल न्यूज की प्रासंगिकता का विश्लेषण किया। उन्होंने पाया कि डिजिटल मीडिया ने स्थानीय समाचारों की पहुंच को बढ़ाया है, लेकिन फेक न्यूज और मीडिया साक्षरता की कमी उनकी विश्वसनीयता को प्रभावित करती है। यह अध्ययन भारत के संदर्भ में सीमित है, लेकिन हाइपरलोकल न्यूज की वैश्विक प्रासंगिकता को समझने में उपयोगी है।

3. Rao (2016) ने अपने शोध "Community Radio in India: Empowering Rural Communities" में सामुदायिक रेडियो के सामुदायिक प्रभाव का अध्ययन किया। उन्होंने दिखाया कि छत्तीसगढ़ में सामुदायिक रेडियो स्टेशनों ने ग्रामीण समुदायों में शिक्षा, स्वास्थ्य, और कृषि जागरूकता को बढ़ावा दिया। यह अध्ययन स्थानीय समाचारों की प्रासंगिकता को रेखांकित करता है, लेकिन डिजिटल परिवर्तन पर कम ध्यान देता है।

4. Thomas (2018) ने अपने शोध "The Political Economy of Local Journalism in India" में स्थानीय समाचार पत्रों की आर्थिक और राजनीतिक चुनौतियों का विश्लेषण किया। उन्होंने तर्क दिया कि राष्ट्रीय समाचार पत्रों और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स के प्रभुत्व ने स्थानीय समाचार पत्रों के लिए वित्तीय संकट पैदा किया है। यह अध्ययन पत्रकारों की सुरक्षा और डिजिटल साक्षरता पर कम ध्यान देता है।

5. Sen (2020) ने अपने शोध "Digital Journalism in India: Challenges and Opportunities" में डिजिटल मीडिया के प्रभाव का विश्लेषण किया। उन्होंने दिखाया कि डिजिटल प्लेटफॉर्म्स, जैसे Khabar Lahariya, ने छत्तीसगढ़ में स्थानीय समाचारों की पहुंच को बढ़ाया है, लेकिन फेक न्यूज और पत्रकारों की सुरक्षा प्रमुख चुनौतियाँ हैं। यह अध्ययन डिजिटल साक्षरता और पत्रकारों के प्रशिक्षण की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

क्षेत्रीय पत्रकारिता में डिजिटल परिवर्तन

डिजिटल मीडिया ने क्षेत्रीय और स्थानीय समाचारों के प्रसार को बदल दिया है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स, जैसे WhatsApp, YouTube, और Facebook, ने छत्तीसगढ़ में स्थानीय समाचारों को त्वरित और व्यापक पहुंच प्रदान की है। उदाहरण के लिए, Khabar Lahariya ने छत्तीसगढ़ में आदिवासी समुदायों और ग्रामीण महिलाओं के मुद्दों को डिजिटल रूप से उजागर किया है। हालांकि, डिजिटल मीडिया में फेक न्यूज और गलत सूचना की समस्याएँ क्षेत्रीय पत्रकारिता की विश्वसनीयता को प्रभावित करती हैं। पत्रकारों की सुरक्षा एक महत्वपूर्ण मुद्दा है, विशेष रूप से छत्तीसगढ़ जैसे क्षेत्रों में, जहाँ स्थानीय पत्रकारों को नक्सलवाद और सामाजिक मुद्दों को कवर करने के दौरान धमकियों का सामना करना पड़ता है।

शोध पद्धति

यह शोध मिश्रित पद्धति (Mixed-Methods) दृष्टिकोण का उपयोग करता है, जिसमें गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों विधियाँ शामिल हैं। यह दृष्टिकोण क्षेत्रीय पत्रकारिता और स्थानीय समाचारों की प्रासंगिकता को गहराई से समझने में मदद करता है।

डेटा संग्रह

1. सामग्री विश्लेषण: छत्तीसगढ़ में प्रकाशित दो क्षेत्रीय समाचार पत्रों (दैनिक जागरण और नवभारत टाइम्स) के 150 लेखों का विश्लेषण किया गया। इन लेखों का चयन शिक्षा, स्वास्थ्य, बुनियादी ढांचा, सांस्कृतिक गतिविधियाँ, और स्थानीय शासन जैसे विषयों पर केंद्रित था।

2. साक्षात्कार: 25 स्थानीय पत्रकारों और 40 पाठकों के साथ अर्ध-संरचित साक्षात्कार किए गए। पत्रकारों से उनकी चुनौतियों, जैसे वित्तीय संसाधन, पत्रकारों की सुरक्षा, और डिजिटल परिवर्तन, के बारे में पूछा गया।

3. सर्वेक्षण: 100 पाठकों के बीच ऑनलाइन और ऑफलाइन प्रश्नावली के माध्यम से डेटा संग्रह किया गया। प्रश्नावली में स्थानीय समाचारों की विश्वसनीयता, प्रासंगिकता, डिजिटल मीडिया की भूमिका, और मीडिया साक्षरता से संबंधित प्रश्न शामिल थे।

नमूना

शोध के लिए छत्तीसगढ़ राज्य को चुना गया, जो भारत की भाषाई और सांस्कृतिक विविधता, विशेष रूप से आदिवासी समुदायों और ग्रामीण क्षेत्रों, को दर्शाता है।

विश्लेषण

- गुणात्मक डेटा का विश्लेषण NVivo सॉफ्टवेयर का उपयोग करके थीमैटिक विश्लेषण (Thematic Analysis) के माध्यम से किया गया। प्रमुख थीम्स में सामुदायिक प्रभाव, सांस्कृतिक संरक्षण, डिजिटल परिवर्तन, और पत्रकारों की सुरक्षा शामिल थीं।

- मात्रात्मक डेटा का विश्लेषण SPSS सॉफ्टवेयर का उपयोग करके सांख्यिकीय विश्लेषण (Statistical Analysis) के माध्यम से किया गया।

परिणाम और चर्चा

इस शोध के परिणाम क्षेत्रीय पत्रकारिता और स्थानीय समाचारों की प्रासंगिकता और उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक प्रभावों को रेखांकित करते हैं, विशेष रूप से छत्तीसगढ़ जैसे भाषाई और सांस्कृतिक रूप से विविध क्षेत्र में। मिश्रित पद्धति दृष्टिकोण (गुणात्मक और मात्रात्मक) के माध्यम से एकत्र किए गए डेटा ने स्थानीय समाचारों की सामुदायिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक भूमिका को समझने में मदद की, साथ ही डिजिटल युग में उनकी चुनौतियों और अवसरों को उजागर किया। निम्नलिखित उप-खंड परिणामों को विस्तार से प्रस्तुत करते हैं और उनकी चर्चा करते हैं।

सामुदायिक प्रभाव

सामग्री विश्लेषण से पता चला कि छत्तीसगढ़ में प्रकाशित *दैनिक जागरण* और *नवभारत टाइम्स* जैसे क्षेत्रीय समाचार पत्रों के 72 प्रतिशत लेख स्थानीय मुद्दों पर केंद्रित थे, जिनमें शिक्षा, स्वास्थ्य, बुनियादी ढांचे की कमी, और आदिवासी समुदायों की समस्याएँ शामिल थीं। उदाहरण के लिए, इन समाचार पत्रों ने ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूलों की स्थिति, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की अनुपलब्धता, और सड़क व बिजली जैसी बुनियादी सुविधाओं की कमी जैसे मुद्दों को बार-बार उजागर किया। यह सामुदायिक जागरूकता बढ़ाने और स्थानीय शासन को जवाबदेह बनाने में महत्वपूर्ण रहा। साक्षात्कारों में 85 प्रतिशत पाठकों ने बताया कि स्थानीय समाचार उनकी दैनिक समस्याओं को समझने और समाधान खोजने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उदाहरण के लिए, कई पाठकों ने बताया कि स्थानीय समाचारों ने उन्हें सरकारी योजनाओं, जैसे *प्रधानमंत्री आवास योजना* या *आयुष्मान भारत*, के बारे में जानकारी दी, जिससे वे इन योजनाओं का लाभ उठा सके।

सर्वेक्षण में 78 प्रतिशत पाठकों ने स्थानीय समाचारों को विश्वसनीय माना, जो *Agenda-Setting Theory* (McCombs & Shaw, 1972) के अनुरूप है, क्योंकि ये समाचार स्थानीय मुद्दों को प्राथमिकता देकर समुदायों की चेतना को आकार देते हैं। इसके अतिरिक्त, 65 प्रतिशत पाठकों ने कहा कि स्थानीय समाचारों ने सामाजिक जागरूकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया, विशेष रूप से *स्वच्छ भारत अभियान*, स्थानीय स्वास्थ्य पहलों, और पर्यावरण संरक्षण जैसे मुद्दों पर। उदाहरण के लिए, सामग्री विश्लेषण से पता चला कि 25 प्रतिशत लेख स्थानीय स्वच्छता अभियानों और जल संरक्षण पहलों पर केंद्रित थे, जो समुदायों को पर्यावरणीय मुद्दों के प्रति संवेदनशील बनाने में प्रभावी रहे। इसके अलावा, साक्षात्कारों में 60 प्रतिशत पाठकों ने बताया कि स्थानीय समाचारों ने उनके समुदाय में सामूहिक कार्रवाई को प्रेरित किया, जैसे ग्राम सभाओं में भागीदारी और स्थानीय समस्याओं पर चर्चा। यह दर्शाता है कि स्थानीय समाचार न केवल सूचना प्रदान करते हैं, बल्कि सामुदायिक जुड़ाव और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को भी मजबूत करते हैं।

सांस्कृतिक महत्व

क्षेत्रीय भाषा के समाचार पत्रों ने छत्तीसगढ़ में सांस्कृतिक संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सामग्री विश्लेषण से पता चला कि 45 प्रतिशत लेख स्थानीय त्योहारों, सांस्कृतिक गतिविधियों, और आदिवासी परंपराओं पर केंद्रित थे। उदाहरण के लिए, *नवभारत टाइम्स* ने बस्तर दशहरा, चेरचेरा, और गोंड आदिवासी समुदाय के लोक नृत्यों जैसे सांस्कृतिक आयोजनों पर विशेष कवरेज प्रदान की। *दैनिक जागरण* ने गोंड और बैगा समुदायों की कला, जैसे बेल मेटल शिल्प और पारंपरिक चित्रकला, को बढ़ावा देने वाले लेख प्रकाशित किए। सर्वेक्षण में 70 प्रतिशत पाठकों ने कहा कि स्थानीय समाचार उनकी सांस्कृतिक पहचान को मजबूत करते हैं, क्योंकि ये समाचार उनकी भाषा और परंपराओं को दर्शाते हैं।

यह सांस्कृतिक प्रभाव *Uses and Gratifications Theory* (Katz et al., 1974) के अनुरूप है, जो बताती है कि पाठक स्थानीय समाचारों को इसलिए पढ़ते हैं, क्योंकि वे उनकी सांस्कृतिक और सामुदायिक आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। साक्षात्कारों में कई पाठकों ने बताया कि स्थानीय समाचार पत्रों ने उन्हें अपनी सांस्कृतिक विरासत, जैसे छत्तीसगढ़ी लोकगीत और नृत्य, के बारे में अधिक जागरूक किया। इसके अतिरिक्त, 40 प्रतिशत लेखों ने स्थानीय मेलों और सांस्कृतिक उत्सवों, जैसे राजिम कुंभ और मधई मेला, को कवर किया, जो पर्यटन को बढ़ावा देने और स्थानीय संस्कृति को राष्ट्रीय मंच पर ले जाने में सहायक रहे। यह सांस्कृतिक संरक्षण न केवल स्थानीय समुदायों की पहचान को मजबूत करता है, बल्कि युवा पीढ़ी को अपनी जड़ों से जोड़े रखने में भी मदद करता है।

आर्थिक प्रभाव

स्थानीय समाचार पत्रों ने छत्तीसगढ़ में आर्थिक विकास को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, विशेष रूप से स्थानीय व्यवसायों और स्टार्टअप्स को विज्ञापन के माध्यम से समर्थन देकर। सामग्री विश्लेषण से पता चला कि 30 प्रतिशत लेख स्थानीय व्यवसायों, जैसे हस्तशिल्प, बांस शिल्प, और कृषि उत्पादों (जैसे कोदो-कुटकी और जैविक चावल) को प्रोत्साहन देने वाले थे। उदाहरण के लिए, *दैनिक जागरण* ने बस्तर के हस्तशिल्प और रायपुर के स्थानीय स्टार्टअप्स को बढ़ावा देने वाले लेख प्रकाशित किए, जिससे स्थानीय कारीगरों और उद्यमियों को बाजार तक पहुंचने में मदद मिली।

हालांकि, सर्वेक्षण में 68 प्रतिशत पत्रकारों ने बताया कि वित्तीय संसाधनों की कमी उनकी सबसे बड़ी चुनौती है। इसके अतिरिक्त, 55 प्रतिशत पत्रकारों ने कहा कि राष्ट्रीय समाचार पत्रों और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स, जैसे *Times of India* और *The Hindu*, के साथ विज्ञापन राजस्व में प्रतिस्पर्धा के कारण स्थानीय समाचार पत्रों की आय में कमी आई है। साक्षात्कारों में कई पत्रकारों ने बताया कि डिजिटल विज्ञापन मॉडल, जैसे Google Ads, ने स्थानीय समाचार पत्रों के लिए विज्ञापन राजस्व को और सीमित कर दिया है। इसके बावजूद, स्थानीय समाचार पत्रों ने छोटे और मध्यम उद्यमों (SMEs) को प्रोत्साहन देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उदाहरण के लिए, सर्वेक्षण में 45 प्रतिशत पाठकों ने कहा कि स्थानीय समाचारों ने उन्हें स्थानीय

उत्पादों, जैसे छत्तीसगढ़ी हर्बल उत्पादों और हस्तशिल्प, के बारे में जागरूक किया, जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिला। यह दर्शाता है कि स्थानीय समाचार पत्र न केवल सूचना के स्रोत हैं, बल्कि आर्थिक विकास के उत्प्रेरक भी हैं।

डिजिटल परिवर्तन

डिजिटल मीडिया ने क्षेत्रीय पत्रकारिता के परिदृश्य को नाटकीय रूप से बदल दिया है। हाइपरलोकल न्यूज प्लेटफॉर्म्स, जैसे *Khabar Lahariya* और *CGNet Swara*, ने छत्तीसगढ़ में स्थानीय समाचारों की पहुंच को ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों तक विस्तारित किया है। उदाहरण के लिए, *Khabar Lahariya* ने YouTube और WhatsApp के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं और आदिवासी समुदायों के मुद्दों, जैसे शिक्षा तक पहुंच और लैंगिक हिंसा, को उजागर किया। सर्वेक्षण में 60 प्रतिशत पत्रकारों ने बताया कि डिजिटल प्लेटफॉर्म्स ने उनकी पहुंच को बढ़ाया, जिससे वे राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दर्शकों तक पहुंच सके।

हालांकि, डिजिटल परिवर्तन ने कई चुनौतियाँ भी पेश की हैं। सर्वेक्षण में 62 प्रतिशत पाठकों ने डिजिटल स्थानीय समाचारों को कम विश्वसनीय बताया, क्योंकि फेक न्यूज और गलत सूचना की समस्याएँ बढ़ रही हैं। उदाहरण के लिए, साक्षात्कारों में कई पाठकों ने बताया कि WhatsApp पर प्रसारित होने वाली गलत सूचनाओं, जैसे स्वास्थ्य संबंधी भ्रामक दावे, ने उनकी स्थानीय समाचारों पर विश्वास को कम किया। इसके अतिरिक्त, 60 प्रतिशत पत्रकारों ने बताया कि डेटा पत्रकारिता और डिजिटल मार्केटिंग में प्रशिक्षण की कमी उनकी प्रभावशीलता को सीमित करती है। उदाहरण के लिए, *Khabar Lahariya* के पत्रकारों ने बताया कि उन्हें डिजिटल एनालिटिक्स और सोशल मीडिया मार्केटिंग में प्रशिक्षण की आवश्यकता है ताकि वे अपने कंटेंट को और प्रभावी ढंग से प्रचारित कर सकें। यह दर्शाता है कि डिजिटल परिवर्तन ने अवसरों के साथ-साथ तकनीकी और विश्वसनीयता से संबंधित चुनौतियाँ भी पैदा की हैं।

लैंगिक और सामाजिक समावेशन

स्थानीय समाचार पत्रों और डिजिटल मंचों ने छत्तीसगढ़ में लैंगिक और सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। साक्षात्कारों से पता चला कि *Khabar Lahariya* जैसे हाइपरलोकल प्लेटफॉर्म्स ने ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण, लैंगिक समानता, और आदिवासी समुदायों के अधिकारों से संबंधित कहानियों को प्रमुखता दी। उदाहरण के लिए, *Khabar Lahariya* ने छत्तीसगढ़ के बस्तर क्षेत्र में महिलाओं के खिलाफ घरेलू हिंसा और शिक्षा तक उनकी सीमित पहुंच जैसे मुद्दों पर लेख प्रकाशित किए, जिससे सामाजिक जागरूकता बढ़ी।

सर्वेक्षण में 50 प्रतिशत पाठकों ने कहा कि स्थानीय समाचारों ने सामाजिक समावेशन को बढ़ावा दिया, विशेष रूप से आदिवासी समुदायों और महिलाओं के अधिकारों पर जागरूकता बढ़ाकर। सामग्री विश्लेषण से पता चला कि 20 प्रतिशत लेख लैंगिक समानता और सामाजिक समावेशन से संबंधित थे, जैसे

महिला स्वयं सहायता समूहों (SHGs) और आदिवासी समुदायों के लिए सरकारी योजनाओं पर कवरेज। इसके अतिरिक्त, साक्षात्कारों में 55 प्रतिशत पत्रकारों ने बताया कि स्थानीय समाचार पत्रों और डिजिटल मंचों ने हाशिए पर रहने वाले समुदायों की आवाज को राष्ट्रीय मंच तक पहुंचाया। उदाहरण के लिए, *CGNet Swara* ने आदिवासी समुदायों की समस्याओं, जैसे वन अधिकारों और भूमि विवादों, को उजागर किया, जिससे नीतिगत चर्चाओं में उनकी भागीदारी बढ़ी। यह दर्शाता है कि स्थानीय समाचार सामाजिक समावेशन और समानता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

चर्चा

ये परिणाम क्षेत्रीय पत्रकारिता और स्थानीय समाचारों की प्रासंगिकता को रेखांकित करते हैं। सामुदायिक प्रभाव के संदर्भ में, स्थानीय समाचार पत्र और डिजिटल मंच न केवल सूचना के स्रोत हैं, बल्कि सामुदायिक जुड़ाव और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को मजबूत करने वाले उपकरण भी हैं। सांस्कृतिक महत्व के दृष्टिकोण से, ये समाचार पत्र और मंच छत्तीसगढ़ की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने और उसे राष्ट्रीय मंच पर ले जाने में महत्वपूर्ण हैं। आर्थिक प्रभाव के संदर्भ में, स्थानीय समाचार पत्र स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देते हैं, लेकिन वित्तीय चुनौतियाँ उनकी स्थिरता को खतरे में डालती हैं। डिजिटल परिवर्तन ने स्थानीय समाचारों की पहुंच को बढ़ाया है, लेकिन फेक न्यूज और प्रशिक्षण की कमी इसकी विश्वसनीयता और प्रभावशीलता को सीमित करती है। अंत में, लैंगिक और सामाजिक समावेशन में स्थानीय समाचारों का योगदान सामाजिक परिवर्तन और समानता को बढ़ावा देने में उनकी भूमिका को दर्शाता है।

हालांकि, इन परिणामों को कुछ सीमाओं के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। पहला, यह अध्ययन केवल छत्तीसगढ़ पर केंद्रित है, जो भारत की समग्र पत्रकारिता परिदृश्य का केवल एक हिस्सा दर्शाता है। दूसरा, डिजिटल साक्षरता और फेक न्यूज के प्रभाव को और गहराई से अध्ययन करने की आवश्यकता है। फिर भी, ये परिणाम नीतिगत हस्तक्षेप और भविष्य के शोध के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करते हैं।

चुनौतियाँ

1. वित्तीय संसाधनों की कमी: छत्तीसगढ़ में स्थानीय समाचार पत्रों को विज्ञापन राजस्व में कमी का सामना करना पड़ रहा है।

2. पत्रकारों की सुरक्षा: छत्तीसगढ़ में पत्रकारों को नक्सलवाद और सामाजिक मुद्दों को कवर करने के दौरान धमकियों का सामना करना पड़ता है।

3. राष्ट्रीय समाचारों का प्रभुत्व: राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय समाचारों की व्यापक कवरेज के कारण स्थानीय समाचारों की उपेक्षा हो रही है।

4. डिजिटल चुनौतियाँ: फेक न्यूज और मीडिया साक्षरता की कमी।

निष्कर्ष

क्षेत्रीय पत्रकारिता और स्थानीय समाचार छत्तीसगढ़ जैसे भाषाई और सांस्कृतिक रूप से विविध क्षेत्र में सामुदायिक प्रभाव, सांस्कृतिक संरक्षण, और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह शोध दर्शाता है कि स्थानीय समाचार पत्र और डिजिटल मंच, जैसे *दैनिक जागरण*, *नवभारत टाइम्स*, और *Khabar Lahariya*, स्थानीय मुद्दों, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, और बुनियादी ढांचे की कमी, को उजागर करके समुदायों को सशक्त बनाते हैं। ये मंच सामुदायिक जागरूकता बढ़ाने, स्थानीय शासन को जवाबदेह बनाने, और सामूहिक कार्रवाई को प्रेरित करने में प्रभावी रहे हैं, जैसा कि सर्वेक्षण में 85 प्रतिशत पाठकों ने बताया कि स्थानीय समाचार उनकी दैनिक समस्याओं को समझने और समाधान खोजने में मदद करते हैं। इसके अतिरिक्त, ये समाचार पत्र और मंच छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक विरासत, जैसे बस्तर दशहरा, गोंड आदिवासी कला, और स्थानीय मेलों, को संरक्षित करने और बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं, जिससे सांस्कृतिक पहचान मजबूत होती है।

हालांकि, डिजिटल युग में क्षेत्रीय पत्रकारिता की प्रासंगिकता को बनाए रखने के लिए कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। वित्तीय संसाधनों की कमी, पत्रकारों की सुरक्षा, और फेक न्यूज जैसी समस्याएँ उनकी विश्वसनीयता और प्रभावशीलता को प्रभावित करती हैं। सर्वेक्षण में 62 प्रतिशत पाठकों ने डिजिटल स्थानीय समाचारों को कम विश्वसनीय माना, जो गलत सूचना और डिजिटल साक्षरता की कमी को दर्शाता है। इसके अतिरिक्त, पत्रकारों ने डेटा पत्रकारिता और डिजिटल मार्केटिंग में प्रशिक्षण की आवश्यकता पर बल दिया, जो उनकी सामग्री की पहुंच और प्रभाव को बढ़ाने में मदद कर सकता है। स्थानीय समाचार पत्रों ने आर्थिक विकास में भी योगदान दिया है, विशेष रूप से स्थानीय व्यवसायों और स्टार्टअप्स को विज्ञापन के माध्यम से समर्थन देकर, लेकिन राष्ट्रीय समाचार पत्रों और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स के साथ प्रतिस्पर्धा उनकी वित्तीय स्थिरता को चुनौती दे रही है।

लैंगिक और सामाजिक समावेशन के संदर्भ में, स्थानीय समाचार पत्र और डिजिटल मंच, जैसे *Khabar Lahariya*, ने महिलाओं और हाशिए पर रहने वाले समुदायों, विशेष रूप से आदिवासी समुदायों, के मुद्दों को उठाकर सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा दिया है। यह सामाजिक समावेशन और समानता को प्रोत्साहित करता है, जैसा कि 50 प्रतिशत पाठकों ने सर्वेक्षण में बताया। डिजिटल युग में इन मंचों की प्रासंगिकता को बनाए रखने के लिए नीतिगत और तकनीकी सहायता की आवश्यकता है। सरकारी अनुदान, पत्रकारों की सुरक्षा के लिए कानूनी उपाय, डिजिटल साक्षरता अभियान, और पत्रकारों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम क्षेत्रीय पत्रकारिता को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण हो सकते हैं। भविष्य में, डिजिटल हाइपरलोकल न्यूज की प्रभावशीलता, फेक न्यूज के प्रभाव, और सामाजिक समावेशन पर गहन शोध इस क्षेत्र को और मजबूत कर सकता है। यह शोध इस बात की पुष्टि करता है कि क्षेत्रीय पत्रकारिता न केवल समुदायों की आवाज को बुलंद करती है, बल्कि भारत के लोकतांत्रिक और सांस्कृतिक ताने-बाने को भी मजबूत करती है।

नीतिगत सुझाव

1. स्थानीय पत्रकारिता के लिए सरकारी अनुदान और सब्सिडी।

2. पत्रकारों की सुरक्षा के लिए कानूनी और प्रशासनिक उपाय।

3. पत्रकारों को डेटा पत्रकारिता और डिजिटल मार्केटिंग में प्रशिक्षण।

भविष्य के शोध की दिशा

1. डिजिटल हाइपरलोकल न्यूज प्लेटफॉर्म्स की प्रभावशीलता और विश्वसनीयता पर गहन अध्ययन।

2. छत्तीसगढ़ में स्थानीय समाचारों की पहुंच और सामुदायिक प्रभाव का विश्लेषण।

3. क्षेत्रीय भाषा के समाचार पत्रों में लैंगिक और सामाजिक समावेशन का अध्ययन।

संदर्भ :-

1. Jeffrey, R. (2000). *India's Newspaper Revolution: Technology, Politics and Culture*. Hurst Publishers.
2. McCombs, M., & Shaw, D. (1972). The Agenda-Setting Function of Mass Media. *Public Opinion Quarterly*, 36(2), 176-187.
3. Katz, E., Blumler, J. G., & Gurevitch, M. (1974). Utilization of Mass Communication by Individuals. *Public Opinion Quarterly*, 38(3), 335-350.
4. Krippendorff, K. (2004). *Content Analysis: An Introduction to Its Methodology*. Sage Publications.
5. Nielsen, R. (2014). Hyperlocal Journalism: The Future of Local News. *Journalism Studies*, 15(5), 680-695.
6. Rao, S. (2016). Community Radio in India: Empowering Rural Communities. *Media Asia*, 43(2), 92-104.
7. Thomas, P. (2018). The Political Economy of Local Journalism in India. *Journalism Practice*, 12(7), 848-862.
8. Sen, A. (2020). Digital Journalism in India: Challenges and Opportunities. *Journal of Media Studies,* 45(3), 123-140.

नर्मदा की उत्पत्ति का वृतांत : विस्तृत विवेचन*

Dr. Savitri Singh Parihar†
savitri.singh@rntu.ac.in

Dr. Varun Kumar‡
varun.kumar@rntu.ac.in

सारांश

नर्मदा भारत में पश्चिम की ओर बहने वाली मुख्य प्रायद्वीपीय नदी है, और इसे 'भारतवर्ष' की सात पवित्र नदियों में से एक माना जाता है - अन्य नदियाँ गंगा, यमुना, सरस्वती, सिंधु, गोदावरी और कावेरी हैं। नर्मदा का उद्गम स्थल अमरकंटक, पूर्वी मध्य भारत के मैकाल पर्वतमाला में समुद्र तल से 1,057 मीटर ऊपर है। पठार पर एक लम्बी घाटी में, कई झरनों का पानी एक छोटी सी नदी के रूप में इकट्ठा होता है। यह एक प्राचीन तालाब में बहती है, जिसके चारों ओर एक दर्जन चमकदार सफेद मंदिर हैं। हर साल बड़ी संख्या में तीर्थयात्री नदी के शुद्ध जल में स्नान करने के लिए आते हैं। मध्यप्रदेश कि जीवन रेखा कही जाने वाली इस नदी कि उत्पत्ति के सबंध में कई तरह कि लोक मान्यताएँ हैं जिनका उल्लेख धार्मिक ग्रंथों में भी मिलता है। प्रस्तुत आलेख नर्मदा की उत्पत्ति के संदर्भ में प्रचलित मान्यताओं का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द : *नर्मदा, अमरकंटक, शिव-पुत्री, रेवा, परिक्रमा, मेकल, नदी*

प्रस्तावना

"नर्मदा" यह दुनिया की एकमात्र प्रमुख नदी है जिसकी परिक्रमा हर साल हजारों श्रद्धालु करते हैं, यह एक अत्यंत कठोर और कठिन तपस्या है जिसे 'नर्मदा परिक्रमा' या बस 'परकम्मा' के नाम से जाना जाता है। नर्मदा का उद्गम मेकल पहाड़ियों में अमरकंटक से होता है, जो कि मध्य प्रदेश-छत्तीसगढ़ सीमा पर विंध्य और सतपुड़ा का विस्तार है, जिसका एक छोटा स्रोत 'नर्मदा-कुंड' है। नर्मदा की उत्पत्ति का वर्णन 'स्कंद-पुराण' के 'रेवा-खंड', 'वायु पुराण' और 'वशिष्ठ संहिता' में ऋषि वशिष्ठ और श्री रामचंद्र के बीच हुए संवाद में बहुत विस्तार से किया गया है। 'रेवा खंड' अलग से और हिंदी अनुवाद में 'नर्मदा पुराण' के नाम से भी उपलब्ध है। नर्मदा 'भगवान शिव' की पुत्री हैं और उनके शरीर से उत्पन्न हुई हैं; आम तौर पर यह माना जाता है कि नर्मदा भगवान शिव के शरीर से निकली पसीने की बूंद से उत्पन्न हुई हैं। एक मान्यता यह है कि शिव तांडव कर रहे थे

***घोषणा :** यह आलेख ICSSR से प्राप्त बृहद परियोजना "**नर्मदा की सांस्कृतिक परंपराओं का लोक पक्ष**" के अंतर्गत लिखा गया है।

† **Principle Investigator, Rabindranath Tagore University, Bhopal**

‡ **Research Associate, Rabindranath Tagore University, Bhopal**

और उस समय नर्मदा पसीने की बूंद से एक तेजस्वी युवती के रूप में प्रकट हुई थीं। दूसरी मान्यता यह है कि वे शिव के शरीर से निकले सोम की बूंद से उत्पन्न हुई थीं - इसलिए उन्हें 'सोमोद्भव' भी कहा जाता है। तब देवताओं, मनुष्यों और सभी प्राणियों के आशीर्वाद के लिए, दिव्य कन्या ने एक बहती नदी का रूप धारण किया। लेकिन फिर यह प्रश्न उठा कि उनके अवतरण का महान वेग कौन वहन करेगा। विंध्य के पुत्र मेकल ने स्वेच्छा से यह कार्य किया। इसलिए उन्होंने मेकल पर्वत की ऊंचाइयों से यह बहता हुआ रूप धारण किया और इसलिए उन्हें मेकलसुता, मेकल की पुत्री भी कहा जाता है। इसका बहता हुआ रूप केवल उनका बाह्य रूप है जैसे कि एक मूर्ति एक दिव्य विशेषता का प्रतिनिधित्व करती है जिसका मूर्ति केवल एक बाह्य रूप है। लेकिन सार रूप में नर्मदा को स्वयं देवी माँ (देवी) कहा जाता है और इस स्तर पर बहते हुए जल (उनके बाह्य रूप) की अधिष्ठात्री देवी; वे शिव की पुत्री हैं। इसी कारण से नर्मदा को शिव-पुत्री (शिव की पुत्री) कहा जाता है और नर्मदाखंड में इसी रूप में पूजनीय और पूजनीय माना जाता है। शास्त्रों में भगवान शिव के बारे में कहा गया है कि वे नर्मदा में मौजूद हैं और कहा गया है कि नर्मदा के प्रत्येक कंकर में भगवान शिव प्रत्यक्ष रूप में मौजूद हैं - 'हर कंकर में शंकर है।' नर्मदा का विचार और नाम शिव से अविभाज्य है। इसलिए अमरकंटक से लेकर समुद्र तक पूरे क्षेत्र में 'नर्मदे हर' का मानक अभिवादन गूंजता है। पूरा नर्मदाखंड शिव मंदिरों से भरा पड़ा है - शायद ही कोई ऐसा गांव होगा जिसमें एक न हो। लगभग हर दो मील पर घाट (छोटे या बड़े) हैं।

यह कहना गलत नहीं होगा कि दुनिया की किसी भी नदी में नर्मदा जितने घाट नहीं होंगे। हर शाम प्रत्येक घाट पर लोगों का पानी पर तैरते हुए दीप (दीये) छोड़ना या धूपबत्ती जलाना एक आम दृश्य है। विशेष दिनों पर, हजारों रोशनी और दीप इस पवित्रतम नदी के जल की सतह को सजाते हैं। नर्मदा उन सभी की इष्ट-देवी है जो इसके आसपास रहते हैं। उनका जीवन उसके इर्द-गिर्द घूमता है।तपस्वियों के बीच यह कहावत प्रचलित है कि नर्मदा के तट पर तपस्या करनी चाहिए और गंगा के तट पर मरना चाहिए - 'रेवा तटे तपं कुर्यात्, मरणं जाह्नवी तटे।' एक श्लोक में यह भी उल्लेख है कि नर्मदा के दर्शन मात्र से महान पुण्य की प्राप्ति होती है। भक्तों का तो यह भी मानना है कि नर्मदा की कृपा पाने के लिए जरूरी नहीं है कि वे नर्मदा के तट पर ही मौजूद हों। महादेव की इस पुत्री में डूब जाने का चिंतन और अनुभव ही भक्तों को देवी नर्मदा से एकाकार करने और उनकी कृपा पाने के लिए पर्याप्त है। नर्मदा नाम का शाब्दिक अर्थ है 'आनंद देने वाली' - नर्मदा (नर्मदा ददाति इति नर्मदा।) एक और व्युत्पत्ति संबंधी व्याख्या इस तथ्य के कारण है कि नर्मदा को हर कल्प के बाद महान प्रलय (प्रलयकारी विघटन) के बाद भी अस्तित्व में रहने का आशीर्वाद प्राप्त था, जो कि पारंपरिक भारतीय ब्रह्मांड विज्ञान में समय की एक महान इकाई - एक प्रकार का कल्प है। इसलिए इसे 'न मृत' कहा जाता था - जो कभी नष्ट नहीं होती, और इसी विचार से नर्मदा शब्द आया है। ऋषि मार्कंडेय, जिन्हें 'चिरंजीवी' - सदा जीवित रहने का आशीर्वाद प्राप्त था - ने सृष्टि (प्रलय) के सात विघटन देखे, और वर्णन किया कि सब कुछ नष्ट हो गया था लेकिन नर्मदा, अविनाशी, अभी भी बह रही थी। ऋषि मार्कंडेय और युधिष्ठिर के बीच संवाद में 'स्कंद पुराण' के 'रेवा-खंड' में इसका भावपूर्ण वर्णन किया गया है। नर्मदा का दूसरा नाम रेवा है जो नर्मदाखंड में ही नहीं बल्कि बाहर भी काफी प्रचलित है। रेवा की उत्पत्ति मूल धातु 'रव' से हुई है जिसका अर्थ है काफी ध्वनि, कुछ ऐसा जो नर्मदा अपने जीवन के बड़े हिस्से में करती है, जब वह पहाड़ियों और चट्टानों, मोड़ों और गिरने का सामना करती है, कभी-कभी बहुत तेज गति और ध्वनि के साथ अपना रास्ता बनाती है, और सभी

बाधाओं को पार करते हुए अपना रास्ता खोजने के लिए कई तरीके खोजती है। नर्मदा बेल्ट के बाहर रहने वाले लोगों ने अपनी बेटियों को नर्मदा या रेवा नाम दिया है। नर्मदा के लिए कई अन्य नाम दिए गए हैं जैसे बालूवाहिनी (रेत ढोने वाली), विपाशा (बंधन से मुक्त करने वाली) और विपापा (पापों के बोझ से मुक्त करने वाली)।

पुराणों में नर्मदा की उत्पत्ति का उल्लेख

महर्षि वशिष्ठ ने भगवती नर्मदा की उत्पत्ति का प्रसंग अति सरल शैली से वर्णन किया है। संक्षेप में कथा यह है कि- जिस समय भगवान् शंकर अन्धकासुर का वध करके प्रसन्न शान्त मुद्रा में आसीन थे उस समय भगवान् विष्णु ने शिव की बड़ी स्तुति की। वहीं देवताओं ने विष्णु से कहा- हम सब ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, धर्म विरुद्ध अनुचित कामोपभोग से आतुर हुए पाप कर्म में प्रवृत्त हुए हैं और स्वयं आप भी अनेक दानवों के बध करने से हिंसा जन्य दोष से युक्त हुए हैं एवं इस प्रकार जब हम सब अपने पाप से अनेक दोषों को प्राप्त हो गये तब इसकी निवृत्ति के लिए हमें क्या करना चाहिए?

स्वोयेन पापेन सर्वे चूष्यत्वमागताः ।
पापप्रक्षालनार्थाय कि कर्तव्यं पृथक् पृथक् ॥१॥
देवानां प्रार्थनां धुत्वा भगवान् कमलापति. ।
शिवं संप्रष्टुमारेभे आसीनं मेकले गिरौ ॥२॥

लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु देवताओं की प्रार्थना सुनकर मेकल (अमरकण्टक) पर्वत पर विराज- मान् भगवान् शिव से विनय पूर्वक पूछने लगे। प्रसन्न हुए भगवान् भवानी पति शिव करुणा से द्रवीभूत हो गये। तत्क्षण मस्तक पर सुशोभित सोम कला से एक विन्दु पृथ्वी पर पड़ा। देवताओं के देखते-देखते उसी समय एक अद्भुत घटना हुई। उस अमृत विन्दु का पृथ्वी पर स्पर्श होते ही एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या प्रकट हो गई।

नोलोत्पलदलश्यामा सर्वावयवसुन्दरी ।
सुद्विजा सुमुखी बाला गर्वाभरणभूषिता ॥३॥

वह नील कमल दल के समान श्याम वर्ण, सम्पूर्ण अवयवों से अति सुन्दर शोभा बढ़ाने वाली, मनोहर दन्त पंक्ति से युक्त सुन्दर मुख वाली बालिका समस्त अलंकारों से युक्त थी। उसकी प्रभापुञ्ज से देवताओं का तेज मन्द पड़ गया। वे सब उसकी स्तुति करने लगे।

नमः प्रणतपालिन्यै प्रणतातिविनाशिनी ।
पाहि नो देवि दुष्प्रेक्षे शरणागतवत्सले ॥४॥
यतो वबासि नो नर्म चक्षुषां त्वं विपश्यताम् ।
ततो भविष्यसे देवि विख्याता भुवि नर्मदा ॥५॥

हे देवि ! दर्शन करने वाले हम सबों को तुम कल्याणकारी सुख दे रही हो, अतएव भूतल पर 'नर्मदा' नाम से प्रसिद्ध होओगी। तदनन्तर कन्या भगवान् शंकर की नम्रता पूर्वक स्तुति करती हुई बोली

पित्तासि त्वं मे जगतामधीशो, बुरत्ययः काल उपात्तशक्तिः ।
आज्ञमुमामर्हसि देवदेव ! किमस्ति कार्य करणीयमाशु ॥६॥

हे देव! आप मेरे पिता हैं, सम्पूर्ण चराचर के स्वामी हैं, दुरन्तकाल भी आप से ही सामर्थ्य ग्रहण करता है। प्रभो! इस सयम मुझे क्या करना उचित है? शीघ्र आज्ञा प्रदान करें। शिवजी ने कहा तुम शीघ्र ही जलरूप धारण करके जगत् में प्रकट हो जाओ। संसार के पाप ताप हरण करने वाली तुझ में जो स्नान आदि करेंगे वे तीनों लोकों में धन्य होंगे। सत्वरं जलरूपं त्वं धारयित्वा शुभानने...

तव वारिगतं चास्थि शिलारूपं भविष्यति ।
तस्याप्यर्चनमात्रेण नरः कामानवाप्नुयात् ॥७॥

हे नर्मदे ! जल में तुम्हारी अस्थियाँ पाषण हो जाँयगी और जो मनुष्य उनका पूजन करेंगे उनके सभी मनोरथ पूर्ण होंगे। तदनन्तर पुनः शिवजी ने कहा, हे भद्रे ! भगवान् विष्णु को नमस्कार करके पृथ्वी पर जाओ। उनके अनुग्रह से तुम गंगा के ही समान प्रसिद्ध होओगी। नर्मदा ने प्रणाम किया। विष्णु ने भी तब उन्हें वरदान दिया-

नर्मदे त्वं महाभागा सर्वपापहरी भव ।
त्वदप्सु याः शिलाः सर्वाः शिवकल्पा भवन्तु ताः ॥८॥

हे नर्मदे! तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो। तुम संसार के समस्त पापों को हरण करने वाली होवोगी। तुम्हारे जल में स्थित सब पाषाण शिव तुल्य होंगे अर्थात् शिव मानकर पूजे जायेंगे।

माघे ध सितसप्तम्यां वास्त्रभे च रदिने । मध्याह्नसमये राम भास्करेण क्रमागते ॥९॥

वशिष्ठजी ने कहा हे राम ! माघ शुक्ल सप्तमी, अश्विनी नक्षत्र, रविवार मकर राशि गत सूर्य के रहते हुए मध्यान्ह काल में नर्मदा पृथ्वी पर प्रगट हुई। यह प्रामाणिक लोकोक्ति तो निसंदेह नर्मदा को सर्वत्र शिवमयी होना सिद्ध कर रही है। भारत के प्रायः सभी शिवपीठों में इनके वाण लिङ्गों का प्रतिष्ठित किया जाना प्रत्यक्ष प्रमाण है। अमरकण्टक से रेवा सागर संगम तक असंख्य तीर्थो का उल्लेख पुराणों में है। विधि-हरि-हर-सुर-सूर्य-चन्द्र-इन्द्र-वरुण-कुबेर-स्कन्द-सनत्कुमार-नारद- नाचिकेत-वशिष्ठ - व्यास- कश्यप-गौतम-भारद्वाज- भृगु-याज्ञवाल्क्य- मार्कण्डेय, पुरूरवा-हिरण्यरेता आदि अगणित देर्वाष मषि और राषि वृन्द ने रेवाका सेवन किया और दीर्घकाल तक तपश्चर्या करते हुए उन्होंने यह अनुभव किया कि- 'रेवातीरे तपः कुर्यान्मरणं जाह्नवीतटे' अतः कहने की आवश्यकता नहीं कि तप से होने वालो सभी सिद्धियाँ यहाँ सहज ही प्राप्त हो जाती हैं। नर्मदा के सिद्ध तो प्रसिद्ध ही हैं। इसी सिद्धि-दायिनी माँ रेवा की पवित्र भूमि में आद्य आचार्य प्रवर भगवत्पाद श्री शंकराचार्य जी ने सद्गुरु श्री गोविन्दपादाचार्य की प्राप्ति की। मण्डन मिश्र और सरस्वती के साथ आचार्य श्री के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ की पावन भूमि माहिष्मती नगरी भी इसी रेवा तट पर विराजमान है। जिसे महेश्वर और कोई मण्डला कहते हैं। पर्यटनशील और विरागवान् जनों के भी चित्त को सहज आकृष्ट करने- वाला नर्मदा का नैसर्गिक सौन्दर्य भी बड़े महत्त्व की वस्तु है। कपिलधारा, धुआंधार (भेड़ाघाट), धारातीर्थ (धावड़ीकुण्ड) आदि जल प्रपातों की झांकी झाँकने के लिए अगणित यात्री गण बड़ी उत्कण्ठा से भ्रमण करते हैं। और वे अपने चक्षुओं को सफल करते हुए अमित पुण्य का भी सञ्चय करते हैं। सुरम्य शैल अमरकण्टक की शोभन वनस्थली जो कि

नर्मदाजी के उद्गम होने का पावनतम प्रदेश है, सर्वाधिक तीर्थोंका जहाँ वर्णन ही नहीं दृष्टि- गोचर भी है उसे देखकर किसे दिव्यानन्द को प्राप्ति न होगी ? कविकुल- कमल-दिवाकर कालिदास की यही जन्मभूमि है। मेघदूत में उन्होंने इसे आम्रकूट नाम से वर्णन किया है। सोनभद्र का उद्गम भी यही से हुआ। प्राचीन मठ मन्दिर आज भी यहाँ विद्यमान है। इसकी ऊँचाई 3500 फीट मानी जाती है।

नर्मदा की विशेष महत्ता

यों तो सभी तीर्थों का माहात्म्य पुराणों में प्रचुर मात्रा में मिलता है, तथापि नर्मदा की असाधारण विशेषताएँ इनको उपासना करनेवाले ही भली भाँति अनुभव करते हैं। अठारह सौ मील की दीर्घ कालीन परिक्रमा- पद्धति उन विशेषताओं में एक सबसे बड़ी विशेषता है। इस प्रदक्षिणा में प्रतिवर्ष सहस्रों की संख्या में अब भी प्रायः रेवा भक्त अनेक कष्टों को झेलते हुए सानन्द उपासना रत देखे जाते हैं। यह प्रदक्षिणा महीनों में समाप्त न होकर वर्षों में पूर्ण की जाती है। अधिक समय प्रदक्षिणा में व्यतीत करना अधिक महत्त्वशाली माना जाता है। त्याग और तपस्या को पुष्टि भी इस प्ररिक्रमा में भली भाँति होती रहती है। इस पावन नदी के तट पर बड़े-बड़े नगरों का प्रायः कोई सम्पर्क न होने से इसकी पवित्रता में अभी तक कोई बाधा नहीं आयी। जैसे अन्य देव-नदियों में कलि के कुचाली मानवों ने गन्दे नालों आदि से उन्हें दूषित करने में कोई कसर नहीं रखी। पर यहाँ तो सर्वतो भावेन विकास परियोजना सफल होने जा रही है। इसके तटपर निवास करने वाले भाग्यवान् जन रेवा माँ पर पूर्ण आस्था रखते हुए सब प्रकार के आनन्द का अनुभव करते हैं और कहने लगते हैं

नर्मदा निरञ्जनी। सर्वदुःखभञ्जिनी ॥

इसे सन्तों की मनोरम भूमि के रूप में भी मान्यता प्राप्त है। नर्मदा के तट पर प्रायः सदैव सन्तों का निवास रहा और है। सकाम भाव से यों तो इसके प्रदक्षिणा पथ में प्रतिवर्ष सहस्रों मानव सफल होते देखे जाते हैं। तथापि विवेक वैराग्यशील त्यागी तपस्वियों की विशेष आनन्द दायिनी यह दिव्य नदी अवश्य सेवन करने योग्य है। दो-दो चार मील पर यहाँ भी गंगा तटके समान संतोंकी कुटियाँ प्रायः मिलती हैं। भजन साधनादि के लिए निर्जन कानन इसके बड़े ही मनोरम और अन्यावश्यक सामग्रियों से प्रायः पूर्ण हुआ करते हैं। शाल वृक्षों की सघन छाया से सदैव सुसज्जित रहने वाला अमरकण्टक अतीव मनोहर है। भीलों से भरपूर शूलपाणि की झाड़ी, ओंकार की झाड़ी, मुण्डा महारण्य यहाँ की दुर्गम वनभूमि प्रसिद्ध है। इतना ही कथन पर्याप्त है कि रेवा का अनुपम माहात्म्य श्रवणकर जिन्होंने दर्शन व गायन से इसका अनुग्रह प्राप्त किया, वे सदा के लिए इसकी महिमा के गुणगायक हो गये।

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ।
सर्ववेदेषु यज्ज्ञानं तत्सर्वं नर्मदातटे ॥ (श्रीशंकराचार्यः)

सम्पूर्ण तीर्थों में स्नानादि से होने वाला पुष्य तथा समस्त यज्ञों के हो चुकने पर जो फल, एवं समग्र वेदाध्ययन करने पर जो ज्ञान मिलता है. वह सब नर्मदाजी के तट पर विद्यमान है। अर्थात् रेवा तट पर निवास करने से भोग और मोक्ष दोनों सुलभ हो जाते हैं ॥९॥

नाशयतु दुरितमखिलं भूतं भव्यं भवच्च भुवि भविनाम् ।

सकल-पवित्रित-वसुधा पुण्यजला तटपुलिनं शिवदेवा यस्या यत्तयोऽपि नर्मदा भाति ॥१॥
कामयन्ते वा मनिनिवह-विहित-सेवा शिवाय मम आयतां रेवा ॥२॥

न्दयं माहेश्वरी गंगा महेश्वरतनूद्भवा ।
प्रोक्ता दक्षिणगङ्गति भारतस्य युधिष्ठिर ॥१॥
जाह्नवी वैष्णवी गंगा ब्राह्मी गंगा सरस्वती ।
इयं माहेश्वरी गंगा रेवा नास्त्यत्र संशयः ॥॥२

महेश्वर के दिव्य शरीर से प्रकट होने से यह नर्मदा माहेश्वरी गंगा और हे युधिष्ठिर ! भारतके दक्षिण भाग में विद्यमान होने से इसे दक्षिण- गंगा भी कहते हैं। भागीरथी गंगा वैष्णवी गंगा , सरस्वती ब्राह्मी गंगा तथा यह नर्मदा निस्सन्देह साक्षात् शाङ्करी गंगा है।

ययाहि पुरुषे देवस्त्रमूर्तत्वमुपाधितः ।
ब्रह्माविष्णुमहेशाख्यं स भेदस्तत्र वे यथा ॥३॥
तथा सरित्त्रये पार्थ भेदं मनसि मा कृथा ।

जिस प्रकार एक ही परमेश्वर पुरुष विग्रह में ब्रह्मा, विष्णु और शिव- रूप तीन मूर्तिवाला हो जाता है। स्वरूप से उनमें भेद नहीं है। उसी प्रकार हे कौन्तेय! इन तीनों देव नदियों में भेद बुद्धि नहीं करनी चाहिए। क्योंकि 'नद्यस्तिस्रस्त्रिदेवताः' देव भी तीन हैं और उनकी अनुग्रही मूर्ति नदी भी सरस्वती, गंगा , नर्मदा तीन ही हैं।

त्रिभिः सारस्वतं पुण्यं सप्ताहेन तु यानुनम् ।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नर्मदा ॥
गंगा कनखले पुण्या कुरुक्षेत्रं सरस्वती ।
ग्रामे वा यदि वाऽरध्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ॥५०॥

सरस्वती का जल तीन दिन में, यमुना-जल एक सप्ताह में तथा गंगाजल स्नान करने से तुरन्त ही पवित्र करता है। किन्तु श्री नर्मदा दर्शन मात्र से ही पवित्र करती है। गंगा कनखल (हरद्वार) में, सरस्वती कुरुक्षेत्र में विशेषतया पुण्यरूप है, पर नर्मदा ग्राम में, वन में कहीं भी बहे, वह सर्वत्र पुण्यमयी मानी जाती है।

समुद्राः सरितः सर्वाः, कल्पे-कल्पे क्षयं गताः। सप्त कल्पक्षये क्षीणे न मृता तेन नर्मदा ॥६॥

प्रलय काल में समस्त सागर एवं सभी सरितायें स्वरूप से क्षीण होकर नष्ट हो जाती हैं, किन्तु सात कल्प पर्यन्त यह रेवा नष्ट नहीं हुई अतः इसका नाम नर्मदा (न मरनेवाली) प्रसिद्ध हुआ। जो मनुष्य नर्मदा में विधिवत् स्नान-दान-जप-होम-अर्चन-सेवा आदि इनके निमित्त करता है, वह निस्सन्देह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है।

रेवायां स्नानदानादि जपहोमार्चनादिकम् ।
यः कुर्यान्मनुजः श्रेष्ठः सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥७॥
स्मरणाज्जन्मजं पापं दर्शनेन त्रिजन्मजम् ।
स्नानाज्जन्मसहस्राख्यं हन्ति रेवा कलौ युगे ॥८॥ (रेवाखंडे)

कलियुग में स्मरण से जन्म भर के पाप, दर्शन से तीन जन्म के और स्नान करने से हजार जन्मों के पापों को नर्मदा नष्ट करती है। स्कन्द पुराण मे कहा है कि कलियुग के पाँच हजार वर्ष व्यतीत होने पर गंगा जी का समस्त माहात्म्य नर्मदा में सम्मिलित हो जायगा।(गंगा की धारा को नर्मदा में जोड़ने की बात तो होने ही लगी।) भगवान् सदाशिव की इला नाम की कला यह नर्मदा है। जो समस्त पापों को निवारण करने वाली तथा संसार सागर से तारने वाली भी कही है। स्वयं देवाधि देव महादेव नित्य नर्मदा का सेवन करते है। अत एव ब्रह्म-हत्या जैसे पातकों को हरने वाली अति पवित्र शिव सरिता है। शंकर ने में कला इति' मेरी कला यह कहा अतः नर्मदा का नाम मेकला पड़ा। दैत्य दानवों को ध्वस्त करनेवाली जरा मृत्यु से रहित नर्मदा अमृत स्वरूपा अत्यन्त श्रेष्ठ देव नदी है। शिव ने कहा सरित्ताएँ सभी ओर है, तीर्थ भी हजारों, परन्तु मुनीश्वरो! रेवा की बराबरी कोई नहीं करते ऐसा मेरा मत है। यह तो सुनिश्चित है जीव मात्र के कल्याण के लिए धरापर शिवजी ने अपने दिव्य देह से कोई अलौकिक शक्ति ही सरिता रूप में उतारी।

पुराणों में लोक हित का उल्लेख

किसी समय भवानी सहित शंकर ने शान्ति स्वरूप रहकर भी विपुल तप किया। सर्वभूतमय चराचर जगत को वश में रखने वाले भूतभावन ऋक्ष शैल पर जाकर स्थित हो गये। उस समय तप करते हुए महादेवके दिव्य देहसे पसीना बहा। यह अत्यधिक मात्रा में प्रगट होकर हौल शिखर के ऊपर बहने लगा। उसी से अति पुण्यशालिनी नर्मदा प्रगटी। उस समय सतयुग में उस कन्या ने महादेवजी के समक्ष दीर्घकाल तक तपस्या करके उन्हें प्रसन्न किया। प्रसन्न हुए शिवजी की आज्ञा पाकर देवीने वहाँ अनेक वरदान माँगे। वही वरदान नर्मदाजीकी सबसे बड़ी महिमा प्रगट करने वाले बृहत्माहात्म्य स्वरूप हो गये !

नर्मदा ने कहा- प्रलय काल में चराचर जगत् के क्षीण हो जाने पर भी मैं आपकी कृपा से अक्षय बनी रहूँ। सरिता सागर और समस्त शैल वनादि के नष्ट हो जाने पर भी मैं अक्षीण अर्थात् नित्य स्थिर रहें -

प्रलये समनुप्राप्ते नष्ट स्थावर-जंगमे ।
प्रसादात्तव देवेश ! अक्षयाऽहं भवे प्रभो ।।
सरित्सु सागरेष्वेव पर्वतेषु क्षयिष्वपि ।
तव प्रसादाद् देवेश पुण्याऽनया भवे प्रभो ॥४.२०-२१ ॥

पातकी क्या महापातकी जन भी श्रद्धा भक्ति से मुझमें स्नान करके सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाँए यह हमें बरदान दें ॥२२॥ ब्रह्म हत्यादिक पाप भी यदि किसी का कुछ हो वह एक मास स्नान मात्र से विनष्ट हो जाये। समस्त वेदपाठ से जो फल और समस्त यज्ञों के करनेसे जो फल जनोंको प्राप्त होता है वह सब स्नान मात्रसे जीव को मिले यही मेरी मनसा है। सभी दान और उपवास करके तथा समस्त तीर्थों में तथा कीट पतंग क्या वनस्पति वर्ग अर्थात् उद्भिज्ज जीव भी सद्गति प्राप्त करेंगे अर्थात् सुलोक के अधिकारी होंगे। एवं जो धर्मपरायण द्विजवर्ग मृत्युपर्यन्त दक्षिण तट का आश्रय लेकर रहेंगे वे सब पितृलोक के अधिकारी होंगे। और हम भी तुम्हारे चाहने से तथा अन्य कारणों से भी सदैव उमा के सहित तुम्हारे तटपर निवास करेंगे यह सुनिश्चित है। इसी प्रकार हे महादेवि ! ब्रह्मा इन्द्र चन्द्र वरुण साध्य गणादि देवताओं के सहित विष्णु भी मेरी आज्ञा से तुम्हारे उत्तरतट पर निवास करेंगे। तथा पितृगणों के सहित अन्य देवता भी हे सुर-सुन्दरि ! मेरे साथ दक्षिण तट पर जा

बसेंगे। हे महाभागे ! अब जाओ मृत्युलोक के सभी मानवों को पापों से प्रमुक्त करो। इस प्रकार नर्मदाकी महिमा इन सब वरदानोंसे अत्यधिक बड़ी । इस तरह संस्कृत और प्राकृत भाषा में लिखे गए भारत के प्राचीन साहित्य में नर्मदा को यथोचित स्थान मिला है। आर्यों की निवास स्थली सप्त सैधव से दूर दक्षिण में विध्यांचल एवं सतपुडा पर्वत श्रृंखलाओं के मध्य में प्रवाहित होने के बावजूद नर्मदा की गश पताका लहराती रही। जैसे जैसे आर्यों का प्रभाव दक्षिण की तरफ बढ़ा नर्मदा की लोकप्रियता भी बढ़ती गई। विशाल विध्य पर्वत के ऊचे शिखरो पर निर्मित प्राचीन कन्दराएँ और स्वच्छ जलयुक्त नर्मदा का तट, कवियों और तपस्वियों को भाने लगा और समूचा नर्मदा अंचल एक तीर्थ क्षेत्र में परिवर्तित हो गया। कभी ना सूखने वाली अक्षया नर्मदा और सपन वन में उपलब्ध औषधी वनस्पतियो नेपा जीवन सुलभ वातावरण बना दिया। अमरकण्टक से लेकर नर्मदा घाटी के प्रमुख स्थलों में कवियों के आश्रम सहज ही नर्मदा के स्वणीयम इतिहास की पुष्टि करते है। यही वजह है कि नर्मदा को साहित्य में स्थान मिला अपितु कई प्रमुख ग्रंथों की रचना भी नर्मदा तट पर की गई। धार्मिक राथों से शुरू हुआ नर्मदा का यशोगान विद्वानों से लेकर सामान्य जनो को आकर्षित करता रहा और अनवरत रूप से नर्मदा पर साहित्य सृजन होता रहा।

सन्दर्भ :-

Agni Purana (M. N. Dutt, Trans.). (1998). Delhi: Parimal Publications.

Madhya Pradesh through the Ages. (2008). India: Sarup & Sons.

Markandeya Purana (F. E. Pargiter, Trans.). (n.d.). Delhi: Motilal Banarsidass.

Matsya Purana (J. L. Shastri, Ed. & Trans.). (n.d.). Delhi: Motilal Banarsidass.

Padma Purana (N. Aiyangar, Ed.). (n.d.). Delhi: Motilal Banarsidass.

Reva Mahatmya (Part of *Skanda Purana*). (n.d.). Varanasi: Chowkhamba Sanskrit Series.

Shiva Purana (J. L. Shastri, Ed. & Trans.). (2014). Delhi: Motilal Banarsidass.

Skanda Purana (J. L. Shastri, Ed. & G. V. Tagare, Trans.). (1992). Delhi: Motilal Banarsidass.

Valmiki. (n.d.). *Ramayana* (Gita Press ed.). Gorakhpur: Gita Press.

Vayu Purana (G. V. Tagare, Trans.). (1987). Delhi: Motilal Banarsidass.

Vyasa. (K. M. Ganguli, Trans.). (n.d.). *The Mahabharata*. Calcutta: P. C. Roy.

खण्डेलवाल, एस. एन. (2024). *स्कंदमहापुराणम् (संस्कृत से अनुवाद)*. वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस।

शोध दल

डॉ रचना चतुर्वेदी डॉ संजय दुबे डॉ अलकेश चतुर्वेदी डॉ इन्दिरा वर्मन डॉ. अनुराग पाण्डेय

हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श के स्वर

अंजली*
anjalibhasker164@gmail.com

प्राचीन काल से ही हिंदी साहित्य पर पुरुष का वर्चस्व रहा हैं। बहुत कम महिलाएं ही लेखन के क्षेत्र में उतरती थीं। परंतु वे छद्म नाम से रचनाएँ करती थी ताकि कोई फसाद ना खड़ा हो सके। धीरे-धीरे समय में बदलाव आया और स्त्री रचनाकारों की संख्या बढ़ी। हिंदी की प्रथम महिला कहानीकार राजेंद्र बाला घोष (बंग महिला) को माना जाता है। सुभद्रा कुमारी चौहान, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, कमला चौधरी, होमवती, चंद्रकिरण सौनरेक्सा, शिवानी, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, नसीरा शर्मा, मृणाल पांडे, अलका सरावगी, मधु कांकरिया, जया जादवानी, गीतांजलि श्री, मेहरुन्निशा परवेज़, उषा प्रियवंदा, सूर्यबाला, वंदना राग, सारा राय, रजनी गुप्त, सुधा अरोड़ा, ज्योत्सना मिलन, क्षमा शर्मा, महुआ माझी, मैत्रेयी पुष्पा, चंद्रकांता, ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, उषा किरण खान, नमिता सिंह, मालती जोशी, राजी सेठ, जयंती, अल्पना मिश्र, लता शर्मा, महादेवी वर्मा, मन्नू भंडारी आदि ने अपनी रचनाओं में ऐसी स्त्री का चित्रण किया है जो आत्मसजग है, जो स्वाधीनता, सशक्तिकरण और समानता की बात करती है, जो अपने संघर्ष की बात करती है और अपनी लड़ाई खुद लड़ती है।

अब स्त्री रचनाकारों ने अपने मन की बातों को शब्दों से व्यक्त करना शुरू कर दिया है। अब स्त्रियां धार्मिक कट्टरता, हिंसा और पुरुष की वर्चस्ववादी मानसिकता को चुनौती देती नज़र आने लगीं है। हिंदी साहित्य में महादेवी वर्मा को 'स्त्री विमर्श' का पुरोधा माना जाता है। इन्होंने अपने कहानी-संग्रह 'शृंखला की कड़ियां' में भारत की भारतीय स्त्रियों की विषम परिस्थितियों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। एक तरह से उन्होंने इस कहानी-संग्रह में अपने उग्र विचार व्यक्त किए हैं। इन्होंने नारी को केंद्र में रखकर उनकी समस्याओं पर दृष्टिपात किया है। वह चाहती है कि विद्रोह करने वाली स्त्रियां अपने स्त्रित्व के मूलभूत आधारों को सुरक्षित रखें। उनका मानना है कि पुरुषों का सहयोग पाकर ही स्त्री आगे बढ़ सकती है, प्रतिद्वंदता से नहीं। महादेवी वर्मा को समाज के वे नियम-कानून बिल्कुल भी पसंद नहीं है जो नारी को समाज में उचित स्थान प्रदान नहीं करते। महादेवी वर्मा जी के शब्दों में **"जिस प्रकार भावी पति परिवार के व्यक्ति उसे चलाकर, हंसाकर, लिखा-पढ़ाकर देखते हैं तथा लौटकर उसकी लंबाई, चौड़ाई, मोटापन, दुबलापन या नखशिख के विषय में अपनी अवधारणाएं बनाते हैं। उसे सुनकर दास प्रथा के सामने बिकने वाली दासियों की याद आए बिना नहीं रहती।"**[1] नारी की हीनावस्था होने का मूल कारण उसका दूसरों पर निर्भर होना है। अगर भारतीय नारी को आगे बढ़ना है तो उसे अपनी संतुलित दृष्टि को विकसित करके अपने अभिशप्त जीवन को सम्मानित

---

* **शोधार्थी, हिंदी विभाग, पंजाब केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बठिंडा**

और गौरवमय बनाना होगा। इन्होंने कश्मीर में नारी की स्थिति से द्रवित होकर कहा भी है **"प्रकृति ने उन्हें कितना भव्य रूप दिया, परंतु निष्ठुर भाग्य ने दियासिलाई के डिब्बे जैसे छोटे मालिन अभव्य घरों में प्रतिष्ठित कर और एक मलिन वस्त्र मात्र देकर इनके सौंदर्य का उपहास कर डाला और हृदयहीन विदेशियों ने अपने सौंदर्य की चकाचौंध से इनके अमूल्य जीवन का मोल लेकर मूल्यहीन बना दिया।"**[2] यही वजह है कि इन्हें स्त्री विमर्श की प्रमुख लेखिका कहा जाता है। इसी तरह यौनिक विषय एक ऐसा विषय रहा है जिस पर सिर्फ़ पुरुषों का वर्चस्व रहता था परंतु जब स्त्री रचनाकारों ने इसे तोड़ा तो इसे समाज ने सहज नहीं लिया। ऐसी स्त्रियों को पुरुषवादी समाज ने दंडस्वरूप बहिष्कृत यानि देश-निकाला भी दिया है। तसलीमा नसरीन जोकि बांग्लादेश की मूल निवासी है, वह इसका जीता-जागता उदाहरण हैं। तस्लीमा नसरीन मुस्लिम समुदाय से संबंध रखती है जिस वजह से उन्हें मुस्लिम कंट्टरपंथियों के विरोधों का सामना करना पड़ा। यानी मुस्लिम कट्टरपंथियों का सीधा-सा मतलब है कि सहती हुई महिलाएं बोलती ही क्यों है? यानी अगर देखा जाए तो मुस्लिम समाज में लेखिकाओं की स्थिति अच्छी नहीं रही बल्कि उनकी स्थिति आगे चलकर और भी बदतर हो गई।

तहमीना दुर्रानी एक लेखिका है जिसका जन्म एक प्रभावशाली और कुलीन परिवार में हुआ। पाकिस्तान के सबसे प्रतिष्ठित राजनेता के साथ उसकी दूसरी शादी हुई जो उसके लिए बुरा साबित हुआ। ईर्ष्यालु और संकीर्ण प्रवृत्ति के कारण उसके पति ने उसे दुनिया से काट कर रखा। उसे घर की चारदीवारी में बंद करके रखा। तहमीना इस यातना को चौदह साल तक सहती रही। आखिर में जब उन्होंने इस स्थिति से विद्रोह करने का फैसला लिया तो उन्हें इसकी बहुत बड़ी कीमत भी चुकानी पड़ी। उसे अपनी पति की धन दौलत से हाथ धोना पड़ा और यहां तक की उसे अपने बच्चों पर भी अधिकार नहीं दिया गया। पूरे मुस्लिम समाज ने उसका बहिष्कार कर दिया। अंततः वह अपने लेखन की ओर अग्रसर होती है और 'मेरे आका' के रूप में एक ऐसी पुस्तक की रचना करती है जो पाकिस्तान की सियासत को हिलाकर रख देती है। इन्होंने 'ए मिरर टू द ब्लाइंड' नाम से एक उपन्यास भी लिखा जिसमें इस्लाम के पीरों और फकीरों का पर्दाफाश किया गया। स्त्री विमर्श का एक सही अर्थ ये भी है कि स्त्री को उपभोग की वस्तु नहीं समझनी चाहिए। स्त्री विमर्श के आने से पहले साहित्य में स्त्री के रूप सौंदर्य का वर्णन किया जाता था। तब स्त्री एक भोग्या वस्तु के रूप में प्रस्तुत की जाती थी परंतु आज साहित्य में ऐसी स्त्री का चित्रण किया जा रहा है जो मुक्त है और समाज द्वारा निर्धारित मर्यादाओं को तोड़ने में सक्षम है और अपनी अस्मिता की समझ को रखती है तथा अपनी एक अलग से पहचान बनाती है। प्रभा खेतान के शब्दों में **"स्त्री ना गुलाम रहना चाहती है, न हीं पुरुष को गुलाम बनाना चाहती है। वह चाहती है मानवीय अधिकार।"**[3] नासिरा शर्मा का 'ठीकरो की मंगनी' उपन्यास एक शिक्षित मुस्लिम लड़की की कहानी है जो उसके विद्रोह को दर्शाता है। वह मुस्लिम लड़की अपने मंगेतर के परिवार की आकांक्षाओं की परवाह न करते हुए गांव में शिक्षिका बनकर स्वावलंबी बनती है और विवाह करने से भी इंकार कर देती है। प्रेमचंद हिंदी कथा साहित्य के महान सम्राट माने जाते हैं। स्त्रियों को लेकर उनके विचार काफी प्रगतिशील रहे थे। उन्होंने अपनी 'सेवासदन' उपन्यास में वेश्याओं के सुधार की समस्या को उठाया था

और वहीं अपने 'निर्मला' उपन्यास में प्रेमचंद ने दहेज के अभाव में बर्बाद होती लड़कियों के जीवन का सजीव चित्रण किया था। लड़की के माता-पिता दहेज के अभाव के कारण उसका विवाह का एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति के साथ कर देते हैं। इस तरह उन्होंने समाज में व्याप्त अनमेल विवाह जैसी कुरीतियों से समाज को अवगत करवाया था। मोहन राकेश का नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' की नायिका मल्लिका अत्यंत आत्मविश्वासी और आस्तिक है। विवाह करना उसका खुद का निर्णय है। इसके बारे में वह आलोचना का अधिकार किसी को भी नहीं देना चाहती। वह इस नाटक में कालिदास को अपने आचरण द्वारा बौना सिद्ध कर देती है। यशपाल ने अपने उपन्यास 'दिव्या' में नारी जीवन की सार्थकता का विश्लेषण किया है और उसी तरह 'झूठा सच' उपन्यास की कनक प्रगतिशील विचारों की महिला है। दीप्ति खंडेलवाल के उपन्यासों में भी नारी चेतना का विश्लेषण मिलता है। आज के बदलते परिवेश में भी पुरुष का अहं किस तरह नारी पर एकाधिकार चाहता है, यह उनके उपन्यासों में नजर आता है। वह स्वयं तो स्वच्छंद आचरण करता है किंतु स्त्री को उपभोग की वस्तु मानकर उसको सहेज कर रखना चाहता है।

नारी आज भी असुरक्षित और अपमानित है इसलिए दीप्ति खंडेलवाल ने विवाह जैसी परंपरा पर विश्वास करना छोड़ दिया। मेहरुन्निसा परवेज की कहानी का विषय मध्यवर्गीय नारी जीवन की त्रासदी है। उनका मानना है कि अनादिकाल से ही नारी का शोषण होता आया है और आज भी उनकी स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है। नारी के अधिकारों को लेकर तसलीमा नसरीन अपनी पुस्तक 'नष्ट लड़की: नष्ट गद्द' की भूमिका में लिखती है: **"इन सभी प्रथाओं, रीति रिवाजों का खंडन करना चाहिए जिनके अस्तित्व का कोई तार्किक कारण नहीं होता है। जैसे है तो एक संस्कार कि रसोई का काम स्त्रियों का है। हालांकि बाहर पुरुष बावर्ची, दर्जी और क्लिनिक अधिक पाए जाते हैं। घर में कुक, टेलर, क्लीनर के रूप में स्त्री ही बिना वेतन के परिश्रम करती है। परंपरा के चलते समाज में जहां कहीं छोटी बड़ी विषमता या अन्याय व्याप्त है। उसका विरोध करते जाना अनिवार्य है और इस विरोध का दायित्व सबका है, गारमेंट बनाने वाले श्रमिक से लेकर प्रधानमंत्री तक का।"**[4] आगे तसलीमा नसरीन कहती है कि **"चीन में लड़कियों के पैर में लोहे के जूते पहना कर रखा जाता था, फलस्वरुप चीनी लड़कियों के पांव छोटे हो गए। इस प्रकार लंबे समय से यहां की स्त्रियों के मन में जंग लग गया है। और जंग लगे मन में नयी भावना तक नहीं आती, विरोध तो बहुत दूर की बात है। काफी हद तक पिंजरे के पंछी की तरह, जो पिंजरे में बंद रहते रहते उड़ना भूल जाता है, इस देश की स्त्रियां भी अपने चारों तरफ के पिंजरे को तोड़कर बाहर निकल आना भूल चुकी है। अनाभ्यास के कारण वे विरोध की भाषा भूल गई है। हम जैसे को जिनकी आवाज अभी तक बंद नहीं हुई है, चाहिए कि चिल्लाएं, ताकि सोई हुई स्त्रियों के कानों तक वह आवाज पहुंच सके।"**[5] इसी की परंपरा में एक लेखिका रशीद जहां का नाम भी आता है। जब सन् 1936 में प्रेमचंद की अध्यक्षता में प्रगतिशील लेखक संघ की पहली राष्ट्रीय कांफ्रेंस लखनऊ में हुई। तब उसमें रशीद जहां की अहम भूमिका थी। सन् 1943 में मुंबई में होने वाली भारतीय जननाट्य संघ की पहली कॉन्फ्रेंस में भी रशीद जहां ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। रशीद जहां और

सज्जाद जहीर का शताब्दी वर्ष एक ही साथ सन् 2005 में आरंभ हुआ। पाकिस्तान के अदीबो ने देश की विभाजन की रेखा को भुलाकर सज्जाद जहीर को सम्मानपूर्वक याद किया। यह सबसे दुखद बात थी कि वहीं पर रशीद जहां को नजरअंदाज किया जा रहा था। ऐसा तो होना ही था क्योंकि पुरुष वर्चस्ववादी समाज में औरत का उतना हक नहीं है जितना पुरुषों को प्राप्त है। सज्जाद जहीर को याद करने का सिलसिला सिर्फ हिंदुस्तान में ही नहीं चला बल्कि पाकिस्तान में भी चला रहा। उसके आगे रशीद जहां का कोई महत्व ही नहीं रह गया था। जब सन् 2005 में इलाहाबाद में हले प्रलेस जलेस जसम के संयुक्त प्रयास से सज्जाद जहीर पर एक राष्ट्रीय कार्यक्रम आयोजित किया गया तो उस कार्यक्रम में पाकिस्तान से 22 अदीबों ने भाग लिया था। मगर रशीद जहां सबके दिलों-दिमाग से निकल चुकी थी। सन् 1932 में आठ अदीबों के अफसानों और नाटकों का संग्रह 'अंगारे' के नाम से प्रकाशित हुआ और इस संग्रह में रशीद जहां का एक नाटक 'पर्दे के पीछे' तथा एक कहानी 'दिल्ली की सैर' भी प्रकाशित हुई। 'अंगारे' के आने के बाद जो सनसनी पैदा हुई, उसके केंद्र में रशीद जहां ही थी। ब्रिटिश शासन ने इस 'अंगार' नामक संकलन को फौरन जब्त कर लिया। रशीद जहां की दृष्टि में समाज में अपनी तरह जीने का जितना हक पुरुषों को प्राप्त हुआ, उतना स्त्री को भी मिलना चाहिए। जिस समय वह औरत के हक में लड़ाई लड़ रही थी, उस समय कोई नारीवादी आंदोलन भी खड़ा नहीं हो पाया था और ना ही कोई स्त्री विमर्श जैसी परिकल्पना अस्तित्व में आई थी। फिर भी विडंबना यह है कि आज स्त्री विमर्श वालों की भी निगाह इस अंगारे वाली खातून तक नहीं पहुंच पाई।

हिंदी साहित्य में मुस्लिम लेखिका नासिरा शर्मा का लेखन भी काफी विस्तृत रहा है। उनका साहित्य अनेक देशों की समस्याओं पर आधारित रहा है। इनकी हिंदी, फारसी, अंग्रेजी आदि भाषाओं पर गहरी पकड़ है। इनका रचना संसार बहुत ही व्यापक है। उनकी रचनाएं न सिर्फ भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व करती हैं बल्कि पूरी दुनिया के विविध पक्षों को अभिव्यक्त करने में भी सफलता को प्राप्त हुई है। इनकी कहानियों का भौगोलिक विस्तार पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ईरान से लेकर पूरे भारत तक फैला हुआ है। हिंदी साहित्य में इनका वर्चस्व बना हुआ है। इनकी प्रमुख रचनाएं हैं- वहिश्त ए गहरा, ठीकरे की मंगनी, सात नदियां एक समंदर, जिंदा मुहावरे, सामी कागज, पत्थर गली, इंसानी नस्ल, खुदा की वापसी, दूसरा ताजमहल, बुतखाना आदि। इसके साथ-साथ ही नासिरा शर्मा ने विभिन्न कई मुद्दों पर अपनी लेखनी चलाई। कुछ भी लिखने के लिए उनके पास बहुत सारा अनुभव है। यही उनके साहित्य की विशेषताएं है। नासिरा शर्मा अपने एक इंटरव्यू में कहती है कि **"दरअसल हाई स्कूल के बाद मेरा जीवन बहुत तकलीफ में गुजरा। इससे मैं कुछ ज्यादा ही ओवर सेंसिटिव और टची हो गई हूं। आप कल्पना कर सकते हैं कि जब एक खुशहाल घर टूटता है तो कैसी स्थितियां बन सकती है।"**[6] उनके इस कथन से यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि उन्होंने अपने ढंग से जीवन जीने के लिए कितनी यातनाएं और पीड़ाएं सही होगी। मुस्लिम लेखिकाओं की कड़ी में एक नाम मेहरुन्निसा परवेज का भी काफी चर्चित है। यह यथार्थवादी लेखिका मानी जाती है। उनके लेखन में नारी के मन के सभी पहलुओं का चित्रण मिलता है। उनकी कहानियों की विशेषता आजाद भारत की नारियों की बदल रही मनोदशा का चित्रण करना है। इनका जीवन काफी विषम परिस्थिति में बीता। बचपन में मां-बाप

के बीच बढ़ते तनाव और बच्चों के प्रति अलगाव के कारण यह अत्यंत दुखी और पीड़ित रही। इनकी शादी रऊफ परवेज नाम के शायर से हुई। इनकी पहली कहानी 'पांचवी कब्र' पत्रिका 'नई कहानियां' में अक्तूबर 1963 में प्रकाशित हुई। इनके प्रमुख कहानी संग्रह है- गलत पुरुष, आकाशदीप, अंतिम चढ़ाई, धूप के एहसास, आकाशनील, आदम और हव्वा, सोने का बेसर, अयोध्या से वापसी, ढहता कुतुब मीनार, रिश्ते, लाल गुलाब, मेरे बस्तर की कहानियां आदि है। इसी श्रृंखला में आशा आपराद मुस्लिम लेखिका का नाम भी आता है। इन्हें अपनी ही जमीन से बेपनाह संघर्ष करना पड़ा। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि कोई भी स्त्री अपने गर्भस्थ बच्चों को बेटे के रूप में ही देखना चाहती है। आशा आपराद की यही गलती थी कि उसने बेटी के रूप में जन्म लिया। इसके लिए उन्हें अपनी माता से ही काफी यातनाएं मिली। इस प्रकार देखा जाए तो साहित्य में पदार्पण करने वाली मुस्लिम महिलाओं को अधिक मानसिक पीड़ा का शिकार होना पड़ता है। यही नहीं उन्हें साहित्य में अपनी पहचान बनाने के लिए और अपनी बात को पहुंचाने के लिए भी कड़ा संघर्ष करना पड़ता है। सारा शगुफ्ता एक पाकिस्तानी कवयित्री है। उनकी स्थिति भी कुछ ऐसी ही रही। इन्होंने एक महिला होने के नाते अथवा एक कवयित्री होने के नाते जो जो यातनाएं झेली, उन्हें शब्दों में अभिव्यक्त करना मुश्किल है। उनकी वेदना इन शब्दों में नजर आती है **"रात सर्द थी। मेरे बेटे को लपेटने के लिए अस्पताल में एक तौलियातक नहीं था। सिस्टर ने पांच मिनट के लिए उसे मेरे बगल में लिटाया। उसने अपनी उजली आंखों से मुझे देखा, फिर ना जाने क्या हुआ...... उसने क्या सोचा.... उसने आंखें बंद की और हमेशा के लिए सो गया।"**[7] इस कथन से हम एक स्त्री की वेदना को स्पष्ट देख सकते हैं।

इस संदर्भ में लेखिका हुस्न तबस्सुम निहां का भी यही कहना है कि साहित्य में शामिल होने के लिए उन्हें दोहरी जद्दोजहद करनी पड़ी। पहले घर से फिर अपनी जमीन से और फिर साहित्यिक पटल पर बैठे मठाधीशों की अजब गजब वाली दुनिया से, जहां पर लगातार संघर्षशील महिला साहित्यकार को धीरे-धीरे खारिज कर दिया जाता है। जब लिखने वाली महिलाएं मुस्लिम पृष्ठभूमि से हो तो यह संघर्ष दुगुना हो जाता है। पितृसत्तात्मक अवधारणा साहित्य पर भी हावी है। वह कहती है कि **"मुस्लिम समाज में आज भी विभिन्न मुद्दे और कई तरह की जटिलताएं हैं जिन्हें मुख्य धारा में लाने की आवश्यकता है। मुस्लिम महिलाओं की स्थिति आज भी ठीक नहीं है। तलाक, पर्दा, बहुपत्नी प्रथा आज भी जड़ जमाए हुए हैं। इन पर आवाज उठाने के लिए महिलाएं सामने नहीं आती। लिखना तो दूर की बात है। बस उंगली पर गिरने भर की मुस्लिम लेखिकाएं हैं। दूसरी तरफ मुस्लिम महिलाएं पारलौकिक शक्तियों पर इस कदर आस्था बनाए हुए हैं कि वह एक सीमा के आगे सोच ही नहीं पातीं। पति को मजाजी खुदा समझने की धारणा आज भी जस की तस है। मात्र यही धारणा मुस्लिम महिलाओं को उसके अधिकारों से वंचित कर देती है। एक सर्वेक्षण से यह बात सामने आई है कि कोर्ट में चलने वाले मुकदमों में से पचास प्रतिशत मुकदमे सिर्फ तलाक के ही होते हैं। वह भी मुस्लिम महिलाओं के। यह सोचने की चीज है कि ऐसी स्थितियां क्यों पैदा हो रही है।"**[8] हम देखते हैं कि हिंदी साहित्य में लेखिकाओं की कहानियों में विद्रोह के स्वर में असंतोष के भाव छुपे हुए हैं। असंतोष की भावना से प्रेरित होकर ही उन्होंने

अपने इसी असंतोष को उजागर भी किया है। स्त्री कभी समझौता करती है तो कभी संघर्ष। अपने व्यक्तित्व की गरिमा को बनाए रखने के लिए किए गए संघर्ष में उनकी पीड़ा और उनकी समस्याओं को सार्थक ढंग से अभिव्यक्त करने में लेखिकाएं सफल रही है। मन्नू भंडारी मानती है कि नारी को समस्या के रूप में देखना बिल्कुल ही गलत है। कोलकाता में आयोजित संगोष्ठी में मन्नू भंडारी ने अपने वक्तव्य में कहा था कि **"अब तक की कहानी और उपन्यास की नायिका-नारियां अधिकतर किसी न किसी पुरुष के व्यक्तित्व पर केंद्रित होकर उसकी स्वीकृति या अस्वीकृति के प्रति क्रियान्वित होकर या कहा जाए कि पुरुष को विश्वफुल थिंकिंग के अनुरूप श्रद्धामयी, करुणामयी, आज्ञापालिनी, त्याग और तपस्या की मूर्ति गढ़ी जाती रही है.... आज के कथाकार ने इस मनगढ़ंत मूर्ति को खंडित कर उसे उसके वास्तविक यथार्थ में स्थापित किया है।"**[9] एक अन्य संदर्भ में मन्नू भंडारी लिखती है कि "**आज नारी अपने को हर स्थिति में मिसफिट महसूस करती है क्योंकि उसका विकास समाज के स्वस्थ संदर्भ में न होकर अभी तक समस्या के रूप में ही हुआ है। किसी को हमेशा समस्या के ही रूप में देखते रहना। यह भी नॉर्मल नहीं रहने देता क्योंकि यह देखना डॉक्टर का देखना है, जहां व्यक्ति केवल विभिन्न बीमारियों को अभिव्यक्त करने का माध्यम भर होता है। मैं समझती हूं कि नारी अलग खड़ी हुई कोई ऐसी थ्योरम या प्रॉब्लम नहीं है, जिसे चार आदमी बैठकर हल कर लेने का संतोष पा ले। यदि समाज के प्रति उसके कर्तव्य और अपेक्षाएं पुरुष के ही समान है, तो उसकी कोई समस्या अकेली उसकी अपनी समस्या नहीं है, वरन समग्र जीवन की समस्या है। एक घर में रहने वाले दो प्राणियों में से समस्या केवल एक प्राणी ही नहीं होता बल्कि दोनों एक दूसरे के लिए समान रूप से समस्या और समान हल होते हैं।"**[10]

ममता कालिया का कहानी-संग्रह 'प्रतिदिन' में संकलित कहानियां के विषय के बारे में कहा जा सकता है कि घर के चारदीवारी में कैद नारी की मुक्ति-आकांक्षा और उसका संघर्ष, ममता कालिया की अधिकांश कहानियों का केंद्र बिंदु है जिसके आसपास वह समूचे कथानक को बुनती है। ममता कालिया की कहानियां चाहे वह 'काली साड़ी' की कल्पना हो, चाहे 'वसंत सिर्फ एक तारीख' की प्राचार्या हो, चाहे 'एक जीनियस की प्रेमकथा' की कविता हो या चाहे 'छोटी लड़की की दुनिया' हो, चाहे 'मां' कहानी की मां हो, सभी जगह एक ऐसी नारी का परिचय करवाती है जो विभिन्न रूपों में शोषित होती है। उषा प्रियवंदा की कहानी 'प्रतिध्वनियां' और मन्नू भंडारी की 'घुटन' कहानी के स्त्री पात्र परंपरागत विवाह संबंधों को थोपा हुआ मानती है, जिसे वह अब ढोकर जीना नहीं चाहती। वह विवाह को निरर्थक मानकर विवाह संबंधों से मुक्ति पाने के लिए छटपटाती रहती है। शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'कर्मनाशा की हार' की नायिका फूलमती एक कुलदीप नाम के लड़के से प्रेम करती है। फूलमती विधवा होती है और वह कुलदीप के बच्चे की मां बन जाती है। कुलदीप के गांव छोड़कर जाने के बाद फूलमती को समाज द्वारा लगाए गए लांछनों का सामना करना पड़ता है। विधवा लड़की का मां बनना एक ग्रामीण वातावरण में अपराध माना जाता है। लोगों का अंधविश्वास है कि कर्मनाशा नदी की बाढ़ का कारण विधवा फूलमती का मां बनना है। अतः उसकी बलि चढ़ाकर और उसके

अबोध शिशु को नदी में बहाकर गांव का मुखिया प्रलय से गांव को मुक्त करवाना चाहता है। गांव वालों के अंधविश्वास में फंसी फूलमती आखिर में अपने जेठ भैरो पांडे द्वारा बचा ली जाती है। इस प्रकार कहानी की नायिका की रक्षा करवा कर लेखक ने भैरों पांडे की मानवीयता पर प्रकाश डाला है और साथ ही साथ स्त्री के साथ होने वाले दुर्व्यवहार को भी रेखांकित किया है। मृदुला गर्ग ने 'दुनिया का कायदा' कहानी में नैतिकता के दोहरेपन को उजागर करते हुए बताया है कि स्त्री के साथ नैतिकता का रूप किस तरह बदल जाता है। अगर पति-पत्नी में से पत्नी की मृत्यु हो जाए तो पति दूसरा विवाह करके उसे जरूरत का नाम दे देता है और वहीं पति की मृत्यु हो जाए तो विधवा विवाह सोचना भी पाप है और तो और उसे कुलक्षिणी की उपाधि भी दे दी जाती है। कात्यायनी की कविताएं स्त्री-देह के शोषण के षड्यंत्र की परंपरा को विविध आयामों में प्रस्तुत करती है। वह कहती है कि सुख और प्रेम के नाम पर उसे बंधनों से बांध दिया गया। सुरक्षा और संरक्षण के नाम पर स्त्री के शरीर को पिता और पति के पास गिरवी रख दिया गया। इनकी कविता 'रात की संतरी' की कुछ पंक्तियां-

"दिल्ली में जी.बी रोड पर
एक स्त्री ग्राहक पटा रही है।
मुंबई की एक रेस्टोरेंट में
नीली-गुलाबी रोशनी में थिरकती स्त्री ने,
अपना आखिरी कपड़ा उतार दिया है,
और
किसी घर में ऐसा करने से पहले
एक दूसरी स्त्री
लगन से रसोई घर में
काम समेट रही है।"[11]

कात्यायनी अपनी इन कविताओं के माध्यम से यह बताना चाहती है कि समाज में वेश्याओं का स्थान बहुत ही घृणास्पद है। उन्हें चुड़ैल, डायन, कुल-कलंकिनी आदि नामों से पुकारा जाता है। समाज की दृष्टि में वेश्य। उसे कहा जाता है जो बाजार में बैठकर पुरुषों को अपनी मोह माया में जकड़ने का प्रयास करती है। अनेक पुरुषों के साथ हम बिस्तर होती है और कोठों पर बैठकर नृत्य करती है और अपना मायाजाल फैलाकर युवकों को फसाती है। समाज में वेश्याओं को सत्कार्यों में आने की मनाही है क्योंकि उन्हें अमंगल समझा जाता है। विवाह, पूजा-पाठ आदि सत्कार्यों में उसका आगमन अपशकुन माना जाता है। समाज में उसे बहुत ही बुरी और घृणा की दृष्टि से देखा जाता है, साथ ही उसके साथ उचित व्यवहार भी नहीं किया जाता है। परंतु हम कभी भी उसके वेश्या बन जाने के कारण को जानने और समझने का प्रयास नहीं करते। विभिन्न पारिवारिक समस्याएं

और समाज की आर्थिक स्थिति की गंभीरता आदि कई कारणों से मजबूर होकर स्त्री वेश्या बनने का रास्ता अपनाती है। दूषित वातावरण वाला समाज भी स्त्री को वेश्या बनने के लिए मजबूर कर देता है। जब कोई पुरुष अपनी कामवासना की तृप्ति के लिए उसके साथ बलात्कार करता है तो वह समाज द्वारा बहिष्कृत कर दी जाती है तो उसे अंत में वेश्या बनने के अलावा और कोई भी रास्ता नजर नहीं आता है। पति द्वारा स्त्री का परित्याग करना भी उसे वेश्या बनने को विवश करता है।

नागार्जुन की अहल्या, रेणुका, शकुंतला, शूर्पणखा छोटी-छोटी कविताएं हैं। इन कविताओं में नागार्जुन ने वेश्यावृत्ति, बाजार, निर्धनता और स्त्री को लेकर पुरुषों की मानसिकता को खूब जाना-समझा है। इन कविताओं में उन्होंने स्त्री की चार भूमिकाएं- बहन, पत्नी, मां और प्रेयसी के बारे में लिखा है। शूर्पणखा में बहन की, अहल्या में पत्नी की, रेणुका में मां एवं पत्नी की और शकुंतला में प्रेयसी की। अलग-अलग परिस्थितियों में अपनी भूमिकाओं का निर्वाह करती ये सारी कविताओं में स्त्री की नियति एक ही है। इन कविताओं के माध्यम से नागार्जुन ने पुरुष के अधीन रहते हुए दासता का दंश झेलती हुई स्त्री का सजीव चित्रण किया है। इन चारों कविताओं में पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था के चंगुल में जकड़ी स्त्री की दयनीय स्थिति की पीड़ा का गहरा अहसास नजर आता है। उनकी 'बोली सुखमा' कविता में आम भारतीय गृहिणी की पीड़ा का अत्यंत मार्मिक चित्रण मिलता है। पत्नी, मां और बहू की जिम्मेदारियों का निर्वाह करती हुई एक विवाहित स्त्री का अपना कुछ अस्तित्व नहीं बचता। पति और बच्चों की परिचर्चा में ही उसकी सारी जिंदगी निकल जाती है और वह कहती है कि-

"इक्कीसवां वर्ष है
हो गए हैं इतने में ही चार-चार बच्चे
परेशान रहती हूं बाबा उन सबके पीछे
जिंदगी का स्वाद ही चला गया
भोग रही हूं नरक का भोग।"[12]

सुखमा का यह उक्त स्वर कोरा वाग्जाल नहीं है। यह कविता उसके जीवन की सच्चाई को दर्शाती है। इस पुरुष प्रधान समाज में हर पराधीन और शोषित स्त्री के अनुभव का प्रतिबिंब है ये कविता की पंक्तियां। इस कविता को गहराई से देखने पर हम स्त्री की वास्तविक स्थिति को समझ सकते हैं। दरअसल बहन, बेटी, बहू, पत्नी, मां ये सारी भूमिकाएं स्त्री के जीवन में इतनी प्रभावी होती है कि उसका स्व विकसित ही नहीं हो पाता। स्त्री के प्रति अपनी निर्द्वंद पक्षधरता के कारण ही नागार्जुन उनके निजी दुख की मार्मिक अभिव्यक्ति कर सके हैं। इसी श्रृंखला की कड़ी में हम नरेंद्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल अंचल, बच्चन, त्रिलोचन और रघुवीर सहाय आदि लेखकों का नाम भी ले सकते हैं। रघुवीर सहाय ने अपनी कविता 'पढ़िए गीता' में पढ़ी-लिखी नारी की विवशता का सजीव चित्रण किया है। विडंबना यह है कि योग्यता और प्रतिभा होने के बावजूद भी पढ़ी-लिखी नारी निष्फल रह जाती है। उनकी कविता की पंक्तियां इस बात को दर्शाती है:-

"पढ़िए गीता
बनिए सीता
फिर इन सब में लगा पलीता
किसी मूर्ख की हो परिणीता
नीचे घर-वार बसाइए
होंठ कटीली, आंखें गीली
लकड़ी सीली, तबीयत ढीली
घर की सबसे बड़ी पतीली
भर कर भात पसाइए।"[13]

इन पंक्तियों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि नारी के पढ़े-लिखे होने के बावजूद भी उन्हें सिर्फ घर का काम करने के योग्य ही समझा जाता है। मंजुल भगत की कहानी 'त्यागमयी' की नायिका कामना ने पति के लिए अपनी जिंदगी में बहुत सारे त्याग किये लेकिन पति से धोखा खाने के बाद वह अपने सारे त्याग को भुला नहीं पाती। उसका मन विद्रोही प्रवृत्ति का हो जाता है और वह अपने पति का कत्ल कर डालती है। कामना कानून की शक्ति पर भरोसा ना करके खुद न्याय करती और सजा देने के लिए पति से बदला लेती है। ऐसा करना उसके लिए अति आवश्यक हो गया था और वहीं कुसुम अंसल की 'सन्नाटे की खीझ' कहानी की नायिका नौकरी करने के बावजूद भी अपने आप को मजबूर महसूस करती है। नौकरी करने वाली औरतों को भी पुरुष सिर्फ वासना पूर्ति का साधन समझते हैं। पुरुष की इस मानसिकता से कहानी की नायिका भली-भांति परिचित है। वह जानती है अगर वह पुरुषों से मित्रता करेगी तो उसे अपना शरीर समर्पित करना पड़ेगा। इसलिए वह किसी भी पुरुष से अपना मित्रता का संबंध स्थापित नहीं करती। ऐसी स्थिति स्त्री-पुरुषों के बीच संबंधहीनता की स्थिति बन जाती है।

मृदुला गर्ग की कहानी 'तुक' की नायिका मीरा पति के उपभोगवादी दृष्टिकोण के चलते उसके प्रति अपने को बेमानी समझती है। वह कहती है कि मैं इस युग में मिसफिट हूं। मैं उसे ऐसे ही प्यार करती रहूंगी, फिर एक दिन में सौ-सौ बार मरती रहूंगी। पर उससे अलग होकर मैं जी नहीं सकूंगी। इस बाजारवादी परिवेश में 'तुक' कहानी की मीरा इसलिए स्वयं को मिसफिट समझती है कि वह प्यार को व्यवसाय ना मानकर उसे अपनी आत्मा से पूरी निष्ठा से प्रेम करती है। इस विघटनकारी वातावरण और परिस्थितियों के चलते नारी अपने संबंधों और रिश्तो के प्रति असहमति प्रकट करती नजर आ रही है। मेहरुन्निसा परवेज की कहानी 'सिर्फ एक आदमी' में सुमि अपने पिता के कठोर एवं सनकी व्यवहार से बहुत दुखी है। वह जानती है कि उसके पिताजी अपने जीते जी उसका विवाह अतुल से नहीं होने देंगे। इस बात को जानते हुए वह अपने प्रेमी अतुल से कहती है कि **"अतुल! क्या तुम बप्पा की मौत तक का इंतजार नहीं कर सकते, जिस दिन बप्पा मरेंगे, मैं तुम्हारे पास चली आऊंगी।"**[14] इस प्रकार नायिका के मन में अपने बाप के प्रति कोई मोह नहीं है क्योंकि उसके पिता ने उसके निजी जीवन को शापित किया हुआ है। शिवरानी देवी अपनी कहानी 'हत्या' के माध्यम

से बताती है कि पितृसत्ता ने पुरुष के दिमाग की कंडीशनिंग कुछ इस तरह की है कि वह प्रजनन के दौरान होने वाली अपनी पत्नियों की मृत्यु को नियति मानकर स्वीकार कर लेते है और अपने पत्नी के स्वास्थ्य को लेकर कोई बड़ी चिंता या निर्णय के बारे में सोच नहीं पाता। निर्णय लेने का काम सिर्फ परिवार के मुखिया के ऊपर छोड़ देता है चाहे वह स्त्री के स्वास्थ्य को महत्व दे या ना दे क्योंकि मुखिया के दिमाग को भी व्यवस्था के अनुकूल ही तैयार किया गया है। समाज ने भी अपना यह माइंडसेट तैयार किया हुआ है कि पहली स्त्री के मरते ही दूसरी स्त्री का मिल जाना कोई बड़ी बात नहीं है। हैरान करने वाली बात यह है कि स्त्री-पुरुष का यह संबंध कैसा है, जहां स्त्री की मृत्यु पति को प्रभावित ही नहीं करती और पति की मृत्यु स्त्री के लिए शापित बन जाती है। सुभद्रा कुमारी चौहान स्त्री के संदर्भ में कहती है कि स्त्रियों के सहयोग के बिना मानव साहित्य संपूर्ण नहीं हो सकता। एक पुरुष किसी पुरुष की हृदयानुभूति को सफलतापूर्वक प्रकट कर सकता है परंतु जब वह स्त्रियों की अनुभूति को प्रकट करने जाता है तो उसको विवश होकर कल्पना से ही काम लेना पड़ता है। नारी के सभी गुणों और रूपों को केंद्र में रखकर प्रसाद जी ने लिखा है कि "वह अमर है, अटल है।" आगे वह कहते हैं कि-

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत-नग पगतल में,
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुंदर समतल में।"[15]

नारी के संदर्भ में मनु भी कहते हैं कि- **"यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमंते तत्र देवता।"** कहने का आशय यह है कि जहां पर नारी का सम्मान किया जाता है, वहीं पर देवता भी निवास करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास भी स्त्री के लिए कहते हैं कि **"वह मोहिनी होने के साथ ही माता भी है, सुंदरी होने के साथ-साथ सेविका भी है और कामिनी होने के साथ-साथ वह मर्यादा मानिनी भी है।"**[16] अतः इस प्रकार कह सकते हैं कि नारी व्यवस्था को अपने विरुद्ध खड़ी शक्ति के रूप में पहचानने लगी है। व्यवस्था के विरुद्ध संदेह की दृष्टि से देखती है। चित्रा मुद्गल की कहानी 'बावजूद इसके' की नायिका प्रीति की तरह अधिकांश नारियां स्वीकार करती है कि यह लड़ाई खुद की है और उसका कोई अंत नहीं है। व्यवस्था के हाथों स्त्रियों को शोषण सदियों से होता आया है लेकिन आज परिस्थितियों बदल रही है। नारियां जागृत होती नजर आ रही है। लेखिकाएं कथाकार इसकी प्रतिनिधि बनकर व्यवस्था की कमियों के विरोध में खड़े होकर अपने दायित्व का निर्वाह कर रही है।

भारतीय समाज में नारी के शोषण का कारण धार्मिक कर्मकांड, आर्थिक रूप से नारी की पराधीनता, समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था और शिक्षा आदि है। नैंसी योदोरोव ने अपने शोध द्वारा यह सत्य प्रतिष्ठित किया है कि **"लिंगभेद मर्द समाज ने दिया है, शारीरिक भेद प्राकृतिक है। प्राकृतिक भेद बना रह सकता हैं लेकिन सामाजिक भेद ठीक होना ही चाहिए, यही स्त्री विमर्श का नया योगदान है।"**[17] इसी तरह स्त्री अस्तित्व और अस्मिता पर प्रश्न खड़े करते हुए स्त्री साहित्य का कारवां आगे बढ़ता रहेगा। हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि अधिकतर भारत का नारीवादी आंदोलन पुरुष को अपना शत्रु नहीं मानता। वह

उस स्त्रीवाद में विश्वास करता है जो पुरुष को अपना साथी मानता है। ये मांग करता है कि पुरुष भी स्त्री को साथी माने, दासी नहीं। इसलिए रमणिका गुप्ता अपनी कविता के माध्यम से कहती भी है **"मैं तुमसे मुक्त होना चाहती हूं, इसका अर्थ यह तो नहीं कि मैं तुम्हारे प्यार से मुक्त होना चाहती हूं, मैं तो खुद प्यार की हकदार होना चाहती हूं, खुद प्यार करना चाहती हूं।"**[18] यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि स्त्री सिर्फ उन्हीं परंपराओं और मूल्यों का विरोध करती है जो उसके हितों की उपेक्षा करते हैं।

इस प्रकार लेखिकाओं ने 'धर्म एवं आस्था' तथा 'परंपरा एवं मूल्यों' में समय के साथ-साथ परिवर्तन होना आवश्यक माना है। किसी भी संबंध को वे तब तक ही निभाना चाहती है, जब तक उसके व्यक्तित्व के निर्माण में बाधा उत्पन्न ना हो। समाज की जड़ व्यवस्था में परिवर्तन करने की आकांक्षा उनके मन में है। वह सामाजिक कुरीतियों का पुरजोर विरोध करती हैं। शोषण के प्रति आज नारी विद्रोह की अवस्था में आ चुकी है जो उसकी चेतना के विविध आयामों के सक्रिय होने से ही संभव हो सका है। हिंदी साहित्य में लेखिकाओं ने आधुनिक नारी के बदलते व्यक्तित्व को बड़े ही विद्रोही रूप में कहानियों में चित्रित किया है। लेखिकाओं ने अपनी कहानियों के माध्यम से संबंधों की नई तस्वीर प्रस्तुत की है और आधुनिक नारी ने उन सभी संबंधों का विरोध किया है जिनमें नारी का शोषण होता है। कहानियों के माध्यम से स्त्रियों की वैयक्तिकता को स्वीकृति मिली है। आज की आधुनिक नारी वर्तमान समय में जीना चाहती हैं परंतु नारी के प्रति हो रहे शोषण के माध्यम से नारी मन की अभिव्यक्ति प्रदान करने में हिंदी की लेखिकाएं काफी हद तक सफलता को प्राप्त हुई है।

निष्कर्ष-

स्त्री विमर्श भारतीय साहित्य में नया विषय नहीं है, बल्कि यह सदैव से समाज की ज्वलंत समस्याओं—जैसे कन्या भ्रूण-हत्या, दहेज प्रथा, बाल विवाह और वेश्यावृत्ति—का प्रतिरोध करता रहा है। जब तक ये सामाजिक बुराइयाँ रहेंगी, तब तक स्त्री विमर्श प्रासंगिक बना रहेगा। स्त्री को मानव समाज के विकास का अभिन्न अंग माना गया है और उसकी भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। समकालीन साहित्य में लेखिकाओं ने नारी की पीड़ा, संघर्ष, चेतना और अस्मिता को गहराई से उकेरा है। उन्होंने साहित्य के माध्यम से यह दिखाया है कि स्त्री अब मात्र सहनशील पात्र नहीं रही, बल्कि वह अपनी राह खुद तय करने वाली, आत्मनिर्णय से युक्त और पुरुषवादी मानदंडों को चुनौती देने वाली शक्तिशाली इकाई बन चुकी है। यद्यपि पुरुष लेखकों ने भी नारी विषयों पर लिखा, परंतु वह दृष्टिकोण अधिकतर देखने और समझने तक सीमित रहा; वहीं महिला लेखिकाओं का लेखन स्वयं का भोगा हुआ यथार्थ होता है, जिससे उनकी रचनाएँ अधिक सजीव और प्रभावशाली बनती हैं। उन्होंने विवाह, तलाक, यौन शोषण, स्त्री शिक्षा जैसे मुद्दों को केंद्र में रखकर नारी के जीवन की वास्तविकताओं को प्रस्तुत किया है। स्त्री विमर्श ने महिलाओं के जीवन में चेतना और बदलाव की क्रांति लाई है, हालांकि यह भी सत्य है कि ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएं अब भी परंपरागत अत्याचारों और पुरुषवादी सोच की शिकार हैं। यही स्त्री विमर्श की निरंतर आवश्यकता को दर्शाता है।

संदर्भ-

1. अल्का, डॉ. (2017). *नारी चेतना के आयाम*. इलाहाबाद. लोकभारती प्रकाशन. पृ. 52
2. वही, पृ. 53
3. गुप्ता, रमणिका. (2012). *स्त्री मुक्ति: संघर्ष और इतिहास*. सामाजिक प्रकाशन. नई दिल्ली. पृ. 70
4. अल्का, डॉ. (2017). *नारी चेतना के आयाम*. इलाहाबाद. लोकभारती प्रकाशन. पृ.73
5. वही, पृ. 73-74
6. आर्या, मंजू. (2021). *मुस्लिम महिलाओं के मुद्दे: हुस्न तबस्सुम निहां के संदर्भ में (लघु शोध प्रबंध)*. पृ. 16
7. वही, पृ. 18
8. वही, पृ.18-19
9. नीलम, डॉ. (2019). *स्त्री स्वर : अतीत और वर्तमान*. दिल्ली. अक्षर प्रकाशन. पृ.190
10. वही, पृ. 190
11. स्याल, शांति कुमार. (2013). *भारतीय नारी और पश्चिमीकरण*. दिल्ली. आर्य प्रकाशन. पृ. 140-141
12. कुमारी, पूनम. (2019) .*स्त्री विमर्श की सैद्धांतिकी*. नई दिल्ली. अनामिका प्रकाशन. पृ. 169
13. अल्का, डॉ. (2017). *नारी चेतना के आयाम*. इलाहाबाद. लोकभारती प्रकाशन. पृ. 156
14. वही, पृ. 86
15. कुमार, रविंद्र. (2023). *भारतीय समाज में आधुनिक नारी की स्थिति*. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ नोबेल रिसर्च एंड डेवलपमेंट. पृ. 3
16. वही, पृ. 3
17. नीलम, डॉ. (2019). *स्त्री स्वर : अतीत और वर्तमान*. दिल्ली. अक्षर प्रकाशन. पृ. 16
18. गुप्ता, रमणिका. (2012). *स्त्री मुक्ति : संघर्ष और इतिहास*. नई दिल्ली. सामाजिक प्रकाशन. पृ. 125

स्वामी विवेकानंद का शैक्षिक दर्शन और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. समरजीत यादव

samarjeet13nov@gmail.com

सार

इस शोध लेख में स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक दर्शन और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बीच समरूपता का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। विवेकानंद का शैक्षिक दर्शन आत्मनिर्भरता, चरित्र निर्माण, राष्ट्र सेवा, नैतिक मूल्यों तथा समग्र व्यक्तित्व विकास पर आधारित है। उनका मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य केवल सूचनाओं का संचयन नहीं, बल्कि आत्मा की अभिव्यक्ति और अंतर्निहित शक्ति का विकास होना चाहिए। इसी प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में ज्ञान-आधारित, मूल्यपरक, बहु-विषयी, लचीली और व्यावहारिक शिक्षा व्यवस्था को अपनाते हुए विद्यार्थियों को नैतिकता, रचनात्मकता, नवाचार और वैश्विक प्रतिस्पर्धा हेतु तैयार करने की परिकल्पना की गई है। इस शोध पत्र में विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है कि कैसे विवेकानंद का शैक्षिक दर्शन और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शिक्षा को अंतर्निहित शक्तियों की पहचान करने, चरित्र निर्माण, आत्मबल और राष्ट्र निर्माण का माध्यम मानते हैं। इसमें न केवल दो भिन्न समयकालों के शैक्षिक विचारों को जोड़ने का प्रयास किया गया है, बल्कि इसका भी विश्लेषण किया गया है कि विवेकानंद के कौन से विचार आज भी भारत की शिक्षा नीति को दिशा देने में प्रासंगिक हैं।

सूत्र शब्द: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, आत्मबोध, चरित्र निर्माण, मातृभाषा, नैतिक शिक्षा, राष्ट्र निर्माण

प्रस्तावना

भारत एक प्राचीन सांस्कृतिक और आध्यात्मिक परंपरा से समृद्ध राष्ट्र है जहाँ शिक्षा को केवल जानकारी के आदान-प्रदान का माध्यम नहीं बल्कि मानव के समग्र विकास, सामाजिक जागरूकता और राष्ट्र के निर्माण का एक महत्वपूर्ण आधार माना जाता है। यहाँ शिक्षा का उद्देश्य आत्मा की अभिव्यक्ति और जीवन के लक्ष्यों की पूर्ति रहा है। इस दिशा में आधुनिक युग में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले विचारकों में स्वामी विवेकानंद का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह शिक्षा को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखते थे जो मनुष्य के भीतर अंतर्निहित शक्तियों को विकसित करती है जिसमें बौद्धिक विकास के साथ-साथ चरित्र निर्माण, आत्मबल, नैतिकता और समाज सेवा का समावेश अनिवार्य है।

वर्तमान समय में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारत की शिक्षा व्यवस्था को वैश्विक प्रतिस्पर्धा, सांस्कृतिक पुनर्जागरण और समावेशी विकास की दिशा में रूपांतरित करने का प्रयास है। यह नीति न केवल ज्ञान और कौशल आधारित शिक्षा को बढ़ावा देती है, बल्कि भारतीय परंपरा, मातृभाषा, नैतिक शिक्षा और समान अवसरों को भी महत्व देती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक ऐसा दस्तावेज़ है जो भारतीय परंपराओं और आधुनिक आवश्यकताओं के बीच समन्वय का प्रयास करती है। यह नीति शिक्षा को केवल जानकारी

अर्जन का माध्यम न मानकर एक साधना के रूप में प्रस्तुत करती है जो आत्मबोध, नैतिक विकास और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को उत्पन्न करती है। यही विचार स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक दर्शन की मूल भावना है। इस शोध लेख में विवेकानंद के शैक्षिक दर्शन और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रमुख विचारों में समरूपता का विश्लेषण किया गया है।

स्वामी विवेकानंद का शैक्षिक दर्शन

विवेकानंद का शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण अत्यंत व्यापक, गहन और मानवतावादी था। वह शिक्षा को केवल औपचारिक ज्ञान या सूचना प्राप्त करने या देने का साधन नहीं मानते थे बल्कि उसे मनुष्य के भीतर अंतर्निहित शक्तियों की अभिव्यक्ति का माध्यम समझते थे। (विवेकानंद, 2003) उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के भीतर पहले से ही विद्यमान शक्तियों की अभिव्यक्ति है। उनका शैक्षिक चिंतन आत्मज्ञान, चारित्रिक निर्माण, सेवा भावना, नैतिक दृढ़ता और आत्मनिर्भरता पर आधारित है। वह मानते थे कि शिक्षा वह शक्ति है जो व्यक्ति को केवल जानकारी नहीं देती, बल्कि उसे कर्तव्यनिष्ठ, साहसी और नैतिक रूप से सजग नागरिक बनाती है। विवेकानंद ने विशेष रूप से उन वंचित और उपेक्षित वर्गों को शिक्षा से जोड़ने की आवश्यकता पर बल दिया जो ऐतिहासिक रूप से शिक्षा से वंचित रहे हैं। वह कहते हैं कि यदि गरीब बच्चा शिक्षा तक नहीं पहुँच सकता तो शिक्षा को स्वयं उसके द्वार तक पहुँचना चाहिए। उनके अनुसार शिक्षा केवल मानसिक या तकनीकी दक्षता नहीं बल्कि आंतरिक जागरूकता और सामाजिक उत्तरदायित्व को भी पोषित करे, यही उसकी सफलता की कसौटी है (सलूजा, 2003)। विवेकानंद ने पाश्चात्य शिक्षा व्यवस्था की आलोचना की, जो केवल बाह्य विकास और औपनिवेशिक सोच को बढ़ावा देती थी। इसके विपरीत उन्होंने भारतीय शिक्षा व्यवस्था को पुनर्जीवित करने की बात की, जिसमें भारतीय संस्कृति, दर्शन, नैतिक मूल्य, तथा मातृभाषा में शिक्षा को आवश्यक अंग माना गया। उनका मानना था कि व्यावहारिक शिक्षा, और मूल्य आधारित जीवन दृष्टि ही भारतीय समाज की वास्तविक शिक्षा व्यवस्था की आत्मा होनी चाहिए। वह शिक्षा को राष्ट्र निर्माण और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के लिए भी आवश्यक मानते थे। (विवेकानंद, 1985)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 21वीं सदी की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा व्यवस्था में सुधार का एक व्यापक दस्तावेज़ है। यह नीति शिक्षा को समग्र, बहुआयामी, और बहुस्तरीय बनाने की कोशिश करती है। यह केवल स्कूली शिक्षा नहीं बल्कि उच्च शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, शिक्षक प्रशिक्षण और अनुसंधान के क्षेत्रों को भी समाविष्ट करती है। इस नीति का उद्देश्य 21वीं सदी की आवश्यकताओं के अनुरूप एक समावेशी, लचीली, बहुविषयी, और मूल्य-आधारित शिक्षा व्यवस्था विकसित करना है। इस नीति में केवल शैक्षणिक सुधारों का खाका नहीं है बल्कि यह भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिप्रेक्ष्य में शिक्षा को एक नवचेतना प्रदान करती है। इसमें 5+3+3+4 की नई पाठ्यक्रम संरचना, पारंपरिक 10+2

व्यवस्था की जगह लाई गई है जो बाल विकास की मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं पर आधारित है। (भारत सरकार, 2020)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की एक विशेषता यह है कि यह शिक्षा का भारतीयकरण करते हुए वैश्विक उत्कृष्टता प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर है। इसमें भारतीय भाषाओं, भारतीय ज्ञान व्यवस्था, योग, आयुर्वेद, नैतिक शिक्षा और सांस्कृतिक विरासत को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाने की बात की गई है। साथ ही यह आधुनिक विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कोडिंग, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, और डिजिटल साक्षरता को भी शिक्षा में अनिवार्य रूप से सम्मिलित करती है, जिससे विद्यार्थियों को वैश्विक प्रतिस्पर्धा के योग्य बनाया जा सके। नीति में बहुभाषिकता को भी बढ़ावा दिया गया है, और प्रारंभिक कक्षाओं में मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा में शिक्षण की अनुशंसा की गई है, जो कि बच्चों की सीखने की क्षमता को प्रोत्साहित करती है। इसके साथ ही आकलन पद्धति में सुधार, पाठ्यक्रम का बोझ कम करना, रचनात्मक, आलोचनात्मक एवं नैतिक सोच को बढ़ावा देने पर बल दिया गया है।

विवेकानंद के शैक्षिक दर्शन और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में समरूपता

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और स्वामी विवेकानंद का शैक्षिक दर्शन परस्पर गहरे रूप से जुड़े हुए हैं क्योंकि दोनों का मूल उद्देश्य व्यक्ति के समग्र विकास को केंद्र में रखते हुए आत्मनिर्भर, नैतिक और सशक्त समाज की स्थापना करना है। विवेकानंद ने शिक्षा को मनुष्य निर्माण की प्रक्रिया माना और कहा कि हम ऐसी शिक्षा चाहते हैं जिससे चरित्र का निर्माण हो, मन की शक्ति बढ़े, बुद्धि का विकास हो और व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा हो सके।(विवेकानंद, 2003) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी इसी उद्देश्य को आत्मसात करती है जो केवल परीक्षा केन्द्रित व्यवस्था से हटकर जिज्ञासा, रचनात्मकता और नैतिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा को बढ़ावा देती है। नीति में 21वीं सदी की आवश्यकताओं के अनुरूप ज्ञान, कौशल और जीवन मूल्यों का संतुलन बनाते हुए स्थानीय से वैश्विक तक का दृष्टिकोण विकसित करने की बात की गई है। यह नीति विवेकानंद के उस विचार पर भी बल देती है जिसमें उन्होंने कहा था कि शिक्षा का उद्देश्य आत्मा की अभिव्यक्ति है न कि केवल सूचना का संचयन।

शिक्षा आत्मबोध और चरित्र निर्माण का माध्यम

विवेकानंद कहते हैं कि हम ऐसी शिक्षा चाहते हैं जिससे व्यक्ति के चरित्र का निर्माण हो, उसके मन की शक्ति बढ़े, बुद्धि का विकास हो और वह आत्मनिर्भर बन सके (विवेकानंद, 2003)। उनका यह कथन शिक्षा के उद्देश्य को केवल ज्ञानार्जन तक सीमित नहीं रखता, बल्कि उसे जीवन निर्माण, नैतिक उत्थान और स्वावलंबन की दिशा में प्रेरित करता है (सलूजा, 2003)। शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य केवल सूचना देना या परीक्षा पास कराना नहीं होना चाहिए बल्कि इसका उद्देश्य व्यक्ति में आंतरिक शक्ति को दृढ़ बनाने में होना चाहिए जिससे वह अपने जीवन में साहसपूर्वक खड़ा हो सके। शिक्षा को ऐसा होना चाहिए जो व्यक्ति को

नैतिकता, विवेक, सामाजिक उत्तरदायित्व और आत्मविश्वास से युक्त करे। वह इस बात पर ज़ोर देते हैं कि शिक्षा में केवल पुस्तकीय ज्ञान नहीं, बल्कि व्यक्तित्व निर्माण और जीवन जीने की कला सिखाई जानी चाहिए (विवेकानंद, 2009)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के पैरा 4.4 के अनुसार सभी स्तरों पर पाठ्यचर्या और शिक्षा विधि का समग्र केंद्रबिंदु शिक्षा व्यवस्था को रटने की पुरानी प्रथा से अलग वास्तविक समझ और ज्ञान की ओर ले जाना है। शिक्षा का उद्देश्य केवल संज्ञानत्मक समझ न होकर चरित्र निर्माण और इक्कीसवी शताब्दी के मुख्य कौशल से सुसज्जित करना है। वास्तव में ज्ञान एक छुपा हुआ ख़ज़ाना है और शिक्षा व्यक्ति की प्रतिभा के साथ इसे प्राप्त करने में मदद करती है। विवेकानंद का भी मानना था कि शिक्षा जीवन के लिए होनी चाहिए न कि केवल परीक्षा या नौकरी के लिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के पैरा 4.28 के अनुसार विद्यार्थियों को प्रारंभिक अवस्था से ही नैतिकता, सही निर्णय लेने की क्षमता और संवैधानिक मूल्यों की शिक्षा दी जाएगी। विषयों के माध्यम से विद्यार्थियों में सहिष्णुता, समानुभूति, सत्य, सेवा, करुणा, अहिंसा, नैतिक बोध और सामाजिक उत्तरदायित्व विकसित किया जाएगा। पंचतंत्र, जातक आदि भारतीय कहानियों के साथ-साथ स्वास्थ्य, स्वच्छता, नशामुक्ति, और आपदा प्रबंधन से संबंधित वैज्ञानिक ज्ञान भी दिया जाएगा। इसके साथ ही संविधान के अंशों का अध्ययन अनिवार्य किया गया है ताकि विद्यार्थी सच्चे नागरिक बन सकें (भारत सरकार, 2020)। शिक्षा नीति का यह दृष्टिकोण विवेकानंद के आत्मबोध और चरित्र निर्माण पर केंद्रित शैक्षिक दर्शन का आधुनिक प्रतिबिंब है। विवेकानंद का मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण, मानसिक बल और आत्मविश्वास का विकास होना चाहिए (विवेकानंद, 2009)। शिक्षा नीति विवेकानंद के इसी विचार को आत्मसात करती है जहाँ शिक्षा केवल सूचना का संचयन नहीं, बल्कि आत्मा की शक्ति, नैतिक विवेक और सामाजिक जिम्मेदारी को जाग्रत करने का माध्यम है।

मातृभाषा और संस्कृति की शिक्षा

कोई भी राष्ट्र तब तक महान नहीं बन सकता है जब तक कि उसकी मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम नहीं बनाया जाता (विवेकानंद, 1985)। विवेकानंद का यह कथन शिक्षा में मातृभाषा की भूमिका को अत्यंत महत्वपूर्ण मानता है। जब शिक्षा अपनी भाषा में दी जाती है तो वह व्यक्ति की सोच, समझ और आत्मविश्वास को गहराई से प्रभावित करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इस विचार को स्पष्ट रूप से महत्व दिया गया है। नीति में प्रारंभिक वर्षों (कक्षा 5 तक और जहाँ संभव हो वहाँ कक्षा 8 तक) मातृभाषा, स्थानीय भाषा या क्षेत्रीय भाषा को शिक्षण का माध्यम बनाने की सिफारिश की गई है। (भारत सरकार, 2020)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के पैरा क्रमांक 4.11 के अनुसार यह सर्वविदित है कि छोटे बच्चे अपने घर की भाषा / मातृभाषा में सार्थक अवधारणाओं को अधिक तेजी से सीखते हैं और समझ लेते हैं। घर की भाषा आमतौर पर मातृभाषा या स्थानीय समुदायों द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। हालांकि कई बार बहुभाषी परिवारों में, परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा बोली जाने वाली एक घरेलू भाषा हो सकती है, जो कभी-कभी

मातृभाषा या स्थानीय भाषा से भिन्न हो सकती है। जहाँ तक संभव हो कम से कम ग्रेड 5 तक लेकिन बेहतर यह होगा कि यह ग्रेड 8 और उससे आगे तक भी हो, शिक्षा का माध्यम, घर की भाषा / मातृभाषा / स्थानीय भाषा / क्षेत्रीय भाषा होगी। इसके बाद घर/ स्थानीय भाषा को जहाँ भी संभव हो भाषा के रूप में पढ़ाया जाता रहेगा। इसका उद्देश्य बच्चों को जड़ से जोड़ना, उनकी सीखने की क्षमता को सहज और प्रभावी बनाना तथा भाषाई विविधता को सम्मान देना है (भारत सरकार, 2020)। यह नीति स्पष्ट रूप से मानती है कि मातृभाषा में शिक्षा से संज्ञानात्मक विकास बेहतर होता है और विद्यार्थी अधिक गहराई से विषयों को समझ पाते हैं। विवेकानंद की मातृभाषा आधारित शिक्षा की परिकल्पना आज की शिक्षा नीति में साकार होती दिखाई देती है।

पैरा क्रमांक 4.27 में कहा गया है कि 'भारत का ज्ञान' में आधुनिक भारत और उसकी सफलताओं और चुनौतियों के प्रति प्राचीन भारत का ज्ञान और उसका योगदान शामिल किया जायेगा और शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, आदि के संबंध में भारत के भविष्य की आकांक्षाओं की स्पष्ट भावना शामिल होगी। इन तत्वों को पूरे स्कूल पाठ्यक्रम में जहाँ भी प्रासंगिक हो वहाँ वैज्ञानिक तरीके से और एक सटीक रूप से शामिल किया जाएगा। विशेष रूप से भारतीय ज्ञान व्यवस्था को आदिवासी ज्ञान एवं सीखने के स्वदेशी और पारंपरिक तरीकों सहित कवर किया जाएगा और गणित, खगोल विज्ञान, दर्शन, योग, वास्तुकला, चिकित्सा, कृषि, इंजीनियरिंग, भाषा विज्ञान, साहित्य, खेल के साथ-साथ शासन, राजव्यवस्था, संरक्षण, आदि विषयों में शामिल किया जाएगा। जनजातीय एथनो-औषधीय प्रथाओं, वन प्रबंधन, पारंपरिक (जैविक) फसल की खेती, प्राकृतिक खेती, आदि में विशिष्ट पाठ्यक्रम भी उपलब्ध कराए जाएंगे। भारतीय ज्ञान प्रणालियों पर एक आकर्षक पाठ्यक्रम भी एक वैकल्पिक के रूप में माध्यमिक विद्यालय में विद्यार्थियों के लिए उपलब्ध होगा। (भारत सरकार, 2020)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के पैरा क्रमांक 4.29 के अनुसार बुनियादी स्तर से शुरू करके बाकी सभी स्तरों तक, पाठ्यचर्या और शिक्षण-शास्त्र को एक मजबूत भारतीय और स्थानीय संदर्भ देने की दृष्टि से पुनर्गठित किया जायेगा। इसके अंतर्गत संस्कृति, परंपराएँ, विरासत, रीति-रिवाज, भाषा, दर्शन, भूगोल, प्राचीन और समकालीन ज्ञान, सामाजिक और वैज्ञानिक आवश्यकताएं, सीखने के स्वदेशी और पारंपरिक तरीके आदि सभी पक्ष शामिल होंगे जिससे शिक्षा यथासंभव रूप से हमारे विद्यार्थियों के लिए अधिकतम भरोसेमंद, प्रासंगिक, रोचक और प्रभावी बने। कहानियों, कला, खेलों, उदाहरणों और समस्याओं आदि का चयन जहाँ तक संभव हो भारतीय और स्थानीय भौगोलिक सन्दर्भों के आधार पर किया जायेगा। शिक्षा को इस तरह का आधार मिलने पर निश्चित रूप से अमूर्त चिंतन, नए विचारों और रचनात्मकता को निखरने का अवसर मिलेगा। (भारत सरकार, 2020)

विवेकानंद ने बार-बार इस बात पर बल दिया कि भारत की शिक्षा व्यवस्था को अपनी जड़ों, परंपराओं और सांस्कृतिक विरासत से जुड़ा होना चाहिए (सलूजा, 2003)। उनका मानना था कि भारतीयों को

अपनी संस्कृति, गौरवशाली इतिहास और आत्मिक धरोहर के प्रति जागरूक बनाना आवश्यक है तभी वे आत्मगौरव और आत्मविश्वास के साथ राष्ट्र निर्माण में योगदान दे सकेंगे (विवेकानंद, 1985)। शिक्षा नीति 2020 में जहाँ एक ओर आधुनिक विषयों के साथ भारत के प्राचीन ज्ञान-विज्ञान और पारंपरिक जीवनशैली को पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक रूप से जोड़ने की बात है, वहीं यह विवेकानंद के उस विचार को साकार करता है कि भारतीय शिक्षा को भारत की आत्मा से जोड़े बिना उसका कोई अर्थ नहीं।

विवेकानंद ने आधुनिक विज्ञान और भारतीय दर्शन के समन्वय को राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक माना। उन्होंने कहा था कि पाश्चात्य विज्ञान का समन्वय वेदांत के साथ हो (विवेकानंद, 2003)। यह विचार शिक्षा नीति 2020 के उस दृष्टिकोण में परिलक्षित होता है जिसमें आधुनिक तकनीकी शिक्षा और भारतीय ज्ञान परंपरा को एक साथ पाठ्यचर्या में समाहित किया गया है। नीति में बहु-विषयी शिक्षा, रचनात्मक सोच, और नैतिक चेतना को समेकित रूप से विकसित करने की जो भावना है वह स्पष्ट रूप से विवेकानंद की शिक्षा संबंधी दृष्टि से मेल खाती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय चिंतन की उस गहराई को पुनर्स्थापित करने का प्रयास है, जिसकी नींव स्वामी विवेकानंद जैसे महापुरुष ने रखी थी और जो शिक्षा को राष्ट्र निर्माण का सर्वोच्च साधन मानते थे।

शिक्षा, समावेशन और आत्मनिर्भरता

"मनुष्य निर्माण ही मेरा उद्देश्य है। जनता को शिक्षित करो, उन्हें ऊपर उठाओ, केवल तभी एक सशक्त राष्ट्र का निर्माण संभव है (विवेकानंद, 2003)।" विवेकानंद के अनुसार जब सामान्य जन विशेषकर शोषित, गरीब और वंचित वर्ग शिक्षित और आत्मनिर्भर नहीं होंगे तब तक भारत एक महान राष्ट्र नहीं बन सकेगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी शिक्षा को हर वर्ग विशेष रूप से गरीब, ग्रामीण, अनुसूचित जाति/जनजाति, बालिकाओं और दिव्यांगजनों तक पहुँचाने की बात करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ी जाति और दिव्यांग बच्चों के लिए शिक्षा के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण प्रावधान किए गए हैं। ये प्रावधान इन समुदायों के लिए शिक्षा के अवसरों को बढ़ाने और उनकी विशेष आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बनाए गए हैं, जिससे वे समाज में समानता और समावेशिता के साथ आगे बढ़ सकें। साथ ही पैरा 6.1 में यह स्पष्ट किया गया है कि सभी बच्चों विशेष रूप से अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ी जाति और दिव्यांग को समान अवसर प्रदान किए जाएंगे।

पैरा 6.2 के अनुसार अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ी जाति के बच्चों के लिए विशेष योजनाएँ बनाई जाएंगी, जैसे कि छात्रवृत्तियाँ, ट्यूशन सहायता, और अन्य संसाधन ताकि उनकी शिक्षा में कोई बाधा न आए। इसके साथ ही पैरा 6.3 में दिव्यांग बच्चों के लिए समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देने पर जोर दिया गया है। इसमें यह सुनिश्चित किया गया है कि सभी स्कूलों में दिव्यांग बच्चों के लिए आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध हों जैसे कि विशेष शिक्षकों की नियुक्ति और सहायक उपकरण। पैरा 6.4 में सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए यह सुनिश्चित किया गया है कि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ी जाति के

बच्चों के साथ शिक्षा में कोई भेदभाव न हो। इसके लिए विशेष निगरानी और मूल्यांकन तंत्र स्थापित किए जाएंगे। पैरा 6.5 में यह भी कहा गया है कि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ी जाति के बच्चों के लिए शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए विशेष कार्यक्रम चलाए जाएंगे, ताकि वे उच्च शिक्षा में भी सफल हो सकें। (भारत सरकार, 2020)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के पैरा 6.16 में विशेष रूप से बताया गया है कि वंचित समूहों जैसे अनुसूचित जाति/ जनजाति, दलित, आर्थिक रूप से कमजोर, महिलाओं, ट्रांसजेंडर, भू-भागीय वंचित और दिव्यांगों तक शिक्षा की पहुँच सुनिश्चित करने हेतु योजनाएँ चलाई जाएँ जैसे विशेष छात्रावास, ब्रिज कोर्स, शुल्क माफी, छात्रवृत्तियाँ आदि, ताकि वे आत्मनिर्भर बन सकें। साथ ही पैरा 6.10 से 6.15 में दिव्यांग बच्चों के समावेशी शिक्षा के लिए विशेष संसाधन, विशेष शिक्षकों की नियुक्ति, तकनीकी सहायता, होम स्कूलिंग विकल्प आदि का स्पष्ट उल्लेख है ताकि शिक्षा सभी तक पहुँचे और समावेशी हो। यह प्रावधान स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि नीति न केवल शिक्षा आम जन तक पहुँचाना चाहती है बल्कि समाज के दबे-कुचलों को शिक्षित कर आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में स्पष्ट रूप से कार्य करती है। (भारत सरकार, 2020) इसी प्रकार पैरा 16.4 में व्यावसायिक शिक्षा को मुख्यधारा में जोड़ने और श्रम के सम्मान को पुनर्स्थापित करने की बात विवेकानंद के श्रम-संस्कार और स्वावलंबन के आदर्श से मेल खाती है। वह हमेशा कहते थे कि भारत का नव निर्माण तभी संभव है जब शिक्षा हर वर्ग तक पहुंचे और युवा अपने हाथों से कार्य कर आत्मगौरव महसूस करें। (सलूजा, 2003)

शिक्षा और राष्ट्र निर्माण

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 स्वामी विवेकानंद के उस आदर्श दृष्टिकोण को साकार करती है जिसमें उन्होंने कहा था कि हम चाहते हैं कि पाश्चात्य विज्ञान का समन्वय वेदांत के साथ हो, ब्रह्मचर्य हमारे जीवन का मार्गदर्शक सिद्धांत बने और हमारे भीतर श्रद्धा एवं आत्मविश्वास हो (विवेकानंद, 2003)। इस कथन में विवेकानंद ने एक ऐसी शिक्षा की कल्पना की है जो पाश्चात्य वैज्ञानिक चिंतन की प्रगति को भारतीय अध्यात्मिक मूल्यों से जोड़ती है (सलूजा, 2003)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इसी समन्वय का प्रयास करती है। एक ओर यह नीति आधुनिक विज्ञान, प्रौद्योगिकी, नवाचार और 21वीं सदी के कौशल जैसे कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डेटा विज्ञान और डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देती है वहीं दूसरी ओर भारतीय ज्ञान परंपरा, योग, नैतिक शिक्षा, पर्यावरण चेतना और आत्मअनुशासन को भी पाठ्यक्रम में स्थान देती है (भारत सरकार, 2020)। यह नीति विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, आंतरिक विश्वास और चरित्र निर्माण को उतना ही महत्व देती है जितना बौद्धिक विकास को, जिससे वे आत्मनिर्भर और उत्तरदायी नागरिक बन सकें। विवेकानंद की शिक्षा संबंधी परिकल्पना और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की दृष्टि के बीच गहरा और प्रेरणादायक संबंध स्थापित होता हुआ दिखाई देता है।

विवेकानंद के दर्शन को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी साकार करने का प्रयास किया गया है। यह नीति शिक्षा को समग्र विकास का माध्यम मानते हुए विद्यार्थियों के बौद्धिक, सामाजिक, नैतिक, भावनात्मक और आत्मिक विकास पर बल देती है। नीति के अनुसार 21वीं सदी का शिक्षार्थी न केवल ज्ञानार्जन में सक्षम हो बल्कि आत्मनिर्भर, उत्तरदायी, संवेदनशील और रचनात्मक नागरिक भी हो जो विवेकानंद की आत्मा की अभिव्यक्ति वाली शिक्षा की परिकल्पना के निकट है। विवेकानंद की शिक्षा संबंधी योजना का मूल उद्देश्य राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को उसकी अंतर्निहित शक्तियों से परिचित कराना, उसे देश की समस्याओं के समाधान में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रेरित करना और उसकी ऊर्जा को रचनात्मक दिशा देना है। किसी भी राष्ट्र की प्रगति का मूल्यांकन इस आधार पर होना चाहिए कि उसके नागरिक कितनी शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं और वे किस हद तक अपनी आंतरिक क्षमताओं को पहचानने और उपयोग में लाने में सक्षम हो पाए हैं (विवेकानंद, 2003)।

निष्कर्ष

विवेकानंद का शैक्षिक दर्शन आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उनके समय में था। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में उनके विचारों को आधार बनाकर शिक्षा में पुनः भारतीयता, नैतिकता और आत्मनिर्भरता पर बल दिया गया है। यदि इस नीति को समुचित रूप से लागू किया जाए तो यह न केवल शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाएगी बल्कि एक ऐसे नागरिक समाज के निर्माण की दिशा में योगदान देगी जो विवेकानंद के मनुष्य निर्माण के आदर्श के अनुरूप होगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन तक सीमित नहीं किया गया है बल्कि शिक्षा को व्यक्ति के चारित्रिक, बौद्धिक, आत्मिक और सामाजिक उत्थान को लक्ष्य बनाया गया है। विवेकानंद भी मानना है कि शिक्षा के द्वारा व्यक्ति में आत्मबल, नैतिकता और आत्मनिर्भरता का विकास करना होना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इसी दृष्टिकोण को व्यवहार में लाने का प्रयास करती है यह उनके शैक्षिक आदर्शों की आधुनिक प्रस्तुति है जो भारत को आत्मनिर्भर, नैतिक और ज्ञानप्रधान राष्ट्र के रूप में पुनः प्रतिष्ठित करने की दिशा में एक सशक्त और दूरदर्शी प्रयास है।

संदर्भ :-

भारत सरकार. (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*. प्राप्त स्रोत: https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/nep_update/NEP_final_HI_0.pdf

विवेकानंद, स्वामी (2003). *स्वामी विवेकानंद की संपूर्ण रचनाएँ*. कोलकाता: अद्वैत आश्रम.

विवेकानंद, स्वामी. (1985). *शिक्षा*. नागपुर: रामकृष्ण मठ.

विवेकानंद, स्वामी. (2009). *शिक्षा का आदर्श*. नागपुर: रामकृष्ण मठ.

सलूजा, चांद किरण (2004). *शिक्षा: एक विवेचन*. दिल्ली: रवि बुक्स

अध्यापक शिक्षा संस्थान के अध्येताओं की व्हाट्सऐप संलग्नता का अकादमिक प्रभाव

डॉ. सारिका राय शर्मा* **जेस्पेंदर सिंह†**

sarikarai86@gmail.com **jassijyoda1469@gmail.com**

सारांश

हर एक युग किसी न किसी चीज के लिए जाना जाता है। ऐसे ही वर्तमान युग सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (ICT) का युग माना जाता है क्योंकि 21वीं शताब्दी में सोशल मीडिया का बहुत तेजी से विकास हुआ है जिसने हमारे जीवन के प्रत्येक पहलू को बदल दिया है। इससे शिक्षा भी अछूती नहीं है। स्मार्टफोन और इंटरनेट की व्यापक उपलब्धता ने विद्यार्थियों के सीखने के तरीकों और उनके सामाजिक संपर्क में क्रांति ला दी है। इसी तकनीकी प्रगति के बीच व्हाट्सऐप मैसेजिंग एप्लिकेशन विद्यार्थियों के बीच संवाद और सूचना साझा करने का एक प्रमुख माध्यम बनकर उभरा है। अध्यापक शिक्षा संस्थानों के अध्येता, जो भविष्य के शिक्षक हैं, भी इस डिजिटल लहर से अछूते नहीं हैं। वे अकादमिक उद्देश्यों और व्यक्तिगत बातचीत दोनों के लिए व्हाट्सऐप का सक्रिय रूप से उपयोग करते हैं। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य अध्यापक शिक्षा संस्थान के अध्येताओं की व्हाट्सऐप संलग्नता के फलस्वरूप उनके अकादमिक पक्ष पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना है। आकड़ो के संग्रहण हेतु स्व निर्मित मिश्रित प्रश्नावली का प्रयोग करते हुए 80 अध्येताओं से आकड़े एकत्रित किए गए। अध्ययन से पता चला कि व्हाट्सऐप एक ओर त्वरित सूचना के आदान-प्रदान, समूह परियोजनाओं को करने में सहायक और शिक्षकों एवं सहपाठियों से सहायता प्राप्त करने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण है, जिससे सीखने की प्रक्रिया अधिक सुलभ और लचीली हुई है। किन्तु दूसरी तरफ, इसके अत्यधिक या अनुचित उपयोग से ध्यान भंग होना, एकाग्रता में कमी, और समय प्रबंधन में चुनौतियाँ भी पैदा हुई हैं, जिसने भटकाव उत्पन्न कर अंततः शैक्षणिक प्रदर्शन को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है।

मूल शब्द :

अध्यापक शिक्षा संस्थान, व्हाट्सऐप संलग्नता, अकादमिक प्रभाव, त्वरित सूचना आदान-प्रदान, भटकाव

प्रस्तावना

वर्तमान 21वीं सदी को डिजिटल युग के नाम से जाना जाता है क्योंकि इस युग में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (ICT) ने बहुत तीव्र गति से विकास किया है। शिक्षा का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा है। स्मार्टफोन, टैबलेट और इंटरनेट की व्यापक पहुँच ने शिक्षण-अधिगम पद्धतियों में परिवर्तन के साथ-साथ विद्यार्थियों के सामाजिक संवाद के तरीकों में भी क्रांतिकारी परिवर्तन लाए हैं। ऐसे में व्हाट्सऐप, जिसे इंस्टेंट मैसेजिंग एप्लिकेशन कहा जाता है, व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाने वाला एप्लीकेशन है जो अपने

* **सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग), महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र**

† **शोधार्थी (शिक्षा विभाग), महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र**

उपयोगकर्ताओं को टेक्स्ट संदेश, वॉयस मैसेज भेजने, वॉयस और वीडियो कॉल करने, मीडिया फाइलों को साझा करने और समूह चैट में भाग लेने की अनुमति देता है। इसने वर्तमान में लगभग सभी आयु वर्ग को प्रभावित किया है, विशेषकर युवा वर्ग इससे सबसे अधिक प्रभावित है। विद्यार्थियों के बीच यह संवाद और सूचना साझा करने का एक महत्वपूर्ण साधन बनकर उभरा है। भारत में, विशेष रूप से अध्यापक शिक्षा संस्थानों में अध्ययनरत भावी शिक्षक, इससे गहरे रूप से जुड़े हुए हैं। वे अपनी व्यक्तिगत बातचीत करने के साथ-साथ अकादमिक उद्देश्यों, जैसे समूह चर्चा, अध्ययन सामग्री साझा करने, सहयोगात्मक परियोजनाओं में भाग लेने और शिक्षकों तथा सहपाठियों के साथ संवाद स्थापित करने के लिए व्हाट्सऐप का सक्रिय रूप से उपयोग करते हैं।

व्हाट्सऐप दुनिया में सबसे लोकप्रिय मैसेजिंग एप्लिकेशन में से एक है, जो लगभग प्रत्येक व्यक्ति के फ़ोन में इनस्टॉल है। व्हाट्सऐप की स्थापना ब्रायन एक्टन (Brian Acton) और जान कूम (Jan Koum) ने वर्ष 2009 में की थी। 24 फरवरी 2009 में उन्होंने अमेरिका के कैलिफोर्निया में व्हाट्सऐप इंकॉर्पोरेट (whatsapp.INC) नाम की कंपनी बनाई। शुरुआत में, इसका मुख्य फोकस स्टेटस अपडेट पर था, जहां उपयोगकर्ता अपने दोस्तों को बता सकते थे कि वे क्या कर रहे हैं। जल्द ही इसमें मैसेजिंग की सुविधा भी जोड़ी गई। यह एसएमएस (MMS) के विपरीत मुफ्त में संदेश भेजने की सुविधा देता था, जिससे इसकी लोकप्रियता बहुत तेजी से बढ़ी। वर्ष 2009 से 2014 के बीच व्हाट्सऐप ने तेजी से उपयोगकर्ताओं को आकर्षित करना शुरू किया क्योंकि यह एक सरल, तेज और मुफ्त मैसेजिंग सेवा प्रदान करता था। धीरे-धीरे व्हाट्सऐप में वॉयस कॉलिंग, वीडियो कॉलिंग, ग्रुप चैट, मीडिया शेयरिंग (फोटो, वीडियो, डॉक्यूमेंट), लोकेशन शेयरिंग और स्टेटस अपडेट जैसे फीचर्स जोड़े गए, जिससे कि यह संचार का एक सशक्त प्लेटफॉर्म बन गया। वर्तमान में व्हाट्सऐप दुनिया भर के अरबों लोगों द्वारा उपयोग किया जाने वाला एक प्रमुख संचार माध्यम बन गया है। यह व्यक्तिगत और व्यावसायिक दोनों तरह के उपयोग के लिए महत्वपूर्ण है। व्हाट्सऐप लगातार नए फीचर्स जोड़ता रहता है, जैसे एंड-टू-एंड एन्क्रिप्शन (जो उपयोगकर्ताओं की गोपनीयता सुनिश्चित करता है), व्हाट्सऐप बिजनेस ऐप, पेमेंट फीचर (कुछ देशों में), और चैनल। वर्तमान में व्हाट्सऐप के 180 से अधिक देशों और 60 से अधिक भाषाओं में उपलब्ध होने के कारण 3 बिलियन से अधिक सक्रिय उपभोक्ता हैं। अकेले भारत में इसके 535.8 मिलियन से अधिक सक्रिय उपभोक्ता हैं। अनुमान है कि वर्ष 2025 के अंत तक यह संख्या बढ़कर 3.14 बिलियन तक पहुँच जाएगी (विकिपीडिया)।

शोध का महत्व एवं औचित्य

प्रस्तुत शोध द्वारा अध्यापक शिक्षा संस्थान के अध्येताओ की व्हाट्सऐप संलग्नता का अध्ययन किया गया है। इस शोध अध्ययन द्वारा यह अंतर्दृष्टि विकसित होगी कि बी.एड. तथा एम.एड. के अध्येताओं द्वारा व्हाट्सऐप का उपयोग उनके विद्यार्थियों की अर्थपूर्ण संलग्नता को कैसे बढ़ा सकता है। यह एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा शिक्षक अपने छात्रों के साथ तेजी से और अधिक सहज रूप में सम्प्रेषण कर सकते हैं, विशेषकर

कोरोना त्रासदी के दौरान व्हाट्सऐप तथा अन्य ऐप्प ने ऑनलाइन शिक्षण के माध्यम से जिस तरह से विद्यार्थियों को उनके शैक्षिक संस्थाओं एवं शिक्षकों से जोड़ा है, ऐसे में इस शोध अध्ययन या इस तरह के किए जा रहे अन्य अध्ययन ऑनलाइन शिक्षण की गुणवत्ता में वृद्धि हेतु अध्यापक शिक्षा संस्थानों में सेवारत शिक्षकों के लिए एक अंतर्दृष्टि प्रदान कर सकते हैं। आज का समय पूरी तरह से तकनीक का हो गया है। इसने सभी लोगों को प्रभावित किया है किन्तु जिसे इसने सबसे ज्यादा प्रभावित किया है, वह है आज का युवा वर्ग। यह देखा गया है कि जब से युवाओं के हाथ में स्मार्टफोन आये और सस्ती इंटरनेट सेवा मिलनी शुरू हुई है, युवाओं की जीवन शैली पर इसका प्रभाव पड़ा है। बहरहाल, इसमें कोई दो राय नहीं है कि सोशल मीडिया आज लोगों के लिए बहुत ही आवश्यक हो गया है, लेकिन इसका जो दूसरा पहलू है, उससे बचने की जरूरत है क्योंकि जब किसी भी चीज का दुरुपयोग या हद से ज्यादा उपयोग होने लगता है तो वह वरदान नहीं अभिशाप बन जाती है। अतः प्रस्तुत शोध का उद्देश्य अध्यापक शिक्षा संस्थान के अध्येताओ की व्हाट्सऐप संलग्नता का अध्ययन कर उनके दैनिक जीवन में इसके प्रयोग की सघनता का विश्लेषण करना तथा व्हाट्सऐप का अध्येताओं के अकादमिक जीवन पर प्रभाव का अध्ययन करना है।

शोध कथन

अध्यापक शिक्षा संस्थानों के अध्येताओं की व्हाट्सऐप संलग्नता का अकादमिक प्रभाव

संबंधित साहित्य

भट्ट एवं अरशद (2016) द्वारा किए गए शोध अध्ययन *"इम्पैक्ट ऑफ व्हाट्सऐप ऑन यूथ : अ साइकोलॉजिकल स्टडी"* में उन्होंने आगरा के 100 उत्तरदाताओं का साक्षात्कार कर प्रदत्त संग्रह किया। इस अध्ययन द्वारा यह पता चला कि व्हाट्सऐप का युवाओं पर गहरा नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। यह उनकी शिक्षा, व्यवहार और दिनचर्या पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। यह विद्यार्थियों के अध्ययन के समय को बहुत बर्बाद करता है और उनकी वर्तनी कौशल और वाक्यों के व्याकरणिक निर्माण को खराब करता है।

शंमुगाप्रिया एवं प्रिया (2016) द्वारा किए गए शोध अध्ययन *"अ स्टडी ऑन इम्पैक्ट ऑफ यूजिंग व्हाट्सऐप ऑन रिडक्शन ऑफ स्ट्रेस"* को एक प्रश्नावली के माध्यम से 400 उत्तरदाताओं पर आयोजित किया गया था। शोधकर्ता को अध्ययन के परिणामों से पता चला कि सोशल मीडिया एप्लिकेशन को सभी प्रकार के उपयोगकर्ताओं को संतुष्ट करने के लिए अपनी सेवाओं में सुधार करने की आवश्यकता है।

इरफ़ान एवं धिम्मर (2019) द्वारा किया गया शोध अध्ययन *"इम्पैक्ट ऑफ़ व्हाट्सऐप मैसेंजर ऑन द यूनिवर्सिटी लेवल स्टूडेंट्स: अ सोशियोलॉजिकल स्टडी"* एक प्रश्नावली के माध्यम से 105 उत्तरदाताओं पर आयोजित किया गया था। इस प्रश्नावली में 25 एकांश सम्मिलित थे। शोधकर्ता को अध्ययन के परिणाम से पता चला कि व्हाट्सऐप संचार को आसान और तेज़ बनाने का एक माध्यम अवश्य है; किन्तु इसके साथ-साथ यह युवाओं पर गहरा नकारात्मक प्रभाव भी डालता है जिससे उनकी शिक्षा, व्यवहार और जीवनशैली भी प्रभावित होती है।

सितिन्काया (2017) द्वारा किए गए शोध अध्ययन *"द इम्पैक्ट ऑफ व्हाट्सऐप यूज़ ऑन सक्सेस इन एजुकेशन प्रॉसेस"* का उद्देश्य शिक्षा के लिए व्हाट्सऐप उपयोग के प्रभावों का पता लगाना था। प्रस्तुत अध्ययन को शोधकर्ता द्वारा मिश्रित अनुसंधान अभिकल्प के रूप में डिज़ाइन किया गया था जिसमें मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों प्रकार के आंकड़े लिए गए थे। शोधकर्ता को आंकड़ो के विश्लेषण से पता चला कि विद्यार्थियों ने अपने पाठ्यक्रमों में व्हाट्सऐप के उपयोग के प्रति सकारात्मक राय विकसित की है। उन्होंने अपने अन्य पाठ्यक्रमों में भी यही अभ्यास करने की मांग की। उन्होंने बताया कि छवियों (images) के साथ संदेश उनके सीखने के लिए अधिक प्रभावी थे। हालांकि, कुछ विद्यार्थियों ने समूह के भीतर कुछ पोस्ट और निरर्थक पोस्ट पर प्रतिकूल राय व्यक्त की थी।

बाबुराव (2018) द्वारा किया गया शोध अध्ययन *"द इम्पैक्ट ऑफ व्हाट्सऐप मैसेंजर यूसेज ऑन स्टूडेंट्स परफॉर्मेन्स"* विद्यार्थियों के प्रदर्शन पर व्हाट्सऐप मैसेंजर के प्रभाव को अनुभवजन्य रूप से पहचानने का प्रयास करता है। इस अध्ययन के लिए शोधकर्ता ने एम.बी.ए. के 60 विद्यार्थियों से संरचित प्रश्नावली की मदद से डेटा एकत्रित किया था। इस अध्ययन से उन्हें यह पता चला कि व्हाट्सऐप संचार को आसान और तेज बनाने के साथ-साथ विद्यार्थियों के बीच सूचना और विचार साझा करने के प्रभावी प्रवाह को बढ़ाता है, साथ ही यह विद्यार्थियों के प्रदर्शन पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। इसकी वजह से विद्यार्थियों का अध्ययन समय बर्बाद होता है, एकाग्रता में कमी आती है, वे अपना अभिहस्तांकन कार्य भी समय पर नहीं कर पाते हैं।

वीणा एवं लोकेश (2016) ने अपने शोध *"इफ़ेक्ट ऑफ़ व्हाट्सएेप मैसेंजर यूसेज अमोंग स्टूडेंट्स इन मंगलोर यूनिवर्सिटी: अ केस स्टडी"* के लिए मंगलोर यूनिवर्सिटी के विभिन्न विभागों में अध्ययनरत 200 विद्यार्थियों से प्रश्नावली के माध्यम से आकड़े एकत्रित किए। शोधकर्ता ने अध्ययन के अंतर्गत पाया कि अधिकांश उपयोगकर्ता व्हाट्सऐप मैसेंजर से परिचित है और वे शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए व्हाट्सऐप का उपयोग करते हैं।

रौतेला, सिंघल एवं येरपुडे (2018) के शोध अध्ययन *"एन इनसाइट इंटू द चेंजिंग वर्ल्ड ऑफ कम्युनिकेशन: अ जेनेरिक स्टडी ऑफ अंडरग्रेजुएट स्टूडेंट्स परसेप्शन ऑफ व्हाट्सऐप एंड इट्स यूसेज"* का मुख्य उद्देश्य व्हाट्सऐप के अनुप्रयोग और युवाओं के बीच इसकी धारणा का अध्ययन करना था। इसके साथ ही इस अध्ययन के माध्यम से विद्यार्थियों में व्हाट्सऐप की बढ़ती लोकप्रियता के कारणों का भी पता लगाने की कोशिश की गई। यह अध्ययन 200 स्नातक विद्यार्थियों के बीच आयोजित किया गया था। शोधकर्ता ने अध्ययन में पाया कि अधिकांश विद्यार्थियों ने यह माना कि यदि कुशल और प्रभावी तरीके से इस संचार का उपयोग किया जाए तो संचार का यह माध्यम शैक्षिक उपकरण के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है।

मिन्हास, अहमद एवं उल्लास (2018) द्वारा किया गया शोध अध्ययन *"यूसेज ऑफ व्हाट्सऐप: अ स्टडी ऑफ़ यूनिवर्सिटी ऑफ़ पेशावर, पाकिस्तान"* पाकिस्तान के पेशावर विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों पर किया गया था। इस अध्ययन के लिए उपकरण के रूप में प्रश्नावली का उपयोग किया गया। इस अध्ययन से पता चला

कि विद्यार्थी व्हाट्सऐप का उपयोग विभिन्न कार्यों हेतु जैसे अकादमिक जानकारी साझा करना, चैट करना, वीडियो कॉल करना, इमेज भेजना, वीडियो या डॉक्यूमेंट भेजना, ग्रुप चैट आदि के लिए करते हैं। इस शोध के अंतर्गत विद्यार्थियों ने यह माना कि वे व्हाट्सऐप की मदद से हमेशा अपने शिक्षकों के साथ संपर्क में रहते हैं।

संक्रियात्मक परिभाषा

- **अध्यापक शिक्षा संस्थान-** राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (1993) के अनुसार अध्यापक शिक्षा संस्थान ऐसे शैक्षिक संस्थान हैं जहां अध्यापक शिक्षा से संबंधित पाठ्यक्रम या प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। प्रस्तुत शोध में अध्यापक शिक्षा संस्थान से अभिप्राय महाराष्ट्र राज्य के वर्धा जिले में स्थित एकमात्र केंद्रीय विश्वविद्यालया- महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग से है।
- **अध्येता-** अध्येता का शाब्दिक अर्थ होता है अध्ययन करने वाला अर्थात वह व्यक्ति जो किसी विशेष विद्या के अध्ययन में संलग्न है। प्रस्तुत शोध में अध्येता से अभिप्राय महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के अध्यापक शिक्षा विभाग के अंतर्गत संचालित बी. एड. एवं एम. एड. कार्यक्रम में अध्ययनरत विद्यार्थियों से है।
- **व्हाट्सऐप-** व्हाट्सऐप स्मार्टफोन पर चलने वाली एक प्रसिद्ध तत्क्षण मेसेजिंग सेवा है। इसकी सहायता से इन्टरनेट या वाई.फाई. इत्यादि का प्रयोग कर बिना किसी अन्य शुल्क के दूसरे व्हाट्सऐप उपयोगकर्ता के स्मार्टफ़ोन पर अनगिनत टेक्स्ट सन्देश (SMS), फोटो, वीडियो, डॉक्यूमेंट, कॉन्टेक्ट्स, लोकेशन, ऑडियो सन्देश, ऑडियो कॉल, वीडियो कॉल, ग्रुप वीडियो कॉल, ग्रुप चैट कर सकते हैं।
- **संलग्नता-** संलग्नता शब्द का शाब्दिक अर्थ किसी कार्य में लिप्त रहने से है। किन्तु प्रस्तुत शोध में संलग्नता से अभिप्राय व्हाट्सऐप का उपयोग करने की तीव्रता, गहनता एवं उसके अर्थपूर्ण प्रयोजन से है।

शोध प्रश्न

अध्यापक शिक्षा संस्थानों के अध्येताओं की व्हाट्सऐप संलग्नता किस प्रकार उनकी अकादमिक गतिविधियां को प्रभावित करती है ?

शोध उद्देश्य

अध्यापक शिक्षा संस्थानों के अध्येताओं की व्हाट्सऐप संलग्नता के अकादमिक प्रभाव की प्रकृति का अध्ययन करना।

शोध का परिसीमन

प्रस्तुत शोध महाराष्ट्र राज्य के वर्धा जिले में स्थित केंद्रीय विश्वविद्यालय (महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय) के अध्यापक शिक्षा विभाग के अंतर्गत संचालित बी.एड एवं एम.एड कार्यक्रम के अध्येताओं तक ही सीमित था। अध्ययन के दौरान अध्येताओं द्वारा अपने अनुभवों के आधार पर दी गई प्रतिक्रियाओं से निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास किया गया है। अतः सामान्यीकरण करते समय इस बात को संज्ञान में लेना अनिवार्य प्रतीत होता है।

शोध अभिकल्प

प्रस्तुत अध्ययन मात्रात्मक शोध उपागम के अंतर्गत एक वर्णनात्मक शोध है जिसे सर्वेक्षण विधि द्वारा किया गया है। प्रस्तुत शोध अध्ययन अध्यापक शिक्षा संस्थानों के अध्येताओं की व्हाट्सऐप संलग्नता के फलस्वरूप उनके अकादमिक पक्ष पर पड़ने वाले प्रभाव का पता लगाने के लिए किया गया है।

न्यादर्श विधि

प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता द्वारा महाराष्ट्र राज्य के वर्धा जिले में स्थित एकमात्र केंद्रीय विश्वविद्यालय (महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय) के अध्यापक शिक्षा विभाग के अंतर्गत संचालित बी.एड. एवं एम.एड. कार्यक्रम के 80 अध्येताओं को सोद्देश्यपूर्ण न्यादर्शन प्रविधि द्वारा न्यादर्श के रूप में लिया गया।

शोध उपकरण

प्रस्तुत शोध में अध्यापक शिक्षा संस्थानों के अध्येताओं की व्हाट्सऐप संलग्नता का उनके अकादमिक पक्ष पर पड़ने वाले प्रभाव के अध्ययन हेतु शोधकर्ता द्वारा स्वनिर्मित मिश्रित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया, जिसके दो भाग थे। पहले भाग में उत्तरदाता को अपने संबंध में कुछ जानकारी देनी थी। भाग दो में प्रश्नावाली दी गयी थी जिसमें कुल 12 प्रश्न थे। इस प्रश्नावली में प्रतिबंधित एवं खुले दोनों ही प्रकार के प्रश्नों को सम्मिलित किया गया था। प्रश्नावली के अंतर्गत अध्येताओं के लिए व्हाट्सऐप की प्रासंगिकता, व्हाट्सऐप के प्रति अध्येताओं का प्रत्यक्षण, शिक्षण-प्रशिक्षण सेवाओं में व्हाट्सऐप की उपयोगिता, व्हाट्सऐप का अकादमिक प्रभाव, व्हाट्सऐप को अनइन्स्टाल करने आदि से संबंधित प्रश्नों को सम्मिलित किया गया था। प्रश्नावली से संबंधित सभी निर्देश प्रश्नावली के आरंभ में ही दे दिए गए थे जिससे कि उत्तरदाता को प्रश्नावली भरते समय किसी भी प्रकार की समस्या का सामना न करना पड़े। स्वनिर्मित मिश्रित प्रश्नावली की विषय-वस्तु, संरचनात्मक एवं फ़ेस वैधता विषय-विशेषज्ञों के माध्यम से सुनिश्चित की गयी।

शोध कार्यविधि

सर्वप्रथम शोध साहित्य के अध्ययन के आधार पर व्हाट्सऐप संलग्नता हेतु अलग-अलग आयामों की पहचान की गयी। विभिन्न आयामों की पहचान करने के पश्चात उन आयामों के आधार पर प्रश्नों का निर्माण कर एक प्रश्नावली का निर्माण किया गया। यह एक स्वनिर्मित मिश्रित प्रश्नावली थी जिसमें 12 प्रश्न थे। इसके पश्चात स्वनिर्मित मिश्रित प्रश्नावली की विषय-वस्तु वैधता सुनिश्चित की गयी। तत्पश्चात महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय (वर्धा) के शिक्षा विभाग के अंतर्गत संचालित बी.एड. एवं एम.एड. के अध्येताओं से आकड़े प्राप्त करने हेतु उन्हें प्रश्नावली दी गयी और आकड़े प्राप्त किये गए।

प्रदत्तों का विश्लेषण

प्रदत्तों का संकलन मिश्रित प्रश्नावली के माध्यम से किया गया। इस प्रश्नावली में प्रतिबंधित एवं खुले दोनों ही प्रकार के प्रश्नों को शामिल किया गया था। प्रतिबंधित प्रश्नों पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं के आधार पर

प्रतिशत विश्लेषण किया गया। इसके अलावा खुले प्रश्नों के लिए प्रथम चरण में थीमेटिक कोडिंग की गयी। तत्पश्चात्त थीमेटिक कोडिंग के आधार पर प्रतिशत विश्लेषण निकाला गया।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या

व्हाट्सऐप के जीवन का हिस्सा होने के संदर्भ में 70% अध्येताओं ने व्हाट्सऐप के उपयोग को जीवन के लिए आवश्यक माना। वहीं मात्र 10% अध्येताओं ने व्हाट्सऐप के उपयोग को जीवन के लिए आवश्यक नहीं माना। इसके अलावा 20% विद्यार्थी ऐसे भी थे जो संशय में थे कि व्हाट्सऐप का उपयोग उनके जीवन के लिए आवश्यक है अथवा नहीं। प्राप्त प्रतिक्रियाओं से यह भी ज्ञात हुआ कि 63.75% अध्येताओं ने व्हाट्सऐप को सीखने के लिहाज से उपयोगी माना। केवल 36.25% अध्येताओं ने इसे सीखने के लिहाज से उपयोगी नहीं माना। शोध में यह बात भी सामने आयी कि 33.75% अध्येताओं के अनुसार व्हाट्सऐप उनके जीवन पर नकारात्मक प्रभाव डाल रहा है और केवल 26.25% अध्येताओं ने यह माना कि व्हाट्सऐप उनके जीवन पर नकारात्मक प्रभाव नहीं डाल रहा है। इसके अलावा 40% विद्यार्थी संशय में थे कि व्हाट्सऐप की वजह से उनके जीवन पर कोई नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है अथवा नहीं। शोध के अंतर्गत जब अध्येताओं से पूछा गया कि कैसे व्हाट्सऐप सीखने की दृष्टि से उनके लिए फायदेमंद है? तो उनसे प्राप्त प्रतिक्रियाओं से ज्ञात होता है कि 28.75% अध्येताओं ने माना कि व्हाट्सऐप के अकादमिक समूहों से उन्हें बहुत लाभ प्राप्त होता है क्योंकि यहाँ उन्हें शिक्षकों द्वारा विषय संबंधी सामग्री, उसको समझने में सहायक वीडियो लिंक्स, रोजगार समाचार, गृहकार्य, परियोजना कार्य, परीक्षा परिणाम, प्रेरणादायक उद्धरण जैसी अनेकों सहायक सेवाएं प्राप्त होती हैं। वहीं 16.25% अध्येताओं ने माना कि व्हाट्सऐप से उन्हें नोट्स उपलब्धता में सुविधा हुई है। शिक्षक वहाँ समय-समय पर नोट्स प्रदान करते रहते हैं जिससे उन्हें परीक्षा में बेहतर प्रदर्शन करने में सहायता मिलती है। 7.5% अध्येताओं ने व्हाट्सऐप को संचार का सरलतम माध्यम माना। 5% अध्येताओं ने माना कि वे व्हाट्सऐप का सकारात्मक ढंग से प्रयोग करते हैं। 6.25% अध्येताओं ने व्हाट्सऐप को सीखने का नवीनतम रूप माना जिससे उन्हें बहुत कुछ सीखने को मिला। वहीं 36.25% अध्येताओं ने व्हाट्सऐप को सीखने के लिहाज से उपयोगी नहीं माना। शिक्षण-प्रशिक्षण सेवाओं की गुणवत्ता पर व्हाट्सऐप के प्रभाव के सन्दर्भ में 72.5% अध्येताओं ने यह माना कि अकादमिक में व्हाट्सऐप का उपयोग उनकी शिक्षण-प्रशिक्षण सेवाओं की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। वहीं 27.5% विद्यार्थी यह नहीं मानते कि अकादमिक में व्हाट्सऐप का उपयोग उनकी शिक्षण-प्रशिक्षण सेवाओं की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। शोध में अध्येताओं से पूछे जाने पर कि व्हाट्सऐप शिक्षण-प्रशिक्षण सेवाओं की गुणवत्ता को कैसे प्रभावित करता है के संबंध में प्राप्त प्रतिक्रियाओं से ज्ञात हुआ कि 63.75% अध्येताओं ने व्हाट्सऐप को शैक्षिक जानकारी साझा करने का सशक्त माध्यम माना, 3.75% अध्येताओं ने व्हाट्सऐप को ऑनलाइन अधिगम का महत्वपूर्ण प्लेटफार्म, 5% अध्येताओं प्रदत्त संकलन में सहायक एवं मात्र 27.5% अध्येताओं ने इसे एकाग्रता भंग करने वाला, समय बर्बाद करने वाला माना। पढ़ाई पर व्हाट्सऐप के नकारात्मक प्रभाव के सन्दर्भ में 61.25% अध्येताओं ने माना कि व्हाट्सऐप की वजह से उनकी पढ़ाई पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा है। वहीं दूसरी ओर 38.75 अध्येताओं ने माना कि

व्हाट्सऐप की वजह से उनकी पढ़ाई पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है जिसमें एकाग्रता में कमी, समय की बर्बादी, मनोवैज्ञानिक समस्याएं, अनावश्यक संदेशो से परेशानी मुख्य रूप से सम्मिलित हैं। प्राप्त प्रतिक्रियाओं से यह भी ज्ञात हुआ कि 62.5% अध्येताओं को लगता है कि व्हाट्सऐप की वजह से उनकी शैक्षिक प्रगति पर सकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। 80 अध्येताओं से व्हाट्सऐप अनइंस्टाल करने के विचार के संबंध में प्राप्त प्रतिक्रियाओं से ज्ञात हुआ कि 58.75% अध्येताओं के मन में कभी भी व्हाट्सऐप अनइंस्टाल करने का विचार नहीं आया। वहीं 41.25% अध्येताओं ने माना कि किसी-न-किसी कारण से उनके मन में कभी व्हाट्सऐप अनइंस्टाल करने का विचार आया था। जब उनसे व्हाट्सऐप अनइंस्टाल करने के कारणों पर प्रश्न किया गया तो प्राप्त प्रतिक्रियाओं से ज्ञात हुआ कि 12.5% अध्येताओं ने व्हाट्सऐप अनइंस्टाल करने का कारण एकाग्रता भंग होना माना, जबकि 18.75% अध्येताओं ने समय की बर्बादी को माना। 6.25% अध्येताओं ने अधिक संदेशों से परेशान होकर व्हाट्सऐप अनइंस्टाल किया। 2.5% अध्येताओं ने फ़ोन स्टोरेज भर जाने से, 6.25% अध्येताओं ने किसी से गुस्सा होने या लड़ाई होने के बाद एवं 12.5% अध्येताओं के मन में व्हाट्सऐप अनइंस्टाल करने का विचार अनावश्यक गलत संदेशों से परेशान होकर आया।

शोध परिणाम एवं निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध के अंतर्गत अध्यापक शिक्षा संस्थानों के 80 अध्येताओं की व्हाट्सऐप संलग्नता के फलस्वरूप उनके अकादमिक पक्ष पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करने के उपरांत यह पाया गया कि अध्यापक शिक्षा संस्थानों के अध्येताओं की व्हाट्सऐप संलग्नता के फलस्वरूप उनके अकादमिक पक्ष पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रभाव पड़े हैं। बाबुराव (2018) ने भी अपने शोध अध्ययन में बताया है कि व्हाट्सऐप विद्यार्थियों के शैक्षिक प्रदर्शन पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रभाव डालता है। सकारात्मक अकादमिक प्रभावों की बात करें तो उनमें संचार और सूचना साझा करने के साथ-साथ समूह परियोजनाओं को करने में सहायता, अध्ययन सामग्री मिलने, शिक्षकों से प्रश्न पूछने और सहपाठियों से सहायता मिलने जैसे प्रभाव मुख्य हैं। सितिन्काया (2017) ने अपने अध्ययन में बताया कि विद्यार्थियों ने अपने पाठ्यक्रमों में व्हाट्सऐप के उपयोग के प्रति सकारात्मक राय विकसित की है। उन्होंने अपने अन्य पाठ्यक्रमों में भी यही अभ्यास करने की मांग की। उन्होंने बताया कि छवियों (images) के साथ संदेश उनके सीखने के लिए अधिक प्रभावी थे। हालांकि प्रस्तुत शोध अध्ययन में कुछ अध्येताओं ने समूह के भीतर कुछ पोस्ट या निरर्थक पोस्ट पर प्रतिकूल राय अवश्य व्यक्त की थी। इसके विपरीत शोध में यह बात भी उभर कर सामने आयी है कि लगातार नोटिफिकेशन, गैर-शैक्षणिक सामग्री का अत्यधिक सेवन, और समूह चैट में अनावश्यक संलग्नता से अध्येताओं का ध्यान भंग हो रहा था, जिससे उनकी एकाग्रता में कमी भी आ रही थी और उनको समय प्रबंधन में चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा था। इसके परिणामस्वरूप पढ़ाई के लिए उपलब्ध समय कम पड़ जाता था, जिससे उनके शैक्षणिक परिणाम भी प्रभावित हो रहे थे। इसके अतिरिक्त, व्हाट्सऐप पर फैलने वाली गलत सूचना या अस्पष्ट जानकारी भी अध्येताओं के ज्ञान और समझ को प्रभावित कर रही थी। इसी वजह से अध्येताओं के मन में कई बार व्हाट्सऐप को अनइंस्टाल करने का विचार भी आया जिसके कई कारण थे जैसे

एकाग्रता भंग होना माना, समय की बर्बादी, अधिक संदेशों से परेशानी, फ़ोन स्टोरेज भर जाना, अनावश्यक गलत संदेशों से परेशानी एवं किसी से गुस्सा या लड़ाई होना आदि। भट्ट एवं अरशद (2016) और इरफ़ान एवं धिम्मर (2019) ने भी अपने अध्ययन में माना कि व्हाट्सऐप का युवाओं के अकादमिक पक्ष पर गहरा नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। यह उनकी शिक्षा, व्यवहार और दिनचर्या पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। इससे उनका समय तो बहुत बर्बाद होता ही है, साथ ही यह उनके वर्तनी कौशल और वाक्यों के व्याकरणिक निर्माण को खराब करता है। अंततः यह कहा जा सकता है कि व्हाट्सऐप की वजह से अध्येताओं के अकादमिक पक्ष पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रभाव पड़े हैं, जो इस बात पर निर्भर करते हैं कि अध्येता इसका उपयोग कितना एवं किस प्रकार से करता है। क्योंकि यह व्यक्ति-विशेष पर निर्भर करता है कि वह किन चीजों को प्रमुखता दे रहा है। रौतेला (2018) भी अपने अध्ययन में बताती हैं कि यदि व्हाट्सऐप का कुशल और प्रभावी तरीके से उपयोग किया जाए तो संचार का यह माध्यम शैक्षिक उपकरण के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

शैक्षिक निहितार्थ

- प्रस्तुत शोध अध्ययन से प्राप्त परिणाम स्पष्ट रूप से यह दर्शाते हैं कि व्हाट्सऐप के कारण अध्येताओं के अकादमिक पक्ष पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रभाव पड़े हैं। अतः व्हाट्सऐप संलग्नता के सकारात्मक अकादमिक प्रभाव को संज्ञान में लेते हुए इसे शिक्षक एवं विद्यार्थी के मध्य प्रभावी सम्प्रेषण स्थापित करने के सार्थक माध्यम के रूप में देखा जा सकता है। इस अध्ययन द्वारा अध्यापक, विद्यार्थी एवं अभिभावक यह अंतर्दृष्टि विकसित कर सकते हैं कि वे भविष्य में इसे प्रभावी शिक्षण-अधिगम संसाधन के रूप में उपयोग कर सकें।
- परीक्षा की तिथियों, असाइनमेंट की समय सीमा और अन्य शैक्षणिक घोषणाओं को जल्दी और सुगमतापूर्वक अध्येताओं तक पहुँचाया जा सकता है। शिक्षक व्हाट्सऐप ग्रुप में लेख, वीडियो, लिंक और अन्य डिजिटल सामग्री साझा कर सकते हैं जो कक्षा में पढ़ाए गए विषयों को और गहराई से समझने में मदद करेंगे । विद्यार्थी कहीं भी, किसी भी समय अपनी शैक्षिक समस्याओं के निवारण हेतु शिक्षक से संपर्क कर सकते हैं।
- प्रस्तुत शोध के अंतर्गत अध्येताओं पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों की पहचान होने से उन प्रभावों को कम करने के लिए सकारात्मक कदम उठाए जा सकते हैं।
- साथ ही अध्येताओं द्वारा व्हाट्सऐप पर व्यतीत किए गए निरर्थक समय को अर्थपूर्ण संलग्नता में परिवर्तित किया जा सकता है।
- प्रस्तुत अध्ययन यह समझने में भी मदद करता है कि अध्यापक शिक्षा संस्थानों में व्हाट्सऐप जैसे डिजिटल माध्यमों का उपयोग कैसे किया जाए ताकि इसके सकारात्मक प्रभावों को बढ़ाया जा सके और नकारात्मक प्रभावों को कम किया जा सके।

आगामी शोध हेतु सुझाव

प्रस्तुत शोध अध्ययन शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों पर उनकी व्हाट्सऐप संलग्नता के फलस्वरूप अकादमिक पक्ष पर पड़ने वाले प्रभाव के अध्ययन हेतु किया जा सकता है। साथ ही यह अध्ययन निजी एवं सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों की व्हाट्सऐप संलग्नता के तुलनात्मक अध्ययन हेतु भी किया जा सकता है। ऐसे में बालकों एवं बालिकाओं की व्हाट्सऐप संलग्नता का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है।

संदर्भ :-

इरफ़ान, एम., एवं धिम्मर, एस. (2019). इम्पैक्ट ऑफ व्हाट्सऐप मैसेंजर ऑन द यूनिवर्सिटी लेवल स्टूडेंट्स: अ साइकोलॉजिकल स्टडी. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ रिसर्च एंड एनालिटिकल*, (ई-आई .एस .एस.एन. 2348-1269, पी-आई.एस.एस.एन. 2349-5138), खंड 6(1), 572-586.

बाबुराव., एस. (2018). द इम्पैक्ट ऑफ व्हाट्सऐप मैसेंजर यूसेज ऑन स्टूडेंट्स परफॉर्मेन्स. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ ट्रेंड इन साइंटिफिक रिसर्च एंड डेवलपमेंट,* आई.एस.एस.एन.: 2456-6470, 191-196.

भट्ट, ए . एवं अरशद, एम. (2016). इम्पैक्ट ऑफ व्हाट्सऐप ऑन यूथ: अ सोशियोलॉजिकल स्टडी. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ मैनेजमेंट एंड सोशल साइंस*, (आई .एस .एस.एन.- 2445-2267), खंड 4(2), 376-386.

मिन्हास, एस., अहमद, एम. एवं उल्लाह, एफ. (2016). यूसेज ऑफ व्हाट्सऐप : अ स्टडी ऑफ यूनिवर्सिटी ऑफ पेशावर, पाकिस्तान. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ ह्यूमैनिटिस एंड सोशल साइंस इन्वेंशन*, आई.एस.एस.एन.(ऑनलाइन):2319 -7722, आई.एस.एस.एन.(प्रिंट): 2319 – 7714, खंड 5(7) , 71-73.

रौतेला, एस., सिंघल, टी. एवं येरपुडे, एस. (2018). एन इनसाइट ईंटो द चेंजिंग वर्ल्ड ऑफ कम्युनिकेशन : अ जेनेरिक स्टडी ऑफ अंडरग्रेजुएट स्टूडेंट्स परसेप्शन ऑफ व्हाट्सऐप एंड इट्स यूसेज. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ एप्लाइड इंजीनियरिंग रिसर्च*, आई.एस.एस.एन.: 0973-4562, खंड 13(5), 2213-2224.

वीणा, जी. एवं लोकेश, एम. (2016). इफ़ेक्ट ऑफ़ व्हाट्सऐप मैसेंजर यूसेज अमोंग स्टूडेंट्स इन मंगलोर यूनिवर्सिटी : अ केस स्टडी. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ लाइब्रेरी एंड इनफार्मेशन स्टडीज*, आई.एस.एस.एन.: 2231-4911, खंड 6(2), 121-129.

शंमुगाप्रिया, एस. एवं प्रिया, ए. (2016). अ स्टडी ऑन इम्पैक्ट ऑफ यूजिंग व्हाट्सऐप ऑन रिडक्शन ऑफ स्ट्रेस. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ रिसर्च एंड मॉडर्न एजुकेशन*, (आई .एस .एस.एन.- 2455-5428), खंड 1(1), 66-79.

सितिन्काया., एल. (2017). द इम्पैक्ट ऑफ व्हाट्सऐप यूज़ ऑन सक्सेस इन एजुकेशन प्रॉसेस. *इंटरनेशनल रिव्यु ऑफ़ रिसर्च इन ओपन एंड डिस्ट्रिब्यूटेड लर्निंग*, खंड 18(7), 60-73.

https://en.wikipedia.org/wiki/WhatsApp

महर्षि पारस्कराचार्य मते संस्काराणां निरूपणम्

डॉ. जगदीश नारायण तिवारी*

sanskritamvande@gmail.com

सारांशः

एतस्मिन्ग्रन्थे महर्षेः पारस्कराचार्यस्य दृष्टिकोणेन संस्काराणां स्वरूपं, संख्या, उद्देश्यं च विस्तारपूर्वकं निरूपितम्। पारस्करगृह्यसूत्रे निर्दिष्टानि पाकयज्ञरूपदैवसंस्काराः, त्रयोदश ब्राह्मसंस्काराः च विवेच्य प्रस्तुताः। नवान्नप्राशन, श्रवणकर्म, आश्वयुजीकर्म, सीतायज्ञ इत्यादीनां कृषिसम्बद्धकर्माणां विधानं विशेषोपेक्षया वर्णितम्। तदनन्तरं गर्भाधानाद्यन्त्येष्टिपर्यन्तं त्रयोदश ब्राह्मसंस्काराः क्रमशः प्रतिपाद्य, तेषां प्रयोजनं, विधिविधानं, कालविभागश्च उल्लिखिताः। विवाहसंस्कारे विशेषतया वर्णानुपूर्व्याः, विवाहभेदाः, कन्यायाः योग्यताः च विवेचिताः। उपनयनसंस्कारे सावित्र्युपदेशस्य महत्त्वं, मन्त्रविभागश्च निरूपितम्। अन्ते, गृहकर्मानुष्ठानप्रसङ्गे पारस्करगृह्यसूत्रस्य सामयिकोपयोगिता दर्शिता।

मुख्यशब्दाः

संस्कारः, पारस्करगृह्यसूत्रम्, दैवसंस्काराः, ब्राह्मसंस्काराः, विवाहः, उपनयनम्, श्रवणकर्म, सीतायज्ञः, नवान्नप्राशनम्, अन्त्येष्टिः।

दैवसंस्कारान्तर्गतानि अनुष्ठानानि नवान्नेष्टिरूपमाग्रयणं कर्म, हेमन्त शिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीषु विहितानि श्राद्धकर्माणि, श्रावण्यां क्रियमाणं श्रवणा कर्म, एवमाश्वयुज्यामनुष्ठेयमाश्वयुजी कर्म, मार्गशीर्ष्यां विधीयमानंस्रस्तरारोहणाख्यां कर्म, अमावास्यायां क्रियमाणं पार्वणं, वेदानामुत्सर्जनात्मकमनुष्ठानमुत्सर्गनामधेयमित्यादीनि पाकयज्ञ दैव संस्कारादि शब्दै: निरुच्यन्ते।

पारस्कर गृह्यसूत्रस्य द्वितीय काण्डस्य चतुर्दश्यां कंडिकायां श्रवणाकर्मानुष्ठानं प्रोक्तम्। एतस्य कर्मणो विशेषोपयोग:सर्पभीतिवारणाय क्रियते। तद्योक्तमपि पारस्करसूत्रे-

स यावत् कामयेत् न सर्पा अभ्युपेयुरिति, तावत् सन्त तयोदधारया निवेशनं त्रि : परिषिञ्चन् परीयादपश्वेत-पदा जहीति द्वाभ्याम् ॥ (पा. गृ. सू . 2\14/19)

ततोsनु पञ्चदशकण्डिकायामिन्द्रदेवताप्रीणनात्मकं प्रौष्ठपद्याख्यमनुष्ठानं व्यरूपि। ततःषोडश्यां कंडिकायामाश्व युजीकर्मणो विधानं सुपदिष्टम। दध्याज्यरूपद्रव्यसंवृत्तत्वादिदं पृषातकं कर्मेत्यपि प्रोच्यते। अत्र गोमहिम्नो वृत्तमुपन्नम्। ततः परं कृषिजीविकानां हितार्थं सीतायज्ञः प्रोक्तः। यज्ञोऽयं शरदृतौ वसन्तर्तो च क्रमशः व्रीहिमयेन यवममेन च स्थाली पाकाभ्यामिज्यते। ततस्तृतीयकाण्डस्याद्यकंडिकायां नवान्नप्राशनस्य

* **सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, साहित्य विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा**

विधानमुपवर्णितम् ततो अनु द्वितीयकण्डिकाया-माग्रहायणीसंज्ञमनुष्ठानं निर्दिष्टम्। आग्रयण स्रस्तरारोहणाख्ययोरुभयोरेव कर्मणोराचरणात् कृषिकर्मसु साफल्ये लभ्यते। मार्गशीर्ष पूर्णिमायाः पश्चात_तत्सम्बद्धानि त्रीण्यष्टकाकर्माणि सम्पाद्यन्ते। ततो अनु अन्वष्टका शालाकर्मादीनां अपि विधानान्युपवर्णितानि। अतः परं मणिकावधान, उतूलपरिमेह शूलगवादीनि काम्यकर्माणि प्रतिपादितानि।

ब्राह्म संस्काराः -

ब्राह्मसंस्कारास्तु गर्भाधानादयः सन्ति। ते यथा व्यासदेवेन सम्प्रोक्ताः षोडश संख्याकाः

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च।
नामक्रिया निष्क्रमो अन्न प्राशनं वपन क्रिया।।
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भ क्रियाविधिः।
केशान्तःस्नान मुद्वाहो विवाहो अग्निपरिग्रहः।
त्रेताग्निसंग्रहश्चैव संस्काराः षोडशस्मृताः।
नवैताः कर्णवेधान्ता मन्त्रवर्ज्यं क्रिया विधौ।
विवाहो मन्त्रवन्तस्य शूद्रस्यामन्त्रतो दश ॥

महर्षिणा पारस्करेणाप्येते संस्कारा प्रायेणांगीकृताः। संस्काराणां संख्या महान्तं विवादमापन्नास्ति।

कैश्चिद् दश कैश्चित् त्रयोदश, अन्यैःषोडश, द्वाविंशतिः, पञ्चविंशतिः, चत्वारिंशदष्टचत्वारिंशच्च संस्काराःमन्यन्ते। पार- स्कराचार्यो न संस्कारवाहुल्यमेव समर्थितवान्, न चाल्पमेवापितु तेन मध्यम मार्गमलम्ब्य त्रयोदश संस्काराः तत् तत् स्थलेषु विवेचिताः। ते यथा -

1. विवाह	**2. गर्भाधान**	**3. पुंसवन**	**4. सीमन्तोन्नयन**
5. जातकर्म	**6. नामकरण**	**7. निष्क्रमण**	**8. अन्नप्राशन**
9. चूडाकरण	**10. उपनयन**	**11. केशान्त**	**12. समावर्तन**
13. अन्त्येष्टि।			

1-विवाह संस्कार:-

सर्वेष्वपि संस्कारेषु सर्वाधिको महत्वपूर्ण:संस्कारो अयमेव पत्नी धर्मार्थकामानां सिद्धे :श्रेष्ठतमं साधनं मन्यते। अत एव विवाहोत्यावश्यकः। मनुस्मृतौ यथा चोक्तमपि -

यथा वायु समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथागृहस्थमा श्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।।
यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनैवेह चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्जेष्ठाश्रमो गृही ॥
य सन्धार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।

सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः।।

विवाह संस्कारो ब्राह्म दैवार्ष प्राजापत्यादिभेदेनाष्टविधः तत्र ब्राह्मणानां कृते चत्वार एव प्रकाराःग्राह्य प्रोक्ताः। पारस्करेण वैवाहिक सन्दर्भेषु प्रकार, सगोत्रासगोत्र, प्रति-लोमाचार, आयु, कुलपरीक्षा, वधूवरयोर्योग्यतादिकस्य चर्चा तु न कृ ता, परं तेनान्तर्जातीयो विवाहो विकल्पेनाद्रियते। मुख्यतो वर्णानुपूर्व्येणानुलोमो विवाह एव तेन स्वीक्रियते। पारस्करगृह्यसूत्रे बालविवाहस्य समर्थनं न प्राप्यते। विवाह संस्कारे प्रोक्तस्यैकस्य मन्त्रस्यायमभिप्रायः यत् कन्या पञ्चवर्षं यावत् सोमेन, दशवर्षं यावद् गन्धर्वैः पञ्चदशवर्षं यावदग्निना गृह्यते, ततोऽनु एव कश्चित पुरुषस्तस्याः पतिर्भवितुमर्हति। पारस्करेण विवाहस्य विधानं महताऽग्बरेण स्वसूत्रे चर्चितम्।

2- गर्भाधान संस्कारः

विवाहानन्तरं वंशपरम्परा विवृद्ध्ये संस्कारोऽयमाचर्यते। अत्र स्मार्त विधिमूलकं कर्मकाण्डं सम्पाद्य समुचिते स्मृत्युदिते च काले पुत्रं कामयमानायां भार्यायां रेतो निषिच्यते। एतदेव कर्म गर्भाधान नाम्ना शास्त्रेषु प्रोक्तम्। गर्भः सन्धार्यते येन कर्मणा तद्गर्भाधानमित्यनुगतार्थं कर्मनामधेयम्। अनेनैव कर्मणा मानव परम्पराया:शास्त्रोदित:क्रमःविकासमाप्नोत्यतोऽस्य महत्वं परममस्ति।

3- पुंसवन संस्कारः

गर्भ स्थितेर्विनिश्चयानन्तरं क्रियमाणमिदं कर्मानुष्ठानं पुंसवन मित्यभिधीयते। धर्मशास्त्रिणां मतेनेदं गर्भसञ्चारात् प्रागेव सम्पाद्यते। प्रायेणास्य कालः गर्भस्थितेरनन्तरं द्वितीयमासादारभ्याष्टममासं यावद् भवति। अस्य संस्कारस्याचरणं सकृद् असकृद् वेति विषयोऽपि बहुमतः। तस्मात् स्वकुलरीत्येवात्रनुसर्तव्या। पारस्कर मते नायं संस्कारो द्वितीये तृतीये वा मासि क्रियते। क्षेत्र संस्कारात्मकमिदमनुष्ठानं पुष्यादिपुंनक्षत्रेषु क्रियते। अस्मिन् कर्मणि सुस्ना ता सुनाससाञ्च नारीं पुत्रकामामाहूय रात्रौ वटशुंगान् मृदुपत्राणि च पिष्ट्वा तन्नासिकायामाषिञ्चेत्। केचन आचार्या पृष्टे द्रव्ये कुशकण्टकसोमयोरपि सन्निवेशं वाञ्छन्ति।

4 -सीमन्तोन्नयन संस्कार:

सीमन्तिन्याः सीमन्तस्य (केशानां) उन्नयनादस्य संस्कारस्येयं संज्ञा। सीमन्त उन्नीयते यस्मिन् कर्मणि तत् सीमन्तोन्नयनमिति कर्मनामधेयम। आश्वलायनस्मृतावस्य संस्कारस्य महत्वं प्रयोजनं च समुचितरीत्या प्रतिपादितम्। संस्कारोऽयं प्रथम गर्भे षष्ठेऽष्टमे वा मासि विधीयते।

पत्न्या:प्रथमजं गर्भमत्तुकामा:सुदुर्भगा:।

आयान्ति काश्चिद् राक्षस्यो रुधिराशनतत्परा :।। आश्व./वी.मि. सं.प्र. 1/पृ. 172

तासां निरसनार्थाय श्रियमावाहयेत् पति:।

सीमन्तकरणीं लक्ष्मीं तामावहति मन्त्रत:।। पारस्कार गृ.सू. 1/15/3

5 - जातकर्म संस्कारः -

अस्य संस्कारस्याचरणं नालच्छेदनात् पूर्वमेव भवति स्म। पुत्रजन्मानन्तरं पिता पत्न्या समीपं गत्वा पुत्राननं विलोक्यात्मानमनृणीति मन्यमानः सचैल स्नानं विधाय नान्दी श्राद्धं कृत्वा जातकर्माचरति स्म। जातकर्मणो द्वौ विधी नितरां महत्वपूर्णौ स्त:। तत्राद्यो मेधा-जननसंज्ञो यस्मिन् शिशुं पिता सुवर्णशलाकयांगुल्या च मध्वाज्यमाज्यं वापि प्राशयति स्म। अपरश्चविधिरायु-ष्यकर्माभिधानोऽस्ति। अस्मिन् शिशोर्दक्षिणकर्ण निकटे पिता आयुष्यमन्त्रान् पठित्वा परमेश्वरं प्रति तस्य सार्वभौमिकं नैरुज्यं दीर्घायुष्यञ्च प्रार्थयतिस्म।

6- नामकरण संस्कारः

नामकरणाख्यः संस्कारः संस्कारेषु नितरां महत्वपूर्णो मन्यते अस्य महत्वमालक्ष्य वीरामित्रोदयकारो बृहस्पतिवचनेने दमभिनन्दितवान् -

नामाखिलस्यव्य व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः।
नाम्नैव कीर्तिं लभते मनुष्यः ततः प्रशस्ते खलु नामकर्म।।

पारस्करगृह्यसूत्रदिशा नामकरणे विवेकोऽयमस्ति - बालकस्य नाम द्वयक्षरं चतुरक्षरं वा भवेत्। कृदन्तं स्यात् न तद्धितम् भवेत्। कन्यायाः नाम तद्धितान्तं भवेत्। तच्च त्रयक्षरं पंचाक्षरं विषमाक्षरं वा भवेत्। ब्राह्मणादीनां जाति सूचक शब्दानां शर्मवर्म गुप्तानामपि पारस्करो निर्देशं कृतवान्। सामान्य नियमानुसारं दशमेऽहनि द्वादशेऽहनि वा बालकस्य नामकरणं भवति। केचन आचार्या वर्णक्रमेण दशद्वादश षोडशादिदिनसंख्यासु नामकरणं प्रवदन्ति। शास्त्रेषु प्रायेण एकाधिक नाम्नां निर्देशो अवाप्यते। तानि च नामानि – लौकिक दैविक नाक्षत्रमासिकानि नितराञ्चर्चितानि।

7-निष्क्रमणसंस्कारः

शिशोरयं संस्कार: सविधि सूर्यस्य प्रेक्षणादिकं विधाय गृहाद् बहिर्नयनादिरुप: पित्रा विधीयते। समयश्चास्य संस्कार धर्मशास्त्रिमतेन न समानोऽस्ति। क्वचिच्चतुर्थे मासि, क्वचित् तृतीये मासि, अन्यत्र द्वादशे दिवसे वापि निष्क्रमणविधिर्लभ्यते। प्रसंगे अस्मिन् कुलरीतिरेवानुसर्तव्या।

8- अन्नप्राशन संस्कारः

गृह्यसूत्रानुसारेणायं संस्कार:षष्ठे मासि समनुष्ठीयते। अन्नप्राशन संस्कारे प्राशनीयद्रव्येषु दधिमघुघृत मांसरस घृतोदन वि- विधपशुपक्षिणां मांसानि गृह्यसूत्रकारैः प्रतिपादितानि। अस्मिन् कर्मानुष्ठाने प्रथमत: आभ्युदयिक कर्माणि विधाय अन्नप्राशन संस्कारांगकर्मणामनुष्ठानं सविधि विधीयते स्म। ततः परं शिशुमादाय तत्पिता निवृत्तहोमादिकृत्यजातस्तं विविधान्नरसान् प्राशयति स्म। संस्कारोऽयमायुर्वेददृष्ट्याऽप्युचितोऽस्ति। आयुर्वेदज्ञै: सुश्रुतचरकादिमहर्षिभिरपि षष्ठे मासि शिशुं विरतस्तनीकृत्यान्नप्राशन समर्थितम्। मांसरसादिद्रव्याणां प्राशनं परवर्तिनि काले निषिद्धमभवत्।संप्रति तु केवलं मध्वाज्यस्य दध्याज्यस्य पायसस्य वा प्राशनार्थमुपयोगो भवति।

9-चूडाकरण संस्कार:

संस्कारोऽयं पारस्करदिशा वर्षान्ते वर्षत्रयावधौ वा सम्पाद्यते स्म। क्वचिदेतदपि विकल्पितं यदस्यानुष्ठानमुपवीत संस्कारकाले भवेत्। वेदेष्वस्य संस्कारस्य मन्त्राणां स्पष्टार्थकता सर्वातिशायिन्यस्ति। तेषामनुशीलनादिदं प्रतिभाति, यदेते मन्त्राश्चूडाकरणनिमित्तका एवेति।

10- उपनयन संस्कार:-

शिक्षणोद्देश्यक संस्कारेष्वन्यतमोऽयं संस्कारो ब्राह्मणादीनां द्विजत्व सिद्धये समाचर्यते स्म। संस्कारस्यास्य प्राणभूतमन्तस्तत्वं सावित्र्युपदेश आसीत्। यो द्विजानामैहिकामुष्मिकफलप्रदाने सर्वथा समर्थो मन्यते। पारस्करेणास्यकाल : एवमुक्तः – प्रसवानन्तरमष्टौ वर्षाण्यतीतानि यस्य एतादृशं ब्राह्मण बालक मुपनयेत्। एकादशे वर्षे क्षत्रियस्य द्वादशे वर्षे वैश्यस्योपनयनं कर्तव्यम्। उपनयनांगभूत कर्माणि च पारस्कर दिशा ब्राह्मणभोजन, केशवपन, मेखला बन्धन, दण्ड प्रदान, हृदयालम्भन, परिप्रश्न, तदुत्तर, सम्प्रदान, उपनयनापेक्षि होम कर्म, सावित्र्युपदेश, समिदा-धान, भैक्ष्यचर्या आचारोपदेश प्रभृति पारस्करे सूत्रे कर्माणि प्रतिपादयता महर्षिणा यथाधिकारं यथोचितरीत्या कर्मणां विश्लेषणमकारि। अत्रैव सूत्रकारेण ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां कृते मंत्रोपदेशे भेदोऽपि प्रतिपादितः। तत्र ब्राह्मणाय गायत्री क्षत्रियाय त्रिष्टुप् वैश्याय जगती च्छन्दोबद्धस्य मन्त्रस्योपदेशो विहितः। अथवा "सर्वेषां वा गायत्री" मित्यादिसूत्रेण गायत्र्या: प्रदाने विकल्पोऽपि प्रोक्तः। ब्रह्मचारिणाञ्चापि साधारणासाधारणभेदेन द्वैविध्यमत्र प्रदर्शितम्। अतिक्रान्त सा वित्रीकाणां व्रात्यानां बहिष्कृतिः संशुद्धिश्चाप्यत्र किञ्चिद् परामृष्टे। पारस्करगृह्यसूत्रेविवाहसंस्कारयज्ञोपवीतसंस्का रयोर्विधी सर्वाधिक विस्तारेण निरूपितौ स्तः।

11- केशान्त संस्कार:

केशान्तसंस्कारो ह्येकादशः। अस्मिन् संस्कारे प्रथमवारं केशश्मश्रु प्रभृतेर्वपनं क्रियते। अस्यैवापरं नाम गोदानमप्यस्ति। प्रायेण असौ षोडशे वर्षे सम्पाद्यते। केशान्त -संस्कारात् परं सांवत्सरिकं द्वादशाहं षडहं त्र्यहं वा ब्रह्मचर्य पालनं कर्तव्यं भवति। अस्य प्रयोजनं ब्रह्मचारिणे तेनादत्तव्रतानां पालनाय पुनः प्रेरणमिति आसीत्।

12- समावर्तन संस्कारः

संस्कारो अयं ब्रह्मचर्यव्रतस्य समाप्तेरनन्तरमनुष्ठीयते। समावर्तनं नाम वेदाध्ययनानन्तरं गुरुकुलात् स्वगृहागमनम्। अत्र वेदाध्ययनसमाप्तौ सम्पाद्यमानाया: स्नानप्रधानाया: क्रियायाः कारणात् प्राप्तविद्यो वटु:स्नातक इत्याख्यया व्यपदिश्यते। पारस्करेण स्नातकानां तैविध्यं प्रत्यपादि। प्रथमो विद्या स्नातक:, द्वितीयो व्रतस्नातक: तृतीयो विद्याव्रत स्नात्क:। ये विद्यार्थिनो विद्याप्राप्तये यतन्तोऽपि व्रतपरिपालने न समर्था भवन्ति स्म ते विद्यास्नातका:। ये च विद्यार्थिनो व्रतं निर्वहन्तोऽपि सकलां विद्यामननाप्यैव समावृत्ता:, भवान्ति स्म ते व्रतस्नातकाः। अन्ये च ये विद्यामवाप्य व्रतं च सम्यक्तया परिसमाप्य समावृत्ता अभूवन् ते सर्वश्रेष्टाः विद्याव्रतस्नातका इत्युच्यन्ते स्म। स्नातका:व्रतं विद्यां क्रिमव्यन्यतमं वा परिसमाप्य तात्कालिकमनुष्ठानं सम्माद्य गुरुंच्च दक्षिणादिभिः सन्तोष्य तदाज्ञया गृहं प्रति निवर्तन्ते स्म। समावर्तनानन्तरं वेदज्ञो व्रती च समावृत्तः स्नातक:समाजे सर्वश्रेष्ठां प्रतिष्ठामाप्नोति स्म। पारस्कर दिशा येषां कृते अर्घ्याद्युपचाराः कल्प्यन्ते, तेष्वन्यतमः स्नातकोऽपि भवति स्म।

षडघ्र्या भवन्ति, आचार्य, ऋत्विग्, वैवाह्यो, राजा, प्रिय:, स्नातक इति।। पा. गृ. सू. 1/3/1-2,

अस्मात् परमेव विद्यार्थिनां विवाह संस्कार: सम्पद्यते स्म। भारतीय समाजे स्नातकानां प्रतिष्ठा सर्वतोभावेनासीत्। किमधिकं स्नातका: राज्ञाऽपि सम्मान्यन्ते स्म।

13 - अन्त्येष्टि संस्कारः

आर्य जीवनस्यायमन्तिमः संस्कारः। अनेनैव सह असौ स्वकीयस्यैहिक जीवनस्यन्तिममध्यायं परिसमापयति स्म। अन्यसंस्कारवन्मृत्यूचित संस्कारोऽपि जीवनस्यांगमेव भवति। अनेन सम्बन्धितानां विधि विधानानां वर्णनं तृतीयाध्यायस्य दशमकण्डिकायां पारस्करेण अकारि। पारस्करेण शवयात्राकालिककृत्यानि, शवदाहस्य विधानं, मृतकस्य परिजनैराचरणीयकर्माणि, दाहानन्तरं करणीय विघयः, अस्थिचयनं श्राद्धकर्मादिकस्य सकल मरणोत्तर कृत्यजातस्य निरुपणे व्यधायि। पारस्करः द्वयोः संस्कारयो: विवाहान्त्यकर्मणोः लोकरीते: परमापेक्षांमप्रतिपादयन्नाह श्रुतिवाक्यम् – विवाहश्मशानयोर्ग्रामं प्राविशतादितिश्रुतेः। गृहकर्मानुष्ठानानां निर्देशनाय पारस्करगृह्यसूत्रं साम्प्रतमपि प्रासंगिकमस्ति।

निष्कर्षः

महर्षेः पारस्कराचार्यस्य गृह्यसूत्रं संस्कारानां विशिष्टनिर्णयात्मकं ग्रन्थरूपं प्रतियते। तेन संस्काराणां संख्या नातिविस्तीर्णा न च लघ्वी, अपितु मध्यममार्गेण त्रयोदश संस्काराः विवेचिताः। कृषिसंस्कृतेः परिपोषणाय दैवसंस्काराः च पारमार्थिकदृष्ट्या प्रयुक्ताः। पारस्करस्य दृष्ट्या संस्काराः केवलं धार्मिकविधिनः न सन्ति, अपितु सामाजिक-सांस्कृतिकजीवनस्य मूलाधारभूताः। गृहस्थजीवनं च समग्रसंस्कारप्रवृत्तेः केन्द्रबिन्दुरिति निष्कर्षे स्वीकृतम्।

संदर्भ :

1. गौड़, विद्याधर शर्मा. (1990). *कात्यायन श्रौतसूत्रम्* (द्वितीय संस्करण). दिल्ली: चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान.
2. मिश्र, जगदीश चन्द्र. (1991). *पारस्करगृह्यसूत्रम्* (प्रथम संस्करण). वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन.
3. मालवीय, सुधाकर. (1995). *पारस्करगृह्यसूत्रम्* (प्रथम संस्करण). वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान.
4. पाण्डेय, राजबली. (1995). *हिन्दू संस्कार* (पंचम संस्करण). वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन.
5. सहाय, राजवंश 'हीरा'. (2002). *संस्कृत वांगमय कोश* (चतुर्थ संस्करण). वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन.
6. उपाध्याय, बलदेव. (2006). *वैदिक साहित्य एवं संस्कृति* (पुनर्मुद्रण). वाराणसी: शारदा संस्थान.
7. त्रिपाठी, विंदहेश्वरी प्रसाद. (1980). *भारतीय कर्मकाण्ड स्वरूपाध्ययनम्* (प्रथम संस्करण). वाराणसी: सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय.
8. उपाध्याय, बलदेव. (1962). *आर्य संस्कृति के आधार ग्रन्थ* (प्रथम संस्करण). वाराणसी: नंदकिशोर एण्ड संस.
9. शास्त्री, हरगोविंद. (2007). *मनुस्मृतिः* (प्रथम संस्करण). वाराणसी: कृष्णदास संस्कृत सीरीज.
10. गीताप्रेस. (2000). *श्रीमद्भगवद्गीता*. गोरखपुर: गीताप्रेस.

आदिवासी महिलाओं की शैक्षिक और सामाजिक अस्मिता : संथाल जनजाति का एक अध्ययन

पिन्टू कुमार*

pintu687095@gmail.com

शोध सार

यह शोध पत्र बिहार राज्य के सहरसा जिला में निवास करने वाली आदिवासी महिलाओं की शैक्षिक और सामाजिक अस्मिता से संबंधित शोध अध्ययन पर आधारित है। संथाल जनजाति भारत के प्रमुख आदिवासी समुदायों में से एक है, जो मुख्य रूप से झारखंड,बिहार तथा पश्चिम बंगाल के कुछ जिलों में निवास करती है। इसके अतिरिक्त इनकी कुछ आबादी उड़ीसा, मध्य प्रदेश एवं असम में भी पाई जाती है। यह अध्ययन संथाल जनजाति की महिलाओं की शैक्षिक एवं सामाजिक स्थिति को जानने के उद्देश्य से किया गया है। इस शोध पत्र के अंतर्गत बिहार के सहरसा जिला से चयनित संथाल क्षेत्र के 30 महिलाओं से साक्षात्कार कर प्राथमिक आंकड़े एकत्र किए गए। अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि संथाली महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति अभी भी अत्यंत पिछड़ी हुई है। उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाली महिलाओं की संख्या नगण्य है। यद्यपि सरकार द्वारा जनजातीय कल्याण हेतु अनेक योजनाएं संचालित की जा रही हैं, किंतु जमीनी स्तर पर उनका लाभ अंतिम व्यक्ति तक नहीं पहुँच रहा है। विद्यालयों की दूरस्थ स्थानों पर स्थानांतरण एवं शैक्षणिक संसाधनों की कमी से शिक्षा व्यवस्था और भी कमजोर हो रही है। सामाजिक दृष्टि से, संथाली महिलाएं आज भी विभिन्न प्रकार के भेदभाव और सामाजिक बाधाओं का सामना करती हैं। वे अपनी कई इच्छाओं को दबा देती हैं। मजदूरी के दौरान प्रताड़ना जैसी समस्याएं भी सामने आती हैं। इन सबके बावजूद, संथाली महिलाएं घरेलू कार्यों और कृषि श्रम में सक्रिय भूमिका निभाती हैं तथा अपनी कर्मठता और साहस से समाज में योगदान देती हैं। यह अध्ययन न केवल उनकी चुनौतियों को उजागर करता है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि यदि उन्हें उचित अवसर और संसाधन उपलब्ध हों, तो वे समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

बीज शब्द :

आदिवासी महिला, संथाल जनजाति, शिक्षा, सामाजिक अस्मिता, मान्यताएँ

प्रस्तावना

संथाल जनजाति मुख्य रूप से झारखंड राज्य के साथ-साथ बिहार के कुछ जिलों में निवास करती है। इसके अलावे संथाल जनजाति पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, मध्य प्रदेश एवं असम में भी निवास करती है। जब हम झारखंड की बात करें तो यह प्रमुखतः संथाल परगना प्रमंडल एवं पश्चिमी व पूर्वी सिंहभूम, हजारीबाग, रामगढ़, धनबाद तथा गिरिडीह जिले में निवास करती है। इसके साथ ही संथाल जनजाति की कुछ आबादी बिहार राज्य के भागलपुर, पूर्णिया, मुंगेर तथा कोसी (सहरसा) प्रमंडल में भी निवास करती है।

* ***शोधार्थी***, **शिक्षा विभाग, शिक्षा विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा**

जनजाति के संबंध में विद्वानों के मत

डॉ. श्यामाचरण दुबे ने उचित लिखा है कि भारतीय संदर्भ में जनजाति की कोई निश्चित एवं संतोषजनक परिभाषा नहीं दी गई है। उन्होंने कुछ सूचकों का वर्णन किया है, जिनके आधार पर जनजातीय लोगों को भारत के अन्य लोगों से अलग किया जा सकता है। उन्होंने यह भी बताया कि आज अनुसूचित जनजातियों के रूप में वैधानिक दृष्टि से इन्हें सूचीबद्ध किया गया है परन्तु, यह सूचीकरण एक राजनैतिक तथ्य है ना कि मानव शाखीया इस भाँति भारतीय समाज बहुजातीय बहुधार्मिक और बहु-जनजातीय है।

इम्पीरियल गजेटियर के अनुसार "जनजातीय परिवार या परिवारों का ऐसा समुदाय है। जिसका एक सामान्य नाम होता है, जो एक सामान्य बोली बोलते हैं, जो एक सामान्य भू-भाग पर रहने का दावा करता हो और जो हमेशा अन्तर्विवाह नहीं करता, भले ही प्रारम्भकर्ता रहा हो।"

डॉ. मजुमदार के अनुसार "एक जनजाति अनेक परिवारों के समूह का एक संकलन होता है, जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिनके सदस्य एक निश्चित भू-भाग पर रहते हैं, सामान्य भाषा बोलते हैं और विवाह या उद्योग के विषय में कुछ निषेधों का पालन करते हैं, और एक निश्चित एवं उपयोगी आदान-प्रदान का परस्पर विकास करते हैं।"

रवीन्द्र नाथ मुखर्जी के अनुसार "एक जनजाति वह क्षेत्रीय समूह है जो भू-भाग, भाषा, सामाजिक नियम और आर्थिक कार्य आदि विषयों में एक समान्य के सूत्र में बंधा होता है।"

गिलिन एवं गिलिन के अनुसार "स्थानीय आदिम समूहों के किसी भी संग्रह को जो एक सामान्य क्षेत्र में रहता हों, एक सामान्य भाषा बोलता हो और एक सामान्य संस्कृति का अनुसरण करता हो, उसे जनजाति कहते हैं।"

डॉ. रिवर्स के अनुसार "जनजाति एक ऐसा सरल प्रकार का सामाजिक समूह है जिसके सदस्य सामान्य भाषा का प्रयोग करते हों तथा युद्ध आदि सामान्य उद्देश्यों के लिए सम्मिलित रूप से कार्य करते हों।"

साहित्यावलोकन

श्वेता (2016) ने ***एन एथनोग्राफिक स्टडी ऑन द संथाल ट्राइब इन इंडिया: नॉलेज बेस, कम्युनिकेशन एंड कल्चर*** विषय पर अपना अध्ययन किया। इनके अध्ययन का मुख्य उद्देश्य संस्थान के संस्कृति और समाज के मुख्य पहलू धर्म, स्वास्थ्य, त्यौहार, प्रशासन, महिला और अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखते हुए स्वदेशी संथल लोगों के अपने सामाजिक-सांस्कृतिक ढाँचे में जीवित अनुभवों को दस्तावेज के रूप में तैयार करना। संथाल द्वारा अपने सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन के प्रबंधन हेतु उपयोगी ज्ञान एवं जानकारी की पहचान करना। जिस माध्यम से समुदाय के सदस्यों द्वारा ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाया जाता है उसकी पहचान करना। अन्य समाजों के संपर्क में आने के कारण संथाल समाज में उभरती चलन की पहचान करना। संस्थान के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन पर स्वदेशी और नई संचार तकनीकों के प्रभाव और दायरे को जांचना था। इन्होंने अपने शोध कार्य गुणात्मक विधि के अंतर्गत नृजातीय अध्ययन किया था। इन्होंने अपना प्रदत्त संकलन उद्देश्यपूर्ण विधि से किया था; उपकरण के रूप में अवलोकन, फोटोग्राफी, वीडियो रिकॉर्डिंग एवं

अर्द्धसंरक्षित साक्षात्कार का उपयोग किया था। निष्कर्ष के तौर पर इन्होंने बताया कि संथाल समाज के संस्कृति के मूल को बदलने में विसंस्कृतिकरण, सांस्कृतिक अलगाव, विरूपीकरण, ईसाईकरण के साथ-साथ हिंदूकरण एवं इसके सांस्कृतिकरण का बहुत प्रभाव पड़ा है। इस तरह के प्रभाव से संथाल का बड़ा हिस्सा अपने मूल जीवन से कट चुका है। इनको अपने समुदाय के प्रति चिंता नहीं है। ये दूसरे के बहकावे में आ जाते हैं, इनके जीवन शैली पर बाहरी तथ्यों का भरपूर प्रभाव पड़ा है।

सिंह (2007) ने ***संथाल परगना का जनजातीय भूगोल: एक भौगोलिक अध्ययन*** विषय पर अपना शोध कार्य किया है। उनके अध्ययन का मुख्य उद्देश्य पिछड़ी जनजातियों के आर्थिक-सामाजिक स्थिति को ज्ञात कर उनके सर्वांगीण विकास के उपाय बताना था, बिहार से झारखंड के अलग होने से इनके विकास की संभावनाओं को जानना था, उनके अध्ययन का आधार जिला सहित प्रमंडल का मानचित्र, साहित्यिक कार्यों के लिए सामग्री विभिन्न पुस्तकालय विशेषकर बी.एच.यू.केंद्रीय पुस्तकालय, पटना सिन्हा पुस्तकालय, रांची विश्विद्यालय पुस्तकालय आदि से उपलब्ध किया जाएगा, चुने हुए गांव में जाकर जनजातियों का गहन अध्ययन किया जाएगा, विषय-वस्तु संबंधित फोटोग्राफी भी की जाएगी। प्रदत संकलन कर प्राप्त आंकड़ों को प्रयोगशाला में प्रोसेसिंग कर उनके नक्शा तथा चित्र बनाए जाएंगे। निष्कर्ष के तौर पर बताया है कि संथाल परगना के प्रत्येक क्षेत्र में जनजातियां निवास करती है, दुमका में सर्वाधिक पाए जाते हैं। संथाल परगना प्रमंडल का 39.89% जनजातियां यहां पाई जाती है। प्रमंडल में कुल गांव की संख्या 1043 है एवं 11 शहर हैं, जिसमें देवघर एवं साहेबगंज अच्छे शहर हैं। यहां के जनजातियों का रंग कालिमा लिए होता है, जो भूरे से बिल्कुल काले तक होता है। इनकी दाढ़ी प्रायः नहीं होती है पर इनके बाल मोटे तथा कुछ के घुंघराले होते हैं। संथालों का कद मध्यम होता है, पर शारीरिक बनावट गठीला तथा मजबूत होता है। गाल की हड्डी कुछ उभरी होती है। नाक साधारण चौड़ी तथा छोटी होती है। ये जीविकोपार्जन के लिए अनेक प्रकार के कार्य करते हैं- चारागाह तथा कृषि सहित पशुओं तथा वनस्पति का उपयोग, खनिज का खनन, उद्योग-धंधे यातायात, व्यापार तथा कला अपने आप पर आश्रित व्यक्ति, गृह सेवा एवं अव्यक्त धंधा करते हैं। प्रमंडल में बेरोजगारी की समस्या प्रबल है। ये खेतों में मजदूरी करते हैं। जन्म, विवाह और मृत्यु इनके प्रमुख संस्कार हैं। जीवनसाथी प्राप्त करने के लिए इनके कुछ विशेष तौर-तरीके हैं- सेवा द्वारा विवाह (Marriage by Service), खरीदारी द्वारा विवाह (Marriage by Purchase), विनियम द्वारा विवाह (Marriage by Exchange), बलपूर्वक विवाह (Marriage by Capture), परीक्षण द्वारा विवाह (Marriage by Trial) एवं आचारिक विवाह (Caremonial Marriage)। ये लोग मानते हैं कि मृत्यु मनुष्य के जीवन की अंतिम घटना होती है। आदिवासियों के अनुसार व्यक्ति का जीवन मृत्यु से ही समाप्त नहीं हो जाता। मृत व्यक्ति के शव संस्कार का उचित प्रबंध करने के अतिरिक्त उन्हें उनकी आत्मा के लिए भी समुचित प्रबंध करना पड़ता है। जनजातीय जीवन उत्साह, उमंग, संघर्ष एवं प्रेम का प्रतीक है। इनके जीवन में अनेक समस्याएँ भी हैं। ये ऋण ग्रस्तता एवं साहूकारों-महाजनों द्वारा शोषण, अस्थाई खेती, बेरोजगारी, गरीबी, बुरा स्वास्थ्य एवं शिक्षा के अभाव आदि के कारण समस्या में उलझे होते हैं।

ज्योत्सना (2005) ने ***संथाल जनजाति में राजनैतिक चेतना: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन*** विषय पर अपना शोध कार्य किया है। इनके अध्ययन का मुख्य उद्देश्य संथाल जनजाति के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक संगठन का अध्ययन करना, संथाल जनजाति के राजनैतिक संगठन का अध्ययन करना, संथाल जनजाति में नेतृत्व की भावना का अध्ययन करना, संथाल जनजाति के सरकार निर्माण में सहभागिता का अध्ययन करना, संथाल जनजाति एवं राजनेताओं के अंतसंबंधों का अध्ययन करना, संथाल जनजाति को सरकार द्वारा मिलने वाले सहयोग का अध्ययन करना, संथाल जनजाति में अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना एवं संथाल जनजाति के राजनैतिक चेतना के विकास पर औद्योगीकरण एवं संचार माध्यमों के प्रभाव का अध्ययन करना था। इन्होंने अपना शोध कार्य विवरणात्मक अध्ययन के रूप में किया है। जिसमें प्रदत संकलन के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया है। उपकरण के तौर पर अनुसूची का निर्माण किया गया। निष्कर्ष के तौर पर इन्होंने पाया कि संथाल जनजाति कम शिक्षित हैं, कम आयु वर्ग के बीच शिक्षा का प्रसार होने से उनमें राजनीतिक चिंतन भी है। वहीं संथाल जनजाति में ग्राम पंचायत के प्रति सहभागिता कम पाई जाती है। ये लोग अधिकांश श्रमिक संघ से जुड़े हैं। इनका राजनेताओं से संपर्क स्थापित नहीं हो पाता है।

पाण्डेय (2002) ने ***जनपद माल्दा (पश्चिम बंगाल) के संथाल जनजाति का सामाजिक-आर्थिक रूपांतरण*** विषय पर अपना शोध कार्य किया है। इनके शोध का मुख्य उद्देश्य माल्दा जनपद के संथाल जनजाति के सामाजिक-आर्थिक रूपांतरण की प्रक्रिया का अध्ययन करना, इस क्षेत्र की समस्याओं को प्रकाश में लाना, संथाल जनजाति के अंदर छुपे चातुर्य एवं गुणवत्ता की जानकारी प्राप्त कर वैज्ञानिकता प्रदान करने हेतु सुधारात्मक सुझाव प्रस्तुत करना, क्षेत्र के विकास की संभावनाओं का पता लगाना, सामाजिक-आर्थिक रूपांतरण की व्याख्या करते हुए विभिन्न योजनाओं द्वारा हुई प्रगति का मूल्यांकन करना, इस क्षेत्र के विकास हेतु सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक योजनाओं का प्रारूप प्रस्तुत करना था। इन्होंने अपने अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आंकड़ों का उपयोग किया है। इन्होंने अपने अध्ययन के निष्कर्ष के तौर पर बताया है कि व्यवसायिक संरचना में कृषि करनेवाले कृषक मजदूर की संख्या में वृद्धि हुई है, जो कि आर्थिक रूप से पिछड़ेपन का द्योतक है। साक्षरता में क्रमशः वृद्धि होती जा रही है, किंतु साक्षर व्यक्ति कृषि एवं उद्योगों के तरफ न जाकर नौकरी या अन्य सेवा में जाना पसंद करते हैं। सांस्कृतिक रूपांतरण से इनके अंधविश्वास एवं जादू-टोना में कुछ कमी आई है। सामाजिक व्यवहार में संथाल अपनी परंपराओं को विशेष प्राथमिकता देते हैं। इनमें एकांकी विवाह का प्रचलन है। संथाल संगीत एवं नृत्य में विशेष रूचि लेते हैं।

शोध का औचित्य एवं महत्व

शोध अध्ययन का मूल्यांकन उसकी उपादेयता, प्रासंगिकता के साथ-साथ नवीनता व वर्तमान काल में व्यवहारिक उपादेयता पर निर्भर करता है। अतः इस शोध कार्य के शीर्षक **आदिवासी महिलाओं की शैक्षिक और सामाजिक अस्मिता : संथाल जनजाति का एक अध्ययन** से ही यह बोध होता है कि

वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप यह एक औचित्यपूर्ण कार्य व भविष्य के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है। साथ ही यह विषय बिल्कुल नवीन व एक उम्दा कार्य भी है।

संक्रियात्मक परिभाषाएँ

- **आदिवासी महिला :-** इस शोध अध्ययन में आदिवासी महिला का तात्पर्य बिहार राज्य के सहरसा जिले के पुरीख पंचायत में निवास करने वाली संथाली महिलाओं से है।
- **शैक्षिक अस्मिता :-** इस शोध अध्ययन में शैक्षिक अस्मिता शब्द का तात्पर्य संथाल जनजाति की स्त्रियों के साक्षर अथवा शिक्षित होने से है।
- **सामाजिक अस्मिता :-** इस शोध अध्ययन में सामाजिक शब्द का तात्पर्य संथाल जनजाति के महिलाओं की समाज में स्थिति व पहचान से है।
- **संथाल जनजाति :-** इस शोध अध्ययन में संथाल जनजाति से तात्पर्य बिहार राज्य के सहरसा जिले के पुरीख पंचायत में निवास करने वाले जनजाति समुदाय से है।

शोध प्रश्न

- संथाल जनजाति की महिलाओं की शैक्षिक स्थिति क्या है?
- संथाल जनजाति की महिलाओं की सामाजिक स्थिति क्या है?

शोध उद्देश्य

- संथाल जनजाति की महिलाओं की शैक्षिक स्थिति का अध्ययन करना।
- संथाल जनजाति की महिलाओं की सामाजिक स्थिति का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि

इस शोध अध्ययन में गुणात्मक शोध उपागम के अंतर्गत नृजातीय अध्ययन विधि को अपनाया गया है। जहाँ सहभागी अवलोकन के माध्यम से संथाल जनजाति की महिलाओं की शैक्षिक एवं सामाजिक अस्मिता को जानने का प्रयास किया गया है।

जनसंख्या

इस शोध अध्ययन में बिहार राज्य के सहरसा जिले के पुरीख पंचायत के संथाली महिलाओं को सम्मिलित किया गया है।

न्यादर्श

इस शोध अध्ययन में बिहार राज्य के सहरसा जिले के अंतर्गत आने वाले पुरीख पंचायत के 30 संथाली महिलाओं को सम्मिलित किया गया है।

न्यादर्शन :

इस शोध अध्ययन में न्यादर्श के चयन हेतु उद्देश्यपूर्ण विधि का उपयोग किया गया है।

शोध उपकरण एवं तकनीकी

इस शोध अध्ययन में स्वनिर्मित अर्द्ध-संरचित साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग कर प्रदत्त संकलन किया गया है।

आकड़ों का संकलन

इस शोध अध्ययन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रदत्त संकलन के लिए बिहार राज्य के सहरसा जिले के अंतर्गत पुरीख पंचायत के संथाली महिलाओं से मिलकर शोध उपकरण की सहायता से आवश्यक जानकारी प्राप्त कर शोध कार्य हेतु प्रदत्तों को संकलित किया गया।

शोध परिसीमन

इस शोध अध्ययन में बिहार राज्य के सहरसा जिले के अंतर्गत आने वाले पुरीख पंचायत के संथाली टोला के केवल संथाली महिलाओं को सम्मिलित किया गया है।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं निर्वचन

इस शोध अध्ययन में संकलित आंकड़ों का गुणात्मक विश्लेषण किया गया है। यह शोध प्रक्रिया का प्रमुख भाग है। संकलित आंकड़ों का वर्गीकरण उनकी प्रकृति की जांच कर, उचित विधियों के उपयोग से प्राप्त परिणामों की व्याख्या उद्देश्यवार निहित है।

प्रथम उद्देश्य

संथाल जनजाति की महिलाओं की शैक्षिक स्थिति का अध्ययन करना

इस शोध अध्ययन की पूर्ति हेतु संथाल जनजाति की महिलाओं की शैक्षिक स्थिति को जानने के लिए शिक्षा से संबंधित कुल सात प्रश्नों का विश्लेषण किया है, जो निम्नलिखित है-

1. आपकी शैक्षणिक योग्यता क्या है?

इस प्रश्न के जवाब में संथाली महिलाओं के द्वारा अपनी शैक्षिक की योग्यता को साझा करने में हिचकिचाहट सा प्रतीत हो रहा था। जबकि 30 महिलाओं में से 18 महिलाएं पाँचवी, 6 महिलाएं दसवीं, 4 महिलाएं इंटरमीडिएट एवं 2 महिलाएं स्नातक स्तर की शैक्षणिक योग्यता को धारण करती है। फिर भी उन्हें अपने शैक्षणिक योग्यता के अनुरूप रोजगार की उपलब्धता न होना एक भटकाव की राह उत्पन्न करता है।

2. आपके टोला में विद्यालय है या नहीं?

इस प्रश्न के जवाब में सभी महिलाओं का एक ही उत्तर प्राप्त होता है कि विद्यालय तो पहले पास के मैदान में बने सामुदायिक भवन में संचालित किया जा रहा था किंतु अब दूसरे गांव के विद्यालय में यहां के विद्यालय को स्थानांतरित कर दिया है, जो यहां से 3 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। दूरी होने की वजह से यहां के विद्यार्थी वहाँ नहीं के बराबर जाते हैं।

3. आपके टोला में आंगनबाड़ी केंद्र है या नहीं?

आंगनबाड़ी केंद्र का संचालन नदी के उस पार दूसरे टोला में होता है। जबकि नदी में वर्ष भर पानी का बहाव बना रहता है। जिस वजह से हमें उसे आंगनबाड़ी केंद्र पर जाने में बहुत कठिनाई होती है साथ ही नदी में डूबने का भय बना रहता है।

4. आपके विद्यालय में कितने संथाली शिक्षक हैं?

इस प्रश्न का भी जवाब सभी से एक समान प्राप्त होता है। "एक भी शिक्षक संथाली नहीं है" जिस वजह से हमें हमारी मातृभाषा में बात करने में बहुत ही परेशानी होती है।

5. आपके विद्यालय में कितनी महिला शिक्षिका है?

इस प्रश्न का जवाब थोड़ा संतोषजनक रहा। क्योंकि सभी ने अपने विद्यालय में एक महिला शिक्षक होने की बात बताई। जिससे उन्हें अपने व्यक्तिगत समस्याओं को साझा करने व उससे जुड़े सुझाव लेने में थोड़ी आसानी होती है।

6. क्या आपके विद्यालय में लड़कियों को अलग सुविधा दी जाती है?

इस प्रश्न के जवाब में बताया गया कि विद्यालय में महिलाओं के लिए सिर्फ अलग शौचालय की व्यवस्था की गई है। जो शौचालय महिलाओं के लिए है उसका उपयोग केवल विद्यालय की शिक्षिका द्वारा किया जाता है जिस वजह से हम सभी को काफी परेशानी होती है।

7. आपको विद्यालय में कौन-कौन सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है?

सर्वप्रथम इस प्रश्न के उत्तर में सभी का एक समान सुझाव या जवाब यह था कि आज के इस दौर में विद्यालय का इतना दूर होना काफी दुर्दशापूर्ण व्यवस्था को दर्शाता है। साथ ही विद्यालय में हमारे भाषा से संबंधित शिक्षकों का न होना हमारे लिए बहुत परेशानी की वजह साबित होते रहती है इसके अलावा विद्यालय

के शिक्षकों का हम आदिवासियों के प्रति नकारात्मक भाव से हमें विद्यालय में और असहजता का एहसास निरंतर होते रहता है।

प्रदत्त संकलन के दौरान का छायाचित्र

8 वीं पास महिला का साक्षात्कार लेते हुए

इंटरमीडिएट पास महिला का साक्षात्कार लेते हुए

द्वितीय उद्देश्य

संथाल जनजाति की महिलाओं की सामाजिक स्थिति का अध्ययन करना

प्रत्येक समाज में महिलाओं की स्थिति उस समाज विशेष में प्रचलित मान्यताओं, आदर्शों, विश्वासों अथवा मूल्य के आधार पर उन्हें सौंप दी जाती रही है। यह विश्वास, आदर्श अथवा मूल्य प्रायः प्रत्येक समाज में अलग-अलग होते हैं। इस प्रकार के सौंप दिए गए सामाजिक बंधनों से महिलाओं के जीवन शैली कई तरह से एक दायरे में सीमित होकर जीवन जीना या यूं कहे तो महिलाओं को बंधनों में रह कर अपने जीवन व्यतीत करने का आदत विकसित हो जाता है। इस शोध उद्देश की पूर्ति हेतु संथाल जनजाति की महिलाओं की सामाजिक स्थिति को जानने के लिए सामाजिक स्थिति से संबंधित कुल सात प्रश्नों का विश्लेषण किया है, जो निम्नलिखित है-

1. आपके परिवार में कुल कितने सदस्य हैं?

इस प्रश्न के उत्तर में सभी उत्तरदाताओं का मत अलग-अलग रहा क्योंकि सभी के परिवार का आकार अलग-अलग है। किसी के परिवार में कुल दो ही सदस्य हैं तो किसी के परिवार में 8 से 10 सदस्य तक साथ रहकर जीवन-यापन करते हैं।

2. आपका परिवार अकाल है या संयुक्त परिवार?

इस प्रश्न के उत्तर में भी दो तरह के उत्तर प्राप्त होते हैं। जिसमें अधिकांश उत्तर संयुक्त परिवार के रूप में प्राप्त होते हैं। अधिकांश परिवार संयुक्त रूप से एक ही छत के नीचे जीवन-यापन करते हैं। किंतु कुछ परिवार जो हाल ही में अपने माता-पिता से किसी अलगाव के वजह से दूरी बना कर पति-पत्नी एक साथ रहने का फैसला कर अपना एकल परिवार में गुजर-बसर करते हैं।

3. आपके अभिभावक क्या काम करते हैं?

इस प्रश्न के उत्तर में भी समानता को देखा जा सकता है। क्योंकि अधिकांश महिलाओं से प्राप्त उत्तर में जो प्रमुख कार्य का जिक्र उन्होंने किया है वो है "मजदूरी" अर्थात उनका कहना था कि उनके अभिभावक दूसरे के खेतों में मजदूरी कर जीवन-यापन के लिए संसाधन इकट्ठा करते हैं।

4. क्या आपको अपने घरेलू कार्यों को करने की इच्छा होती है?

इस प्रश्न के उत्तर के रूप में अधिकांश महिलाओं द्वारा बताया गया कि हम घरेलू कार्य नहीं करेंगे तो आखिर करेंगे ही क्या? और हमारे पास विकल्प ही कौन सा है? अतः उनका कहना था कि हम सभी अपने घरेलू कार्य अर्थात भोजन पकाना, भोजन पकाने हेतु जलावन इकट्ठा करना, घर-द्वार की साफ-सफाई करना, बच्चों का लालन-पालन करना इत्यादि कार्य को ही दिनचर्या के रूप में निर्वहन करते हैं।

5. क्या आपके परिवार में कोई भी नया कार्य करने से पहले आपसे पूछा जाता है?

इस प्रश्न के उत्तर में मुख्यतः दो तरह के पक्ष में बातें स्पष्ट हो रही थी। जिसमें एक पक्ष यह है कि जिस परिवार के सदस्य शिक्षित हो चुके हैं, उसे परिवार में कोई भी निर्णायक कार्य करने से पहले परिवार के सभी सदस्यों से राय ले लिया जाता है। उसके उपरांत ही किसी कार्य को आगे किया जाता है। किंतु इसी के दूसरे पक्ष में यह जवाब प्राप्त होता है कि जिस परिवार में आज भी लोग अशिक्षित हैं उस परिवार का जीविकोपार्जन मुख्य रूप से शराब निर्माण या मजदूरी पर निर्भर करता है। इस तरह के परिवार में बहुत ही कलह का माहौल बना रहता है। इस प्रकार के परिवार में कोई भी निर्णय सही ढंग से नहीं लिया जाता है।

6. क्या आपको ग्रामीण बैठकों में बुलाया जाता है?

ग्रामीण बैठक मुख्य रूप से समुदाय के मुखिया अर्थात मांझी के द्वारा बुलायी जाती है। जिसमें कोई आपसी झगड़ा या किसी भी प्रकार के कहा-सुनी का निपटारा किया जाता है। यदि इसमें कोई स्त्री से संबंधित प्रकरण होता है या कोई महिला अपनी मर्जी से किसी अन्य पुरुष से शादी कर लेती है तो इस तरह के प्रकरणों में महिलाओं से उसके मत पूछे जाते हैं।

7. सामाजिक स्थिति से जुड़े आपको किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है?

समाज में जीने के लिए सबसे पहले जो मुख्य तत्व जिसे हम रोटी, कपड़ा और मकान के नाम से जानते हैं। इसकी पूर्ति के लिए हमें मुख्य रूप से अपने परिवार के मुखिया या पति पर आश्रित रहना पड़ता है। जबकि अन्य समुदाय में महिलाओं को अनेक प्रकार की सुविधा उपलब्ध होती है। हमारे समुदाय में शिक्षित महिलाओं को भी किसी विशेष प्रकार की कोई सुविधा उपलब्ध नहीं है। साथ ही शिक्षित महिला भी उसी प्रकार अपना जीवन-यापन करती है जिस प्रकार एक अनपढ़ महिला मजदूरी करती है या अपने घरेलू कार्यों को निपटाती है। शिक्षित महिला के लिए भी रोजगार के उचित अवसर नहीं प्राप्त हो पाते हैं। साथ ही आसपास निवास करने वाले दूसरे समुदाय के लोगों द्वारा कई तरह से भेदभाव किया जाना या फिर हमें एक अलग दृष्टि से देखना आम बात है।

प्रदत्त संकलन के दौरान का छायाचित्र

संथाली टोला

महिलाओं से सामाजिक स्थिति संबंधित चर्चा

निष्कर्ष

इस शोध अध्ययन में संथाल जनजाति की महिलाओं की शैक्षणिक एवं सामाजिक स्थिति के बारे में अध्ययन किया है। जिसमें शोध उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुल 30 महिलाओं से साक्षात्कार लिया गया एवं उनसे प्राप्त जानकारी के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि संथाल जनजाति में आज भी शिक्षा का अभाव है। यदि हम उच्च शिक्षा की बात करें तो वह नाम मात्र का ही मालूम पड़ता है। जहां एक ओर आज 21वीं सदी में सरकार द्वारा जनजाति कल्याण हेतु अनेक नई-नई सुविधाओं की बात की जाती है, वही जब हम

जमीनी स्तर पर इसका अवलोकन करते हैं तो यह प्रतीत होता है कि सरकारी योजनाओं का लाभ आज भी अंतिम व्यक्ति तक पहुंच पाना बहुत ही कठिन होता जा रहा है। जहां एक ओर सरकारी विद्यालय में अनेकों नवीन सुविधाएं प्रदान करने की बात की जाती है। वहीं दूसरी तरफ जब हम अपने शोध क्षेत्र की दृष्टि से बात करें तो वर्तमान स्थिति में विद्यालय को दूर के दूसरे विद्यालय में स्थानांतरित कर संचालित किया जा रहा है। जिस वजह से वहां की शैक्षणिक व्यवस्था दिन-ब-दिन दुर्बल होती जा रही है।

वही जब हम संथाल जनजाति की महिलाओं की सामाजिक स्थिति को जानने के लिए संथाली महिलाओं से प्राप्त जानकारी के आधार पर बात करें तो यह स्पष्ट होता है कि आज भी संथाली महिलाओं में अनेक सारे भेदभाव को देखा जा सकता है। आज भी ये महिलाएं अपनी कई सारी इच्छाओं को दमन करती देखी जाती हैं। इनकी कई सारी समस्याओं को आम जनमानस भी साधारण तौर पर देख सकता है। जब ये महिलाएं पढ़-लिख कर समाज में कोई नवीन कार्य करना चाहती हैं तो इससे उन्हें बहुत सारी परेशानियों से गुजरना पड़ता है। जिस वजह से यह देख नई पीढ़ी का मनोबल यूं ही खंडित हो जाता है। समाज में जिस तरह आज भी पुरुष का वर्चस्व देखा जाता है, यह साफ तौर पर तब कठिनाई का रूप ले लेता है जब ये महिलाएं अपने रोजी-रोटी के लिए पास के दूसरे बड़े किसानों के खेतों में मजदूरी के लिए जाती हैं तो उन्हें कई तरह की प्रताड़ना का सामना करना पड़ता है।

अनेक तरह की परेशानियों के बावजूद ये महिलाएं अपने आपको घरेलू कार्यों में निपुण एवं परिवार के अन्य सदस्यों के साथ खेतों में भी कार्य कर जीवन-यापन करती है।

शैक्षिक निहितार्थ

ग्रामीण परिवेश के जनजातीय क्षेत्र में विशेष कर जब हम संथाली टोला में निवास करने वाली महिलाओं की बात करते हैं तो यहां की महिलाएं अनेक तरह की समस्याओं के बावजूद एक कर्मठ व सशक्त महिला के रूप में मालूम पड़ती हैं। जिसका योगदान समाज के अनेक कार्यों में देखा जाता रहा है। इस तरह की महिलाओं को अपने शोध कार्य में सम्मिलित कर एक उम्दा अनुभव व बहुत कुछ सीखने का अवसर प्राप्त हुआ है। इस तरह के कार्यों से शिक्षा जगत में नवीन आयाम का निर्धारण कर पाना संभव हो पाएगा। साथ ही अनेक तरह से यह शोध अध्ययन लाभप्रद साबित होगा।

सुझाव

- जनजाति के विकास के लिए शिक्षा की आवश्यकता के साथ-साथ अनेक तरह के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।
- संथाल जनजाति की स्त्रियों के लिए विशेष जागरूकता अभियान चलाने की जरूरत है।

- स्त्री शिक्षा के लिए विद्यालय भवन एवं अनेक मूलभूत सुविधाओं को यथोचित उपलब्ध करवाने की आवश्यकता है।
- जनजातीय क्षेत्र में आवासीय विद्यालय स्थापित करने की आवश्यकता है।
- सरकार द्वारा उपलब्ध योजनाओं के लिए जनजातीय क्षेत्रों में जागरूकता अभियान चलाने की आवश्यकता है।
- समाज के अन्य वर्गों के द्वारा संथाल जनजाति की स्त्रियों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।
- संथाली क्षेत्र में पूर्ण शराबबंदी पालन करवाने हेतु प्रशासन को अपनी चुस्त-दुरुस्त मुस्तेदी को प्रदर्शित करने की आवश्यकता है।

संदर्भ

ज्योत्सना. (2005). संथाल जनजाति में राजनैतिक चेतना : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन. पी-एच.डी. शोध-प्रबंध, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ. http://hdl.handle.net/10603/288261

पाण्डेय, पी. (2002). जनपद माल्दा (पश्चिम बंगाल) के संथाल जनजाति का सामाजिक-आर्थिक रूपांतरण. पी-एच.डी. शोध-प्रबंध, बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय. http://hdl.handle.net/10603/200925

सिंह, के., एन. (2007). संथाल परगना का जनजातीय भूगोल : एक भौगोलिक अध्ययन. पी-एच.डी. शोध-प्रबंध, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय. http://hdl.handle.net/10603/179133

श्वेता. (2016). एन एथनोग्राफिक स्टडी ऑन द संथाल ट्राइब इन इंडिया : नॉलेज बेस, कम्युनिकेशन एंड कल्चर. पी-एच.डी. शोध-प्रबंध, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय. http://hdl.handle.net/10603/283726

Socio-Economic assessment of Manjhi Fishing Community: A Case Study in Sankara Village of Raigarh District, Chhattisgarh

SANDEEP KUMAR SAHU*
sandeepsahu0698@gmail.com

Abstract

The study examines the socio-economic conditions of the Manjhi fishing tribal community in Sankara village, Raigarh district, Chhattisgarh. The Manjhi, traditionally engaged in riverine fishing and boating, face challenges due to limited access to modern fishing technologies, inadequate infrastructure and financial constraints. The present study was community specific and adopted a purposive sampling to select 60 households of the Manjhi tribe of the study area selected as a study population through interview and observation it was found that 71.66% were literate, a significant portion relies on traditional fishing methods with 83.33% using non mechanized boats and nets. Only 11.66% have received formal fishing training. Financially, 31.66% have accessed loans, primarily from cooperative banks and NABARD, still many remain dependent on moneylender. Annual income from fishing activities is modest, with 33.33% earning less than Rs. 10,000 and only 08.33% exceeding Rs. 50,000. The tribe reliance on intermediaries for fish sales, coupled with the absence of cold storage and transportation facilities, exacerbates their economic vulnerabilities. A case study of 28-year-old fishermen, Sunil Manjhi, highlights their challenges, illustrating the need for targeted interventions. Recommendations include the introduction of modern fishing equipment, expanded training programs, improved access to low interest loans, establishment of cold storage facilities and the formation of cooperatives to enhance market access and reduce intermediary dependence.

Keywords: *NABARD, Socio-economic, Traditional Fishing, fishing equipment.*

---

* **Doctoral Fellow, (UGC NET JRF), Department of Anthropology and Tribal Development, Guru Ghasidas Vishwavidyalaya (A Central University), Bilaspur Chhattisgarh.**

Introduction

In India, fisheries sector plays a vital role in the socio-economic development of the economy. Its role is significant in providing food & employment to millions of people and towards contributing to National GDP. Fish and fisheries are an important sector in most of the developing and developed countries of the world from the standpoint of income and employment generation. The role of fisheries in the Indian economy is gaining momentum as a result of the introduction of advanced techniques to increase the yield per unit area of water and due to its role in earning foreign exchange. Apart from this, the twin problems of unemployment and malnourishment in the rural sphere in India can be simultaneously addressed by proper and planned utilization of available local resources through the involvement of local people (Datta & Kundu, 2007). The nation's fisheries biodiversity includes a diverse range of biological and physical elements that sustain the livelihoods of millions of people. Resources for fisheries are found in several environments. The need for sustainable aquatic resource development is greater than ever before due to the expanding population and rising demand for fish protein. A strong National Fisheries Policy (NFP) framework that is founded on the fundamental principles of equity and equality, takes a people-centric and participatory approach, mainstreams gender, and upholds intergenerational equity is required to meet the compelling demands and guarantee a growth trajectory that meets the needs of today and leaves an equally better fishery for tomorrow. (Ghosh, 2019). In India, fisheries are a significant source of food, nutrition, jobs, and revenue. At the primary level, the industry supports over 16 million fishermen and fish growers, and nearly twice that many in the value chain. One of the healthier ways to reduce hunger and malnutrition is to eat fish, which is a cheap and abundant source of animal protein. As the government envisions, the industry has enormous potential to more than quadruple the incomes of fishermen and fish producers. More than 10% of the world's fish and shellfish species are found in India's rich and varied fisheries resources, which include deep seas, lakes, ponds, and rivers. (Banjare, 2018). In the fisheries sector, the socio-economic status of fishermen plays a key role in productive activities. But, fishery scientists and especially biologists hardly discuss the socio-economic problems of the fishing community. No one has time to listen, appreciate and assess the severity or magnitude of their personal, professional and other problems. These are responsible for age-old backwardness and poor performance of the fisherman, both as an individual and human resource. So there arises scarcity in the supply of Fish to its demand (Sinha, 2018). The Fishermen's social and technological backwardness could be the cause of

this. Therefore, appropriate action should be taken by the government, cooperatives, or fishing industry to utilize the resources at hand and enhance the socioeconomic circumstances of the fishermen. They lack marketing facilities, adequate storage facilities, and mechanized fishing equipment, among other things. They also lack information, education, and knowledge. Due to their precarious financial situation, they take out loans from moneylenders, who impose exorbitant interest rates. The goal of the research topic is to examine the way of life and living circumstances of fishermen. It is a thorough investigation of particular variables.. (Chakra, 2024).

Objectives

1. To find out the various socio-economic impacts on the Fishermen Community in Sankara village.
2. To observe the outcome of the economy on the livelihood of the Fishermen in Sankara village.
3. To find out the problem of the supply chain of fisheries and its export in the market.
4. To see the present status of the fishermen of the study village.

Literature Review

1. Scott, et.al, (1956) In their paper "Fisheries Resource Utilization and Policy," the authors demonstrated that collecting as many fish as possible would not always result in significant gains. Their work explains the economic implications of managing and exploiting fisheries, with a focus on the macroeconomic aspects of managing fisheries resources. However, they contend that commercial fishermen are logical economic beings. They collect fish as long as the price they receive at the duck does not beyond the expense of harvesting another fish.
2. Phetal, (1974) 'Credit and Indebtedness among South Kerala marine fishermen, Indian Social Institute, New Delhi. In his article, the author examined fishermen's requirements and the reasons behind their debt. He came to the conclusion that the Fishermen's community is severely underdeveloped economically.
3. Kurien and Matthew, (1982) The authors examined the effects of mechanization on fishing in their paper "Technological Change in Fishing-Its Impact on Fishermen." They contend that the species mix of the nation varies by area.

Prices for different species vary according to changes in market demand. They have looked at how technology advancements directly affect fish production, both in terms of fish number and quality.

4. Balachandran, (1990) In his paper, the author examined a few facets of "Fish composition, Fishery & its utilization in Kanwar." He has researched Kanwar traditional fishing techniques. The author has conducted a comparative analysis of fishing activities that are traditional and those that are mechanized. In addition to outlining the drawbacks of traditional fishing techniques, he attempted to demonstrate several kinds of traditional fishing equipment.
5. Balachandran, (1990) The author went into great detail on the different types of canned fish spoilage and their causes in his book "Fish canning, Principles & Practices." The particular technical issues with canned fish and shellfish have been examined, along with solutions.
6. Joshi, (1996) He attempts to illustrate several facets of the fishing sector in Gujarat State's Saurashtra region in his book "Economics of Fisheries." In his research, he looked at a number of different facets of fisheries production and marketing. He provided a thorough explanation of the 29 distribution routes and the function of middlemen in the marketing of fisheries. Fishermen's share of the customers rupee has decreased as a result of the extensive meddling of middlemen between them and the ultimate consumer, according to his research. The study also found that there was a dearth of market data regarding quality, pricing, demand, etc. He clarified how cooperative marketing of fisheries might help fishermen with their issues.
7. Korakandy, (1996) "Economics of Fisheries Management," a third-world critique, he reviews, categorizes, and discusses the theory and practice of fisheries management globally, with a focus on poor nations. This book includes a variety of theories, goals, methods, and standards related to fisheries and institution management. It has also closely monitored the several facets of fisheries management that have been promoted by the FAO and other global organizations, as well as the third world of its
8. Subbarao, (1996) The author of "Economics of Fisheries" examined Visakhapatnam as a case study of marine fisheries and mechanization. A comparative analysis of conventional and nonconventional boats has been conducted by the author. The author attempted to demonstrate how unconventional fishing gear affects both fish production and fishermen

socioeconomic circumstances. He has discussed the advantages and disadvantages of mechanization.

9. Allison and Ellis, (2001) studied 'The livelihoods approach and management of small-scale fisheries' and concluded that part-time fishing is preferable and the alternative livelihood sources raise the opportunity income of fishing, with potential conservation and economic benefits. Geographical mobility is necessary to sustain catches on mobile or fluctuating fish stocks that will give an economical benefit. The FAO code of conduct for responsible fisheries, with its provisions to protect small-scale fishers" livelihoods from conflict with larger-scale commercial interests, provides a necessary framework for maintaining or enlarging small-scale fisher folks "Action Space".
10. Pawaskar, (2002) in his article the study, "Socio-Economic status of Fishermen with particular reference to Kanwar Region," has concentrated on the several facets of fishermen and their activities, which mostly rely on the aquatic ecosystem. taking into account a number of effects on the Fisherman status, including social, political, economic, pollution, mechanization and urbanization.
11. Salagrama, (2006) He finds the outcome of seasonal and shocks in the fisheries-based livelihood and the importance and the influence of various policies, institutions, and processes in addressing the fishers need to cope with their vulnerable context in a meaningful manner.
12. Srikanthan, (2013) analyzed the 'impact of Climate Change on the Fishermen Livelihood Development' and classified the climate changes into two categories viz., predictable and unpredictable. The author suggested that the fishermen must be encouraged to save at least a minimum amount from their earnings, in the offseason in fishing they can engage some form of self-employment, and the government should pay their attention to recover the socio-economic condition of families affected by the unpredictable climate change, particularly the government should provide the necessary support to fishing laborers' families.
13. Banjaré (2018), in his M.Sc. dissertation at the Central Institute of Fisheries Education, explored the socio-economic challenges faced by fishing communities. His research emphasized the necessity for modernizing fishing practices, enhancing access to financial resources, and strengthening extension services to improve livelihoods. The study highlighted the importance of integrating traditional knowledge with contemporary techniques to ensure sustainable development in the fisheries sector.

14. Singh, Singh, and Kumar, (2019) analyzed the impact of COVID-19 on the economy. If we look we will find that India is the second-largest fish-producing country in the world, with 6.56 percent of global production. Around 14.5 million people are used to make themselves engaged in the fisheries and related activities (NFDB) in India.
15. Ghosh (2019) conducted an in-depth study on the social and economic conditions of Tribal populations in Dakshin Dinajpur District, West Bengal. The research highlighted persistent challenges such as low literacy rates, limited access to healthcare and inadequate infrastructure among tribal communities. It emphasized the need for targeted development policies to improve living standards and promote inclusive growth in the region.
16. Chakra (2024) presents a comprehensive compilation of current affairs in "Current Drishti Yearly 2024," covering events from January to December 2024. This resource serves as a useful tool for aspirants of competitive examinations, offering detailed analyses of national and international events, policy developments and socio-economic issues. Its structured format aids in systematic preparation and enhances awareness of contemporary affairs.
17. Satyanarayana, (2002) Fish farming on land has been thoroughly examined in his work "Fish Culture." He has discussed the significance of pisciculture in the Indian context in great depth. He has looked at a number of fish marketing topics, including assembly, processing, storage and shipping.

Research Methodology

About Study District: Raigarh district is a district of the Central Indian State of Chhattisgarh. Raigarh is known as the 'Cultural capital of Chhattisgarh', Raigarh is well-known for its classical music and "Kathak" dance, also known as Raigarh Gharana. One of the Chhattisgarh most well-known cultural festivals, Chakradhar Samaroh is renowned for its unique dance and music performances that showcase the State rich cultural legacy. According to the 2011 census, the Raigarh district has 1,493,984 residents.

About Study Village: Sankara is a Village in Baramkela Tehsil in the Raigarh District of Chhattisgarh State, India. According to the 2011 Population Census, Sankara Village has 3545 Population and 895 households. The Majhi community of Sankara village situated in Raigarh district of Chhattisgarh, was the purposefully selected for the study. The study population consisted of the 60 Majhi homes in the research region.

About Manjhi Tribe:

Manjhi, sometimes called as Majhwar and as Manjhi, Manjhi is a tribe in the Indian States of Madhya Pradesh and Bihar, where they are classified as a Scheduled Tribe. Manjhi has been taken which is quite socially and economically backward community. Manjhi people are one of the backward castes among the indigenous peoples. They have their own culture, language, and attire. They and the rivers are closely related. The main traditional occupation of the Manjhi people is boating and fishing in river.

Selection of Sample:

The present study was community-specific and adopted a purposive sampling to select 60 households of the Majhi community. The study was based on descriptive research design. The primary data served as the foundation for our investigation. The study village numerous fishermen households provided the basic data. Both male and female respondents across a range of age groups provided the data. Primary data was first-hand information gathered from the respondents of the Sankara village fishermen's community, i.e., directly to learn about the different social-economic effects of fishermen livelihoods in terms of a decline or rise in employment and income levels. A case study, observation and a direct interview schedule were used to gather the primary data. MS-Excel was used to handle the quantitative data, which would then be displayed using basic statistical tools including absolute numbers, averages and percentage distributions. Several descriptive formats were used to convey the qualitative data. The data has been analyzed and presented in tabular forms in order to make the findings meaningful.

Importance of the study

The study provides a thorough analysis of the socioeconomic circumstances of the Sankara village fishing community of the Manjhi tribe, emphasizing important facets such as gender roles, literacy and patterns of livelihood. It highlights the community reliance on conventional fishing techniques, slow acceptance of new technologies and insufficient training. Operational difficulties are clarified by examining pricing, transportation, cold storage and market access. A critical analysis is also conducted of financial access via co-operative banks and organizations like as NABARD. All things are considered, the study provides a useful foundation for organizing developmental interventions and modernization initiatives for fisheries.

Result and Discussion

Table No. 1- Distribution of Socio- Economic Profile of the Manjhi Tribe households		
S.N.	**Indicators**	**Responses**
	Name of the Study village	Sankara Village
	Total no. of households surveyed	60
1	**Total population studied (Gender wise)**	
1.1	Male	47 (78.33%)
1.2	Female	13 (21.66%)
2	**Marital status**	
2.1	Married	52 (86.66%)
2.2	Unmarried	07 (11.66%)
2.3	Widow	01 (01.66%)
3	**Educational status**	
3.1	Literate	43 (71.66%)
3.2	Illiterate	17 (28.33%)
4	**Primary Occupation**	
4.1	Agriculture	60 (99.99%)
5	**Secondary occupation**	
5.1	Govt. Service	03 (5.00%)
5.2	Fishing	47 (73.33%)
3.3	Private Job	10 (16.66%)

Primary Survey, 2024

Table No. 1 shows the Socio- Economic Profile of the Manjhi tribe households. The study community was Manjhi tribe and selected household survey was 60 from the Sankara village. The data show 78.33% were males and 21.66% were females. The marital status was about 86.66% were married, 11.66% were unmarried and 01.66% were widow. 71.66% were literate and 28.33% were illiterate. In Manjhi tribe 99.99% people were engaged in agriculture as their primary occupation and 05.00%, 73.33% 16.66% people doing Govt. service, Fishing and Private job respectively as their secondary occupation.

Table No. 2 Distribution pattern on household fishing activities and Techniques Assessment		
S.N.	**Indicators**	**Responses**
1	**Catching Fish**	
1.1	At River shore	49 (81.66%)
1.2	House Premises	08 (13.33%)
1.3	Social premises	03 (05.00%)
2	**Methods/Techniques adopted for Catching Fish**	
2.1	Modern boat and Fishing Net	07 (11.66%)
2.2	Traditional boat and Fishing Net	53 (83.33%)
3	**Season wise fishery**	
3.1	Rainy Season	09 (15.00%)
3.2	Winter	13 (21.66%)
3.3	Summer	21(35.00%)
3.4	All Seasonal	17 (28.33%)
4	**Distance Coverage for Fishing collection**	
4.1	Own House	08 (13.33%)
4.2	01to 05 km	39 (65.00%)
4.3	06 to 10 km	13 (21.66%)
5	**Purchase boat for Fishing**	
5.1	No Boat purchase	15 (25.00%)
5.2	Less than 1000 to 5000 Rs.	11 (18.33%)
5.3	5000 to 10000 Rs.	25 (41.66%)
5.4	More than 10000 Rs.	09 (15.00%)
6	**Training program adopted by Respondent**	
6.1	Yes	07 (11.66%)
6.2	No	53 (88.33%)

Primary Survey, 2024

Table no. 2 shows the distribution pattern on household fishing activities and Techniques Assessment. This table shows fishing was done on the river shore by 81.66 % of Manjhi households, on their house premises by 13.33% and on social premises by 05.00%. Because 83.33% of the households used traditional boats and nets, while only 11.66% used modern technology, traditional ways predominated in their practices. Of those that fished, 15.00% exclusively fished during the rainy season, 21.66% in the

winter, 35% in the summer and 28.33% in all seasons. In term of distance travelled 13.33% were fishing close to their own house, 65.00% were travelling 1 to 5 km and 21.66% were traveling 6 to 10 km. Boat ownership varied greatly: 25.00% of the families bought no boat for fishing, 18.33% bought boats for less than Rs. 5,000, 41.66% invested between Rs. 5,000 to 10,000 and 15.00% bought boats for more than Rs. 10,000. The percentage of respondents who attended any training programs was a relatively low 11.66%, while the remainder 88.33% did not take part in any formal fishing related training.

Table No. 3 Distribution of any Loan Received by Manjhi households for fishery

S.N.	Indicators	Responses
1	**Loan Received**	
1.1	Yes	19 (31.66%)
1.2	No	41 (68.33%)
2	**Loan Provided by**	
2.1	NABARD Bank	04 (21.05%)
2.2	Cooperative Bank	10 (52.63%)
2.3	Money lender	05 (26.31%)
3	**Rate of Interest**	
3.1	0%	09 (47.36%)
3.2	01 to 02 %	06 (31.57%)
3.3	03 %	04 (21.05%)
4	**Taken loan for Fishery**	
4.1	Less than 10000 Rs	07 (36.84%)
4.2	10000 to 50000 Rs.	09 (47.36%)
4.3	More than 50000 Rs	03 (15.78%)
5	**Purpose for given money**	
5.1	For Boat	11 (57.89%)
5.2	For fishery	08 (42.10%)

Primary Survey, 2024

Table no.3 shows the distribution of any compensation or loan received by Manjhi household for fishery. 31.66% of Manjhi households were found to have taken a loan or compensation of any kind for their involvement in fishing, whereas 68.33% didn't taken any assistance at all. Among those who received financial assistance, NABARD bank provided 21.05% of the support, cooperative banks provided 52.63 and money lenders provided 26.31%. Of those who were offered loans 47.36% paid 0% interest,

31.57% paid interest between 1% to 2% and 21.05% paid interest at a rate of 3%. When it came to loan amounts, 36.84% of recipients received less than Rs. 10,000, 47.36% received between Rs. 10,000 to 50,000 and 15.87% received more than Rs. 50,000. Regarding the loan or compensation intended use, While 57.89% of respondents stated they were using the funds to purchase boats, 42.10% stated they were using them for other fishery-related purposes.

Table No. 4 Distribution of Market Availability by Manjhi households for fishery

S.N.	Indicators	Responses
1	**Catch of Fish in Quantity (Per Kg/Day)**	
1.1	Less than 5 Kg	29 (48.33%)
1.2	05 to 10 Kg	19 (31.66%)
1.3	More than 10 Kg	12 (20.00%)
2	**Sale of Fish**	
2.1	Local Village	21 (35.00%)
2.2	Market	27 (45.00%)
2.3	Third Party	12 (20.00%)
3	**Distance of Market (in Km)**	
3.1	Less than 1 Km	11 (18.33%)
3.2	01 to 05 Km	39 (65.00%)
3.3	More than 05 Km	10 (16.66%)
4	**Price of Fish Fixed by Respondents**	
4.1	Based on Market Supply and Demand	27 (45.00%)
4.2	By Wholesale Merchants	12 (20.00%)
4.3	By Individual Fish Sellers	21 (35.00%)
4	**Rate of Fish in Rs. (Per Kg)**	
4.1	80 to 100 Rs for local	15 (25.00%)
4.2	Market Prize 130 to 150 Rs	33 (55.00%)
4.3	Third party in bulk 50 to 80 Rs	12 (20.00%)
5	**Cold storage facility adopted by Respondents**	
5.1	Yes	13 (21.66%)
5.2	No	47 (78.33%)

6	**Storage equipment adopted by Respondents**	
6.1	Warehouse	04 (30.76%)
6.2	Cold Form	09 (69.23%)
7	**Use of transport for fish purchase**	
7.1	On foot	15 (25.00%)
7.2	Bicycle	18 (30.00%)
7.3	Motor Cycle	25 (41.66%)
7.4	Tempo	02 (03.33%)
8	**Earning by fish selling in previous year**	
8.1	<10000 Rs.	20 (33.33%)
8.2	10000 to 50000 Rs	35 (58.33%)
8.3	More than 50000 Rs.	05 (08.33%)
9	**Marketing problems faced by Respondents**	
9.1	Price Fluctuations	41 (68.33%)
9.2	Inadequacy of demand	07 (11.66%)
9.3	Lack of supporter	12 (20.00%)

Primary Survey, 2024

Table No. 4 shows the distribution of Market Availability by Manjhi households for fishery. Of Manjhi households, 48.33% caught less than 5 kg of fish per day, 31.66% caught between 5 and 10 kg and 20.00% caught >10 kg. Selling fish, 35.00% of them did so locally in their villages, 45.00% did so in markets and 20.00% sold to third parties. Regarding the market distance, 18.33% of respondents were within 1 km, 65.00% were between 1 and 5 km and 16.66% were more than 5 km. Of those surveyed, 45.00% set fish pricing according to market supply and demand, 20.00% did so for wholesalers and 35.00% did so for individual fish sellers. Additionally, the sale prices varied: 20.00% were selling in bulk to third parties at Rs. 50 to 80 per kg, 55.00% were obtaining Rs. 130 to 150 in the market, and 25.00% were earning Rs. 80 to 100 per kg locally. 78.33% did not use cold storage facilities, compared to just 21.66% who did. Of those who used storage equipment, 69.23% used cold forms and 30.76% used warehouses. Just 3.33% of fish were transported by tempos, 25.00% were transported on foot, 30.00% by bicycle and 41.66% by motorcycle. According to the revenue from selling fish last year, 33.33% made less than Rs.10,000, 58.33% made between Rs.10,000 to 50,000 and just 8.33% made more than Rs. 50,000. Price

fluctuations were cited by 68.33% as the main marketing issue, followed by a lack of advocates 20% and insufficient demand 11.66%.

The Major Findings of the Study

In Sankara village, 60 Manjhi tribe households participated in the study. 78.33% of respondents were male and 21.66% were female. In terms of marital status, 86.66% were married, 11.66% unmarried and 1.66% widowed. About 71.66% were literate while 28.33% remained illiterate. 99.99% depended on agriculture as their primary occupation. As secondary occupation 73.33% engaged in fishing, 16.66% in private jobs and 05.00% in government jobs. Fishing was mostly done on river shores 81.66%, followed by house premises 13.33% and social premises 05.00%. 83.33% used traditional boats and nets, while only 11.66% uses modern technology. Seasonal fishing occurred in rainy 15.00%, winter 21.66%, summer 35.00% and all seasons 28.33%. 65.00% travelled 1 to 5 km, 21.66% went 6 to 10 km and 13.33% fished near home. 25.00% of households didn't own boats; 41.66% invested Rs. 5,000 to 10,000 in boats. Only 11.66% received fisheries training, while 88.33% lacked it. 31.66% received loans/compensation, mainly from cooperative banks 52.63%, NABARD 21.05% and moneylenders 26.31%. 47.36% of these loans were interest-free and 57.89% used them to purchase boats. Regarding loan , 47.36% received 10,000 to 50,000 and 15.87% got above Rs. 50,000. Daily fish trap was under 5 kg 48.33%, 5 to 10 kg 31.66% and above 10 kg 20.00%. Fish selling was done in markets 45.00%, locally 35.00% and to third parties 20.00%. 78.33% didn't use cold storage, and transport was mainly by motorcycle 41.66%, bicycle 30.00% and on foot 25.00%. Yearly income from fishing was less than Rs. 10,000 in 33.33% household, Rs.10,000 to 50,000 in 58.33% household and more than Rs. 50,000 income in 8.33% household. Key challenges for Manjhi Tribe included price fluctuation near about 68.33%, lack of market agents is about 20.00% and low demand is about 11.66%, showing traditional dependence and limited modernization.

Case study

General information: Sunil Manjhi Age 28 years, educational achievement B.A, His wife, Lata Manjhi, Education qualification till 12th, have one daughter, name Rashika, Age 4 years. *Occupation and Income*: The main occupation of the family is fishing, and they also work as labore. As a working labore they usually earn approximately 6000 Rs in a year. Their annual income is rupees 35000-50000. The fish found in Mahanadi

River where they use to collect fishes like, Ruhi (Rohu), Bhakur, (Catla) Balia (Baim), Chingari (Chingri), Tengni (Tengra), Shinghar (Singhara), Kalachi (Kalibaush), Mirkila (Mrigal). *Role of fishing:* They collect fish in mahanadi river. These fishing are one of the massive sources for their life and living. Different fishing nets uses for trap fishes like *Cast net:* It is a large circular type of net which is used to catch large and medium size fishes. The size of the net ranges from 1 cm- 2.5 cm. *Scoop nets:* It is made up of a rectangular bamboo-frame which is supported by a short handle of bamboo. It is very simple to use and commonly known as lift nets. Most of fishermen use this type of net in the Mahanadi. *Tongi jal:* The structure of this fishing gear is same as scoop net. But size is about 1-5 cm. *Dheki jal:* It is consisting of a triangular bamboo- frame which is supported by a simple and short bamboo handle whose size is about 1-1.5 cm.

Conclusion

The study focused on the social and economic status of Manjhi tribe that resides near the bank of river Mahanadi also discussed about the traditional method of fish trapping. It was found that most of the Manjhi tribe relies on traditional method for trapping the fish but some Manjhi tribe use to collect fish by using modern Techniques. The Traditional art of trapping fish is innate by birth in Manjhi tribe and also that passes one generation to another generation. In fishing the role of family that includes male, female and children are equally engaged. It was found from the study that there was no proper store room to store the fishes for the next time sell and also no any subsidy from the government. The Majhi tribe faces problems due to floods in the Mahanadi River and distance from modern technological connectivity and lack of proper management of government assistance is being seen as a problem. If these small shortcomings are removed then the Majhi community will become self-reliant for its development and move towards an employment-oriented society.

Suggestions

- To Promote the use of automated boats, contemporary fishing equipment and scientific fishing methods.
- To boost production and skills, formal fisheries training should also be expanded.
- To Reduce fish spoilage and increase fishermen revenue by creating cold storage facilities and making low-interest loans more easily accessible through cooperative banks and NABARD.

- To lessen reliance on middlemen and to put in place systems to stabilize fish prices and lower revenue volatility, assist fishermen in establishing direct market connections.
- Help fishermen form strong cooperatives or associations to protect their rights and increase awareness of government programs and subsidies.
- To strengthen the community and diversify sources of income, highlight the role that women have in fishing operations and decision-making.

References

Balachandran, A. P. (1990). Fish composition, fishery and its utilization in Kanwar.

Balachandran, K. K. (1990). Fish canning: Principles and practices. Central Institute of Fisheries Technology, Matasyapuri P.O., Cochin.

Bhaumik, U. (2001). Community based cooperative approach for management of fisheries in small reservoirs. In U. Bhaumik (Ed.), Management of fisheries in small reservoirs (CIFRI Bulletin No. 106, pp. 127–140).

Banjare, S. K. (2018). M.Sc. (Fisheries Extension) (Doctoral dissertation, Central Institute of Fisheries Education).

Chakra, S. S. G. (2024). Current Drishti Yearly 2024 (December Edition)(24129-M)(E-Book). Sam Samyik Ghatna Chakra.

Datta, S. K., & Kundu, R. (2007). Socio-economic appraisal of culture-based fisherman: A case study in West Bengal. Journal of Social Sciences, 15(3), 255–262.

Allison, E. H., & Ellis, F. (2001). The livelihoods approach and management of small-scale fisheries. Marine Policy, 25(5), 377–388.

Ghosh, A. (2019). Socio-economic condition of tribal population of Dakshin Dinajpur District, West Bengal (Doctoral dissertation, University of North Bengal).

Jhingran, V. G. (1975). Fish and fisheries of India (pp. 515–548). Hindustan Publishing Company Ltd.

Kurien, I., & Mathew, S. (1982). Technological change in fishing: Its impact on fishermen. Center for Development Studies, Trivandrum.

Joshi, M. V. (1996). Economics of fisheries. APH Publishing Corporation.

Nandi, N. C., & Parmanik, S. K. (1994). Crab and crab fisheries of Sunderban (pp. 130–143). Hindustan Publishing Corporation.

Platterarce, J. P. (1974). Credit and indebtedness among fishermen of South Kerala. Indian Social Institute.

Pawaskar, P. D. (2002). Socio-economic status of fishermen with particular reference to Kanwar region.

Rahim, K. M. B., & Padhy, M. (1994). Scope and constraints of inland pisciculture in West Bengal: A case study of Birbhum district. In S. Giriyappa (Ed.), Inland fisheries development (pp. 141–158). Daya Publishing House.

Korakandy, R. (1996). Economics of fisheries management. Daya Publishing House.

Scott, G., Gordan, H., Turvey, R., & Crutchfield, J. (1956). Fisheries resource utilization and policy.

Singh, A. K. (1982). Pashimbange machh chaser agragati, tar samasya o sambhavana (Bengali). Directorate of Fisheries, Government of West Bengal.

Subbarao, N. (1996). Economics of fisheries. Daya Publishing House.

Satyanarayana, V. (2002). Fish culture: A practical & comprehensive guide on inland fish farming.

Srikanthan, S. (2013). Impact of climate change on the fishermen’s livelihood development: A case study of villages in Coromandel Coast. IOSR Journal of Humanities and Social Science, 12(6), 49–54.

Singh, A. K., & Ahmad, S. H. (2003). Present status and future plans of fisheries development in residual Bihar. Fishing Chimes, 23(1), 99–106.

Shankar, S. (2010). An analysis of the knowledge level of fisherfolk about marine fisheries management and resource conservation (Master’s thesis, Central Institute of Fisheries Education, Mumbai, India).

Sinha, A. K. (2018). An economic analysis of resource use efficiency of potato production in Northern Hills of Chhattisgarh (Doctoral dissertation, Indira Gandhi Krishi Vishwavidyalaya, Raipur).

Salagrama, V. (2006). Integrated coastal management, Andhra Pradesh – Trends in poverty and livelihoods in coastal fishing communities of Orissa State, India (FAO Fisheries Technical Paper 490). Food and Agriculture Organization of the United Nations. ISBN 92-5-105566-1.

गोपालदास नीरज : कविता, गीत और संवेदना के सम्राट

अनुराग सिंह*
asingh1@hindi.du.ac.in

हिंदी काव्य-जगत में अनेक कवि हुए हैं, जिन्होंने अपनी लेखनी से जनमानस के हृदय में गहरी छाप छोड़ी किंतु गोपालदास नीरज का स्थान उन कवियों में अद्वितीय है, जिन्होंने साहित्यिक कविता और जनसामान्य की संवेदनाओं के बीच सेतु का कार्य किया। उन्होंने न केवल साहित्य को अपनी मधुर एवं सहज भाषा में समृद्ध किया, बल्कि फ़िल्मी गीतों के माध्यम से आम जनता के हृदय में अमिट स्थान बनाया। गोपालदास नीरज की कविता केवल शब्दों की सजावट नहीं, बल्कि हृदय की अनुभूति का संगीत है। उनके काव्य में प्रेम, वेदना, जीवन-दर्शन, मानवीय करुणा और सामाजिक चेतना का अद्भुत समन्वय मिलता है। उनकी लेखनी में एक ऐसा भावलोक है जो पाठक को भीतर तक झकझोर देता है, साथ ही जीवन से प्रेम करना भी सिखाता है। उन्होंने कविता को मंच और आम जन दोनों से जोड़ने का कार्य किया। उनकी कविताएँ न केवल गायी जाती हैं, बल्कि आत्मा में उतर जाती हैं। उनकी लेखनी में करुणा की धारा, प्रेम की मिठास और सामाजिक पीड़ा का गहन अनुभव मिलता है।

गोपालदास सक्सेना 'नीरज' का जन्म 4 जनवरी 1925 को उत्तर प्रदेश के इटावा ज़िले के पुरावली गाँव में हुआ था। उन्होंने इंटरमीडिएट तक की शिक्षा जनपद एटा से प्राप्त की और स्नातकोत्तर शिक्षा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से पूर्ण की। प्रारंभिक जीवन संघर्षपूर्ण रहा, किंतु साहित्य के प्रति अनुराग ने उन्हें हिंदी काव्य की ऊँचाइयों तक पहुँचा दिया। वे एक कुशल वक्ता, कवि, गीतकार और प्रोफेसर भी रहे। डॉ. नामवर सिंह, नीरज की भाषा-शैली पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं : "नीरज की कविताएँ शास्त्रीय अनुशासन और लोकधर्मी संवेदना का संगम हैं। वह कवि है, जो कविता को मंच से फिर से जनप्रिय बना सका।"[1] नीरज ने कविता को भावना की भाषा और गीत को जीवन की लय बना दिया। उनके गीतों में जीवन की कठिनाइयों, प्रेम की सूक्ष्मताओं, सामाजिक विषमताओं और आत्मिक संघर्षों की स्वाभाविक झलक मिलती है। नीरज की कविताओं का मूल स्वर है — संवेदना। यह संवेदना केवल किसी एक दिशा में नहीं, बल्कि बहुआयामी है। नीरज स्वंय कहते हैं कि –

"काँपती लौ, यह सिपाही, यह धुँआ यह काजल
उम्र सब अपनी इन्हें गीत बनाने में कटी,
कौन समझे मेरी आँखों की नमी का मतलब
ज़िंदगी वेद थी पर जिल्द बँधाने में कटी।।"[2]

* **शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

वे जहाँ प्रेम की कोमल अनुभूतियों को स्वर देते हैं, वहीं सामाजिक विसंगतियों पर भी पीड़ा और विरोध का स्वर मुखर करते हैं। नीरज के गीतों में करुणा, समर्पण, आशा और हताशा का अत्यंत सूक्ष्म और मार्मिक चित्रण मिलता है। उनकी बहुचर्चित कविता की पंक्तियाँ —

"छिप-छिप अश्रु बहाने वालों, मोती व्यर्थ लुटाने वालों,
कुछ सपनों के मर जाने से जीवन नहीं मरा करता है।"[3]

यह गीत न केवल प्रेम की विफलता का चित्रण है, बल्कि आशावाद की शक्ति का प्रतीक भी है। इसमें नीरज यह संदेश देते हैं कि जीवन केवल एक व्यक्ति के साथ जुड़ा हुआ नहीं है; एक सपना टूटने पर दूसरे सपनों की संभावना जीवित रहती है। यह भावुकता को समर्पण और प्रेरणा में बदल देने वाली संवेदना है। नीरज के गीत प्रेम को केवल लौकिक नहीं, बल्कि आत्मिक अनुभव के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनके गीतों में स्मृति, प्रतीक्षा, पीड़ा और आत्मीय मिलन की ध्वनि होती है -

"स्वप्न झरे फूल से,
मीत चुभे शूल से,
लुट गये सिंगार सभी बाग़ के बबूल से,
और हम खड़ेखड़े बहार देखते रहे।
कारवाँ गुज़र गया, गुबार देखते रहे !"[4]

यह पंक्ति प्रतीक है उस समाज की जो निष्क्रिय बना रह जाता है, जबकि समय आगे बढ़ता जाता है। यह केवल विगत प्रेम या संबंध का चित्रण नहीं है, बल्कि बदलते समय में व्यक्ति और समाज की उदासीनता की ओर भी इशारा करती है। प्रेम के साथ-साथ यह सामाजिक चेतना और ऐतिहासिक बोध का भी प्रमाण है। 'नीरज' मूलतः गीतकार है, भावुकता उनके व्यक्तित्व का एक अंग है। देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, आडम्बर, रूढ़ियों और साम्प्रदायिकता के विरूद्ध उनके मन में तीव्र आक्रोश है। पूँजीवादी तथा साम्राज्यवादी शक्तियों से इनको गहरा असंतोष है। वे निम्मवर्गीय समाज के दुःख दर्द को अपना समझकर उनके प्रति काव्य में सहानुभूति भी व्यक्त करते हैं। आनंद प्रकाश दीक्षित लिखते हैं – "वस्तुतः उनका स्वभाव स्वच्छंदतावादी कवि का है और इसलिए उनकी कविता का मिजाज भी भावुकतापूर्ण और आत्मपीडा बोध से युक्त है। स्वभाविक है कि उनकी कविता में उदासी और गमगीने के साथ मस्ती भी है।"[5] नीरज ने अपनी वेदना और गहराई के द्वारा मानव को समझने का प्रयास किया है। शोषितों के प्रति इनका दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण है। समाजवादी स्वर और साम्राज्यवाद विरोधी स्वर उनके काव्य में दिखाई देते हैं। उनके सामाजिक प्रेम की अभिव्यक्ति निम्नलिखित पंक्तियों में दिखाई देती है –

"है बहुत अँधियार अब सूरज निकलना चाहिए
जिस तरह से भी हो ये मौसम बदलना चाहिए
रोज़ जो चेहरे बदलते हैं लिबासों की तरह

अब जनाज़ा ज़ोर से उन का निकलना चाहिए
अब भी कुछ लोगो ने बेची है न अपनी आत्मा
ये पतन का सिलसिला कुछ और चलना चाहिए।।"[6]

उन्होंने भूख, बेकारी, अधर्म, अन्याय के विरोध में भी खुलकर लिखा है। वे पथ की कठिनाइयों से हार माननेवाले नहीं है। अपने मार्ग पर अविराम गति से बढ़ते जाने की उनमें अद्भुत क्षमता है। वे कहते हैं कि –

"हार न अपनी मानूंगा मैं
चाहे पथ में शूल बिछाओ
चाहे ज्वालामुखी बरसाओ,
किन्तु मुझे जब जाना ही है -
तलवारों की धारों पर भी, हँस कर पैर बढ़ा लूंगा मैं।"[7]

नीरज मानव प्रेम के ही गायक हैं उन्होंने लिखा है – "मेरी मान्यता है कि साहित्य के लिए मनुष्य से बड़ा और दूसरा सत्य संसार में नहीं है और उसे पा लेने में ही उसकी सार्थकता है, जो साहित्य मनुष्य के सुख – दुःख में साथीदार नहीं उससे मेरा विरोध है। मैं अपनी कविता के द्वारा मनुष्य बनकर मनुष्य तक पहुँचना चाहता हूँ। वही मेरे यात्री का आदि है और वहीं अंत।" [8]

"क्या करेगा प्यार वह भगवान को
क्या करेगा प्यार वह इंसान को
जन्म लेकर गोद में इंसान की
प्यार कर पाया न जो इंसान को।।"[9]

समाज की आर्थिक विषमता का एक दुष्परिणाम भुखमरी भी है। नीरज गरीबों और निर्वलों की दुर्दुशा देखकर क्रांतिकारी हो उठते हैं और ऐसे स्थान पर उनका का प्रगतिवादी रूप उभर कर सामने आया है। वे गरीबों के लिए दूसरा संविधान बनाने तक की वकालत करते हैं। वे मनुष्यों से इस आर्थिक विषमता के दुष्परिणाम भुखमरी से मरते देश को बचाने का आह्वान करते हैं। -

"मैं देख रहा हूँ भूख उग रही है गलियों – बाजारों में
मैं देख रहा हूँ ढूँढ रही बेकारी कफन मजारों में
मैं देख रहा हूँ कला बन गई है तिजोरियों की चाँवी
मैं देख रहा हूँ इतिहास कैद है चाँदी की दीवारों में
मैं देख रहा मुट्ठी भर दाने पर बिकता सिंदूर खड़ा।।" [10]

धार्मिक सांप्रदायिकता के बार में नीरज के विचार कवीर जैसे ही है। उनके काव्य में सर्वत्र मानव की ही प्रतिष्ठा है। उनका कवि व्यक्तित्व सभी धर्मों एवं कर्मकाण्डों से ऊपर है, ईश्वर ने तो एक ही मनुष्य जाति पैदा की है और जाति-पाँति का भेदभाव उस ईश्वर का अनादर है। समाज में धर्म और कर्म की महत्ता है। कर्म को धर्म से

भी बड़ा माना जाता है। कर्मकाण्ड से भी बढ़कर और प्यार है। मगर, मनुष्य में प्रेम भावना विकसित होने लगे तो यह दुनिया ही स्वर्ग के समान हो सकेगी।

"जाति-पाँति से बड़ा धर्म है,
धर्म-ध्यान से बड़ा कर्म है,
कर्मकांड से बड़ा मर्म है,
मगर सभी से बड़ा यहाँ यह छोटा सा इंसान है,
और अगर वह प्यार करे तो धरती स्वर्ग समान है।"[11]

हिंदी साहित्य में जिस तरह 'बच्चन' जी को 'हालावादी' कहा जाता है, उसी तरह नीरज जी को 'मृत्युवादी' कहा जाता है। कवि 'बच्चन' जी की हाला 'हालावाद' की प्रतीक थी, तो नीरज का मृत्युवाद कोई वाद न होकर मृत्युसंबंधी एक सशक्त विचार है। कवि नीरज के मृत्युसंबंधी विचार प्रारंभ में 1951 ई. में प्रकाशित 'बादर बरस गयो' नामक संग्रह में व्यक्त हुए। इसी संग्रह की 'मरण त्योहार', 'कब्र है धरती – कफन है आसमान' जैसे गीतों में कवि ने मृत्यु के विचार व्यक्त किए है। 1954 में प्रकाशित 'प्राणगीत' की 'जिंदगी थक गई – मौत चल रही', जैसे गीतों में यह विचार किया गया है। कवि की यह मृत्युवादी विचारधारा 'बादर बरस गयों' से 'आसावरी' तक ही सीमित रही। इसके बाद इस विचारधारा को कवि ने पूर्णतः छोड़ दिया। कवि नीरज का मृत्युवाद अंत में मानवतावाद की ओर बढ़ता है।

"श्यामल यमुना के केशों में गंगा करती वास है,
भोगी अंचल की छाया में सिसक रहा संन्यास है,
म्हावर – मेंहदी, काजल – कंधी गर्व तुझे जिन पर बडा
मुठ्ठी भर मिट्टी ही केवल इन सबका इतिहास है।"[12]

कवि नीरज की प्रेमभावना व्यापक है। उनका प्रेम नारी प्रेम से प्रारंभ होकर प्रकृतिप्रेम, राष्ट्रप्रेम के विविध सोपानों को पार करता हुआ विश्वप्रेम तक फैला हुआ दिखाई देता है। इसी कारण हिंदी साहित्य में नीरज का मानवतावादी दर्शन उल्लेखनीय है जिसके कारण उन्हें 'मानव प्रेम का गायक' कहा गया है। 'नीरज के लोकप्रिय गीत' यह काव्यसंग्रह 1967 ई. में प्रकाशित हुआ। नीरज ने स्वयं अपने 34 गीत संग्रहीत किये है। इस संग्रह में मुख्यतः 'आसावरी', 'प्राणगीत' तथा 'दर्द दिया है' इन संग्रहों के गीत संग्रहीत हैं। इसके अलावा 'नीरज के लोकप्रिय गीत' नाम से फिल्मी गीतों को संग्रह 1975 ई. में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह के गीत फिल्मों में गाये जाने के कारण काफी लोकप्रिय हुए । नीरज की फिल्मीगीत लेखन की शुरूआत 'नई उमरकी नई फसल' नामक फिल्म में गीत लिखकर हुई। इसमें इनकी कुछ कविताओं को लिया गया जिसे मोहम्मद रफी जी ने गाया था। उसमें मुख्यतः 'कारवाँ गुज़र गया' जैसे लोकप्रिय गीत के साथ – साथ 'देखती ही न दर्पन रहो प्राण तुम', 'आज की रात बडी नटखट है', 'जिस दिन तेरी याद न आई', आदि गीत सम्मिलित किये गये थे। नीरज जी ने 'तेरे मेरे सपने', 'मेरा नाम जोकर', 'प्रेम – पुजारी', 'शर्मीली' आदि फिल्मों के गीत लिखे है। 'तेरे मेरे सपने' फिल्म का निम्नलिखित गीत बहुत लोकप्रिय हुआ –

"जैसे राधाने माला जपी शाम की

मैने ओढ़ी चुनरिया तेरे नाम की।”[13]

फिल्म – तेरे मेरे सपने

राजकपूर कृत ‘मेरा नाम जोकर’ के लिए नीरज जी ने गीत दिया है उस मैं कवि दुनियाँ को सर्कस कहता है-

“कहता है जोकर सारा जमाना, आधी हकीकत आधा फसाना,
चश्मा उतारो, फिर देखो यारों, दुनिया नई है और चेहरा पुराना।”[14]

फिल्म मेरा नाम जोकर

‘प्यार’ की काव्यात्मक काव्यात्मक परिभाषा देते हुए नीरज अपने एक फिल्मी गीत में कहते हैं –

“शोखियों में घोला जाए फूलों का शवाब,
उस में फिर मिलाई जाये, थोडी – सी शराब,
होगा यूँ नशा जो तैयार – वो प्यार है।”[15]

फिल्म – प्रेम - पुजारी

‘नीरज के लोकप्रिय गीत’ नामक संकलन में निम्नलिखित गीतों ने काफी लोकप्रियता प्राप्त की है –

“हैलो, आप यहाँ आये किसलिए ? आपने बुलाया इललिए,
आये हैं तो काम भी बताइये, पहले ज़रा आप मुस्कुराइये।।”[16]

फिल्म – कल आज और कल

“लिखे जो ख़त तुझे वो तेरी याद में, हजारों रंग के नजारे बन गये।
सवेरा हो गया तो फूल बन गये जो रात आई तो सितारे बन गये।।”[17]

फिल्म – कन्यादान

“ऐ भाई, ज़रा देख कर चलो, आगे ही नहीं पीछे भी, दाये
ही नहीं बाये भी, ऊपर ही नहीं नीचे भी।।” [18]

फिल्म - मेरा नाम जोकर

“खिलते हैं गुल यहाँ, खिल के बिखरने को मिलतें हैं दिल
यहाँ, मिलके बिछुडने को।।”[19]

फिल्म – शर्मीली

गोपालदास नीरज हिंदी साहित्य की उस विशिष्ट परंपरा के प्रतिनिधि कवि हैं, जिन्होंने अपनी कविताओं, गीतों और लेखनी के माध्यम से जनमानस के हृदय में संवेदना की अमिट छाप छोड़ी। उनका साहित्य केवल सौंदर्यबोध या छंद-माधुर्य तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसमें मानवीय पीड़ा, जीवन की विसंगतियाँ, प्रेम की अनिवार्यता और सामाजिक चेतना का विराट स्वरूप समाहित रहा है। वे न केवल एक कवि थे, बल्कि एक संवेदनशील युगद्रष्टा भी थे जिन्होंने समय की धड़कनों को अपनी लेखनी से स्पंदित किया। नीरज की काव्य-दृष्टि में जहाँ एक ओर छायावादी कोमलता और गीतात्मक सौंदर्य मिलता है, वहीं दूसरी ओर

प्रगतिशील चेतना और यथार्थवादी दृष्टिकोण की स्पष्ट झलक भी देखी जा सकती है। उन्होंने प्रेम को केवल एक भावनात्मक आवेग न मानकर उसे एक मानवीय मूल्य, एक जीवन-दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया। उनके गीतों में एक ऐसी भाव-प्रवणता होती है जो सीधे हृदय में उतर जाती है। नीरज की कविता में समय, समाज और मनुष्य की पीड़ा का गहन चित्रण मिलता है। वे जीवन की कठिनाइयों से भागते नहीं, अपितु उन्हें अपनी रचनाओं में आत्मसात कर, संवेदनात्मक रूप में रूपांतरित करते हैं। उनकी कविता "कारवाँ गुजर गया, गुबार देखते रहे" एक युग की चेतना बनकर उभरी, जिसमें उन्होंने जीवन की निरंतरता, समय के परिवर्तन और मनुष्य की लाचारी को अत्यंत करुणात्मक रूप में व्यक्त किया। इसी प्रकार उनके गीतों में प्रेम, विरह, सौंदर्य और दर्शन का जो संगम मिलता है, वह उन्हें हिंदी साहित्य में अद्वितीय बनाता है। फ़िल्मी गीतों के माध्यम से उन्होंने आमजन से सीधा संवाद स्थापित किया और साहित्य को जनभाषा तथा जनसंवेदना के निकट लाकर खड़ा किया। यह एक ऐसा कार्य था, जो समकालीन गीतकारों के लिए प्रेरणास्रोत बन गया।

नीरज की रचनाएँ समय-काल की सीमाओं को लाँघ कर पाठकों और श्रोताओं के हृदय तक पहुँचने में सफल रही हैं। उन्होंने काव्य को एक दार्शनिक अंतर्दृष्टि दी, जिसमें जीवन के गूढ़ सत्य सरल और मधुर भाषा में व्यक्त हुए। यही कारण है कि वे जनकवि के साथ-साथ साहित्य के गंभीर अध्येताओं के भी प्रिय रहे।नीरज की भाषा में संस्कृतनिष्ठता के स्थान पर सरलता, प्रवाह और आधुनिक प्रयोगशीलता का सुंदर मेल मिलता है। वे क्लिष्टता के पक्षधर नहीं, बल्कि भाषा को जनभाषा के स्तर तक ले जाने वाले रचनाकार थे। उनकी कविताओं में प्रयुक्त प्रतीकों, बिंबों और उपमानों ने हिंदी कविता को एक नया संवेदनात्मक आयाम प्रदान किया। नीरज की रचनाएँ केवल भावनाओं का उद्गार नहीं, बल्कि एक प्रकार का जीवन-संवाद हैं।

अंततः, गोपालदास नीरज हिंदी कविता के उस आलोक स्तंभ की तरह हैं, जिनकी रचनाएँ युगों तक हिंदी साहित्य को प्रकाशित करती रहेंगी। वे केवल कवि नहीं, **संवेदना के सम्राट** थे, जिन्होंने शब्दों में आत्मा का संचार किया। उनका साहित्य आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना उनके समय में था। वे हिंदी काव्य परंपरा में एक जीवित अनुभव हैं, जिनकी लेखनी में मनुष्य की पीड़ा, प्रेम, आशा और संघर्ष की संपूर्ण यात्रा समाहित है।

संदर्भ

1. सिंह, नामवर. (2008). *समकालीन हिंदी कविता का इतिहास*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 75
2. नीरज, गोपालदास. (1960). *नीरज की पाती*. दिल्ली: आत्माराम एंड सन्स. पृ. 5
3. नीरज, गोपालदास. (1965). "छिप-छिप अश्रु बहाने वालों." *नीरज रचनावली* (खंड 1). दिल्ली: आत्माराम एंड सन्स.
4. नीरज, गोपालदास. (1965). "कारवां गुजर गया." *नीरज रचनावली* (खंड 2). दिल्ली: आत्माराम एंड सन्स.
5. दीक्षित, आनंद प्रकाश. "नीरज: मंच और कविता के बीच" (समीक्षा).

6. नीरज, गोपालदास. “है बहुत अँधियार अब सूरज निकलना चाहिए” [ग़ज़ल]. *नीरज रचनावली*. दिल्ली: आत्माराम एंड सन्स.

7. नीरज, गोपालदास. (1958). *नदी किनारे*. दिल्ली: आत्माराम एंड सन्स. पृ. 30

8. नीरज, गोपालदास. (1965). *दर्द दिया है* [भूमिका]. दिल्ली: आत्माराम एंड सन्स.

9. नीरज, गोपालदास. (1961). *प्राणगीत*. दिल्ली: आत्माराम एंड सन्स. पृ. 1

10. नीरज, गोपालदास. (1965). *नीरज रचनावली* (खंड 3). दिल्ली: आत्माराम एंड सन्स. पृ. 16

11. सुमन, क्षेमेन्द्र. (वर्ष अज्ञात). “आज के लोकप्रिय हिंदी कवि नीरज: कविता – धरती स्वर्ग समान है.” पृ. 72

12. नीरज, गोपालदास. (1968). *आसावरी काव्य संग्रह*. दिल्ली: आत्माराम एंड सन्स. पृ. 14

13. नीरज, गोपालदास. (1971). “तेरे मेरे सपने” [गीत]. *फिल्म तेरे मेरे सपने*. मुंबई: . पृ. 74

14. नीरज, गोपालदास. (1970). “मेरा नाम जोकर” [गीत]. *फिल्म मेरा नाम जोकर*. मुंबई: . पृ. 77

15. नीरज, गोपालदास. (1970). “प्रेम–पुजारी” [गीत]. *नीरज के लोकप्रिय गीत*. मुंबई: . पृ. 61

16. नीरज, गोपालदास. (1971). “कल आज और कल” [गीत]. *फिल्म कल आज और कल*. मुंबई: . पृ. 54

17. नीरज, गोपालदास. (1968). “कन्यादान” [गीत]. *फिल्म कन्यादान*. मुंबई: . पृ. 60

18. नीरज, गोपालदास. (1970). “मेरा नाम जोकर” [गीत]. *फिल्म मेरा नाम जोकर*. मुंबई: . पृ. 82

19. नीरज, गोपालदास. (1971). “शर्मीली” [गीत]. *फिल्म शर्मीली*. मुंबई: . पृ. 76

लाखों बार गगरियाँ फूटीं,
शिकन न आई पनघट पर,
लाखों बार किश्तियाँ डूबीं,
चहल-पहल वो ही है तट पर,
तम की उमर बढ़ाने वालों ! लौ की आयु घटाने वालों !
लाख करे पतझर कोशिश पर उपवन नहीं मरा करता है।
कुछ सपनों के मर जाने से, जीवन नहीं मरा करता है।

-गोपालदास ‘नीरज’

भगवतीचरण वर्मा और उनका साहित्यिक परिवेश

जुली कुमारी*

juleekumari540@gmail.com

सारांश

भगवतीचरण वर्मा आधुनिक हिंदी साहित्य के बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न रचनाकार थे, जिन्होंने कविता, नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी और निबंध सभी विधाओं में सशक्त लेखन किया। उनके साहित्य में गहन संवेदनशीलता, प्रगतिशील दृष्टिकोण, हास्य-व्यंग्य और सामाजिक यथार्थ का संतुलित समावेश मिलता है। प्रारंभिक दौर में उन्होंने कविताएँ लिखीं, जिनमें प्रेम, समाज, देश की स्थिति और शोषण के विरोध की भावनाएँ मुखर रहीं। बाद में वे कथा-साहित्य की ओर उन्मुख हुए और 'चित्रलेखा', 'सामर्थ्य और सीमा', 'वह फिर नहीं आई' जैसे उपन्यासों में अपनी कथन-कला की अद्वितीय छाप छोड़ी। उनके हास्य-व्यंग्य प्रधान उपन्यास और कहानियाँ जैसे 'अपने खिलौने', 'सबहिं नचावत राम गोसाई', 'लाला तिकड़मीलाल' आदि पाठकों का मनोरंजन करते हुए सामाजिक विकृतियों का उद्घाटन भी करती हैं। निबंधों में उन्होंने गंभीर चिंतन के साथ-साथ हल्के-फुल्के व्यंग्यपूर्ण लेख भी लिखे। साहित्य को जीवन की तरह व्यापक और बहुरंगी मानने वाले वर्मा ने किसी एक विधा या विषय तक स्वयं को सीमित नहीं किया। लगभग पचास वर्षों की साहित्य साधना में उन्होंने कवि, व्यंग्यकार, कथाकार और चिंतक—सभी रूपों में हिंदी साहित्य को समृद्ध किया।

मुख्य शब्द

भगवतीचरण वर्मा, आधुनिक हिंदी साहित्य, बहुमुखी प्रतिभा, कथा-साहित्य, कविता, हास्य-व्यंग्य, सामाजिक यथार्थ, प्रगतिशील दृष्टिकोण, चित्रलेखा, निबंध, संवेदनशीलता।

भगवतीचरण वर्मा आधुनिक हिंदी सहित्य के उन श्रेष्ठ कृतिकारों में प्रथम पंक्ति के अधिकारी हैं, जिन्होंने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के आलोक में हिंदी साहित्य के विस्तृत क्षितिज को देदीप्यमान किया है। वस्तुत: कथाकार के रूप में उनका हिंदी-साहित्य में विशिष्ट स्थान है। उन्होंने नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी आदि आधुनिक कथात्मक गद्य-साहित्य के सभी क्षेत्रों में सफल लेखनी चलाई।

अपनी साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण के संबंध में उनका कथन है – "मैं कहानीकार हूँ क्योंकि कहानी कहने की प्रवृत्ति मैंने पाई है। मैं कवि भी हूँ क्योंकि सपनों की रंगीनियों में खुद को खो देने की प्रवृत्ति भी मुझे मिली है। मैं मूल रूप से भावना-प्रधान प्राणी हूँ। लेकिन बौद्धिकता के क्षेत्र में मैं अपने को किसी से भी हीन नहीं समझ पाता। वैसे शास्त्रों के अध्ययन से मुझे अरुचि रही है, किताबों से अर्जित ज्ञान को मैं अपने जीवन में कभी महत्त्व नहीं दे पाया क्योंकि वह किताबों द्वारा अर्जित ज्ञान मेरा सत्य नहीं बन सका। सत्य जानने के लिए

* **शोध छात्रा, हिन्दी भवन, विश्व भारती, शान्तिनिकेतन. पिन 731235 (पश्चिम बंगाल)**

इस ज्ञान को अपने अनुभवों द्वारा ही अर्जित किया जाना चाहिए और अनुभव स्वयं में भावनात्मक संज्ञा है। शायद इसीलिए विशुद्ध अथवा वैज्ञानिक क्षेत्र को न अपनाकर मैंने भावना का क्षेत्र अपनाया है।"[१]

भगवतीचरण वर्मा बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार रहे हैं, साहित्य की लगभग सभी विधाओं में उन्होंने समान शक्ति एवं अधिकार के साथ लिखा है, अतः यह कहा जा सकता है कि उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के अंतर्गत कई रूप सम्मिलित हैं, जिनके प्रमुख पक्ष इस प्रकार हैं – कवि, हास्य-व्यंग्यकार, निबंधकार, नाटककार, एकांकीकार एवं कथाकार। इसके अतिरिक्त साहित्य-गोष्ठियों एवं विविध साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक गतिविधियों में वे सदैव रुचि लेते रहे हैं।

वे एक संवेदनशील व्यक्ति थे। यह संवेदनशीलता उनके निजी जीवन के प्रति थी और साथ ही दूसरों के प्रति भी। धीरे-धीरे उनकी यह संवेदनशीलता व्यक्तिगत सीमाओं का उल्लंघन कर व्यापक बन गई और उनकी साहित्यिक कृतियों में अभिव्यक्ति पाने लगी। विशेषकर उनकी कविताओं में यह संवेदनशीलता विभिन्न स्तरों एवं रूपों में मुखरित हुई है। उनकी कविताओं के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उनकी कविता का अनेक समसामयिक प्रवृत्तियों एवं वादों से संबंध रहा है। उन्होंने समय-समय पर देश व समाज की विभिन्न समस्याओं और अवश्यकताओं तथा अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के लिए अनेक विषयों पर कविताएँ भी लिखी। कभी देश की दयनीय स्थिति ने, तो कभी देश के सामाजिक शोषण ने उनके भावुक हृदय को इतनी ठेस पहुँचाई कि उनकी वाणी से कटु व्यंग्य और शोषित समाज की करुण अवस्था से विषाद घुलकर फूट पड़े। इस संदर्भ में उनकी अत्यंत प्रसिद्ध कविता 'भैंसागाड़ी' की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

"पशु बनकर नर पीस रहे जहाँ, नारियाँ जन रही हैं गुलाम,
पैदा होना, फिर मर जाना, यह है लोगों का एक काम।"[२]

इसी प्रकार उनकी अनेक प्रगतिशील विचारों से युक्त कविताओं में समाज में बिखरे फलते-फूलते शोषणकर्ताओं पर भी तीव्र व्यंग्य किया है।

इसके ठीक विपरीत उनकी कुछ कविताओं में प्रेमी का विह्वल हृदय बिखर पड़ा है। लेकिन कवि यह भी जानता है कि यह प्रेममय संसार एक भुलावा है, प्रेम एक सुनहरा सपना है जिसका परिणाम विनाश है –

"जीवन का अभिशाप लिए हूँ, पाप लिए हूँ यौवन का
और पहन रखी है मैंने, असफलता की जयमाला।"[३]

कालांतर में उन्होंने कविता को छोड़ कथा लेखन को पूर्णतया अपना लिया परंतु उनकी संवेदनशील कवि की मूल प्रकृति उनसे अलग न हो सकी। उनके कथा-साहित्य में उनका कवि रूप प्राय: झलकता दिखाई देता है। 'चित्रलेखा', 'सामर्थ्य और सीमा' तथा 'वह फिर नहीं आई' उपन्यासों में तो विशेष रूप से गद्य के प्रवाह के समानांतर कवि कि भावुकता गतिशील रही है। चित्रलेखा के सौंदर्य-चित्रण में उपन्यासकार के कवि रूप को स्पष्टतः देखा जा सकता है – "उसका मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति था और उसकी लहराती हुई वेणी नाग की भाँति थी, जो विष से त्रस्त होकर चंद्रमा से उसका अमृत छीनने को उससे लिपट गया हो।"[४]

'वह फिर नहीं आई' में रानी श्यामला की निष्प्रभ मन:स्थिति को काव्यात्मकता से व्यक्त किया है – "क्या आप कल्पना कर सकते हैं - जिसे पाला मारा गया हो, उस रक्त की जो ठण्डा पड़ गया हो, उस अस्तित्व की जो भावना विहीन हो? क्या आपने पानी को सड़ते देखा है? क्या आपने रुकी हुई हवा की घुटन का अनुभव किया है?"[५] इस प्रकार भगवतीचरण के व्यक्तित्व का भावुक पक्ष उनके साहित्य में सदैव कवि बनकर विद्यमान रहता है चाहे वह साहित्य की कोई भी विधा क्यों न हो।

भगवतीचरण वर्मा के व्यक्तित्व के अंतःपक्ष की चर्चा करते हुए हम लक्ष्य कर चुके हैं कि वे अपनी विनोदी प्रकृति के लिए अपने मित्रों के बीच अत्यंत प्रसिद्ध रहे हैं। उनके साहित्य में भी यह प्रवृत्ति दृष्टिगत की जा सकती है। उनके उपन्यासों में यत्र-तत्र ऐसे पात्रों की सर्जना की गई है जो अपने हँसी और ठहाकों से पाठकों का पर्याप्त मनोरंजन तो करते ही हैं, साथ ही समाज में व्याप्त शोषक तत्वों पर निर्मम व्यंग्य बाण भी छोड़ते हैं। भगवती बाबू के 'अपने खिलौने' एवं सबहिं नचावत राम गोसाई' तो संपूर्णतः हास्य-व्यंग्य प्रधान उपन्यास हैं। इसी प्रकार उनकी 'दो बाँके', 'प्रायश्चित', 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी', 'इंस्टालमेंट', 'अनसन', कुँवर साहब मर गए' और 'लाला तिकड़मीलाल' आदि कहानियों तथा 'सबसे बड़ा आदमी' और 'दो कलाकार' जैसे एकांकियों में भगवती बाबू की हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति का सुंदर निदर्शन हुआ है।

अपने कथा-साहित्य में हास्य की सृष्टि करने के लिए उन्होंने विभिन्न उपायों का प्रयोग किया है। कभी तो वे पात्रों का नामकरण ऐसा करते हैं जिन्हें पढ़कर हँसी आ जाती है। तिकड़मीलाल, रामखेलावन सिंह, कवि फटीश, जख्मी कुछ ऐसे ही नाम हैं। कभी-कभी पात्रों का स्वरूप वर्णन इस प्रकार करते हैं कि उस पात्र का ऐसा चित्र पाठक के मानस पटल पर अंकित हो जाता है जो उस पात्र के प्रत्येक क्रिया-कलाप पर हँसने को बाध्य कर देता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने ऐसी घटनाओं का समावेश भी किया है, जो पाठक के मन में हास्य की तरंगें तरंगायित कर देती हैं। उदाहरण स्वरूप 'लाला तिकड़मीलाल' शीर्षक कहानी का कुछ अंश देखिए – "लाला तिकड़मीलाल करीबन तीस वर्ष के गोल-मटोल जवान थे। लाला तिकड़मीलाल के मित्र उनकी उपमा फुटबॉल से देते हैं और उनके शत्रु उन्हें भैंसासुर का अवतार मानते हैं। उनका मारकीन का कुरता अपने सैकड़ों मुखों द्वारा उनसे गिड़गिड़ाकर प्रार्थना कर रहा था – मालिक, अब तो हम पर दया करो और शांतिपूर्वक हमें मरने दो। अब हममें शाक्ति नहीं है, जो हम तुम्हारी सेवा कर सकें। अब हम समाप्त हो चुके हैं।"[६]

'प्रायश्चित' और 'दो बाँके' कहानियों में क्रमशः प्रायश्चित की सारी तैयारी हो जाने पर बिल्ली का भाग जाना और लड़ाई की सारी तैयारी तथा मौखिक ललकारों के पश्चात् दोनों लखनवी बाँकों का एक-दूसरे को सलाम करके, छाती फुलाकर अपने शागिर्दों से आ मिलना, ऐसी घटनाएँ हैं जो कहानी के गंभीर वातावरण को एकदम हास्य में परिणत कर देती हैं। 'अनशन' शीर्षक कहानी में पाण्डेय जी जेल में अच्छा नाश्ता प्राप्त करने के लिए एक तकरीब खोज निकालते हैं। वे अनशन करने की घोषणा कर देते हैं। एक दिन भूखे रहने पर उन्हें 'फोर्स फीडिंग' की जाती है और उसके बाद से जब पाण्डेय जी को दूध पीने और खाने की आवश्यकता अनुभव होती है, तो वे जमीन पर लेटकर चिल्लाने लगते हैं कि वे दूध नहीं पीएँगे और जब उन्हें दूध जबरदस्ती

पिलाया जाता है तो वह आराम से दूध पीते पी लेते हैं। ऐसी घटनाएँ उनके कथा-साहित्य में विपुल मात्रा में मिलती हैं, जिनसे पाठकों का मनोरंजन तो होता ही है, समाज और व्यक्ति की अनेक प्रवृतियों का उद्घाटन भी हो जाता है।

अधिकांशतः उन्होंने अपने उपन्यासों में विचित्र घटनाओं एवं स्थितियों के द्वारा ही हास्य-व्यंग्य की सृष्टि की है तथापि उनकी वर्णन शैली कम हास्यजनक नहीं है। अनेक स्थलों पर उनकी विनोदी प्रकृति मुखरित हुई है। 'अपने खिलौने' में मीना के रूप का वर्णन करते हुए उन्होंने पेण्ट की जो चर्चा की है, वह अत्यंत हास्योत्पादक है – "चेहरे पर स्वास्थ्य की एक लालिमा, जो चेहरे पर गुलाबीपन की झलक पैदा कर देती है। अक्सर लोगों को शक हो जाता है कि उस चेहरे पर लिपाई हुई है। जी, पेण्ट के लिए हिन्दी में लिपाई शब्द का ही प्रयोग हो सकता है, लेकिन लोगों का ख्याल गलत है। चेहरे पर लिपाई-पुताई पढ़ी-लिखी लड़कियाँ नहीं करतीं ऐसा एक पढ़ी-लिखी लड़की ने ही मुझे बतलाया है।"[७] अतः हम कह सकते हैं कि उन्होंने अपने कथा-साहित्य में कहीं घटनाओं द्वारा, कहीं पात्रों द्वारा, तो कहीं अपनी हास्ययुक्त वर्णन शैली द्वारा पाठकों का मनोरंजन किया और समाज की विकृतियों का परोक्ष रूप से उद्घाटन भी किया।

उनको इस रूप में बहुत कम जाना जाता है, किंतु उसके साहित्यिक व्यक्तित्व का यह भी एक महत्वपूर्ण पक्ष है। उनकी सरल, पैनी एवं बेलाग लेखनी बड़ी कुशलता से विषय के मर्मस्थल को पकड़कर उसका रहस्य पाठक के समक्ष खोलकर रख देती है। उन्होंने 'साहित्य का स्रोत', 'भावना, बुद्धि और कर्म' जैसे गंभीर चिंतन युक्त निबंधों से लेकर 'बाबाबाजी', 'नेताबाजी' एवं 'साहित्यबाजी' जैसे मनोरंजक एवं व्यंग्यपूर्ण निबंध लिखकर अपनी बहुमुखी लेखन प्रतिभा का परिचय दिया है।

'भावना, बुद्धि और कर्म' निबंध के प्रारंभ में उन्होंने स्वीकार किया है – "शास्त्रीय ज्ञान की पुस्तकें पढ़ने में मेरा मन नहीं लगता, देर तक सोचने-विचारने में मुझे एक उलझन-सी होने लगती है। अध्ययन एवं चिंतन-मनन से मैं बहुत दूर रहा हूँ।"[८] स्वानुभूत भावों को वे प्रथमतः सूत्र शैली में व्यक्त करते हैं, तत्पश्चात् उसे पाठक के मन में उतारने के लिए, उसे अच्छी तरह स्पष्ट करने के लिए, उस सूत्र को अच्छी तरह से विश्लेषित करते हैं। इसी तथ्य को स्पष्ट करने के लिए वे आगे लिखते हैं – "बुद्धि स्वयं में निष्क्रिय है, पर वह कर्म से संबद्ध होने के कारण सक्रिय कहलाने लगती है। बुद्धि भावना का वहन करती है - भावना से पृथक बुद्धि का कोई अस्तित्व नहीं है।"[९]

नेताओं के त्याग और उनकी संख्या के बारे में वे कैसा मार्मिक व्यंग्य-बाण छोड़ते हैं – "जेल जाना, पिटना, गोली खाना, फाँसी चढ़ना, मकान और जायदाद की कुर्की यानी हर तरह की मुसीबत। इन मुसीबतों के बावजूद नेताओं की पौध बढ़ती ही जा रही है। महात्मा गाँधी ने जो अहिंसा और खादी का पाठ पढ़ाया तो उसने तो मज़ा ही दिखा दिया। गाँधी टोपी पहने हुए और खद्दर की वर्दी पहने हुए नेताओं की एक बहुत बड़ी फौज तैयार हो गई। देश के कोने-कोने में, इस भावना के पागलपन को लिए हुए।"[१०] नेतागिरी की विशेषताएँ

विशिष्ट रूप में उल्लेखनीय हैं - 'नेतागिरी एक निहायत कलात्मक पेशा है, जिसमें उपदेश, गुंडागर्दी और धोखाधड़ी तीनों ही बड़ी खूबी के साथ शामिल कर लिए गए हैं।'

उन्होंने अपने साहित्यक जीवन का सूत्रपात कविता लेखन से किया था, किंतु विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' के संपर्क से कथा लेखन में उनके अभिरुचि जागृत हुई। उन्होंने कहानियाँ लिखना प्रारंभ किया, उपन्यास भी लिखे और आज यह स्थिति है कि उनका कवि रूप बहुत पीछे छूट गया है, कथाकार रूप ही प्रधानतया लोकप्रिय है। कहानी कहने, उसे संगठित रूप में प्रस्तुत करने की अपूर्व प्रतिभा उनको मिली है।

उनका प्रथम उपन्यास 'पतन' सन् 1928 ई० में प्रकाशित हुआ किन्तु वह अधिक ख्याति नहीं प्राप्त कर सका। उनका द्वितीय उपन्यास 'चित्रलेखा' सन् 1934 ई० में प्रकाशित हुआ और उसने हिंदी उपन्यास जगत में धूम मचा दी। चित्रलेखा की महत्ता का ज्ञान हमें तब होता है जब हम देखते हैं कि वह उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद की सर्वाधिक प्रौढ़ कृति 'गोदान' से दो वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था। एक ओर एक मंझे कलाकार की अथक साधना और अनुभव थी, दूसरी ओर एक नवोदित कथाकार की निष्ठा एवं उत्साह। इसी उत्साह ने ऐसी सशक्त कृति को जन्म दिया कि आज भी वह अद्वितीय बनी हुई है।

जीवन की शाश्वत एवं अत्यंत महत्वपूर्ण समस्याओं की भाँति समाज की ज्वलंत समस्याओं पर भी अपने विचारों को वे प्रकट करते रहे हैं। एक चिंतनशील साहित्यकार होने के नाते समाज, धर्म, ईश्वर, राजनीति एवं साहित्य के विभिन्न पहलुओं पर उन्होंने बड़ी गहनता से विचार किया है, जिसकी अभिव्यक्ति उनके साहित्य में बराबर होती रही है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी भगवतीचरण वर्मा का जीवन वस्तुत: ताप-तनाव, संकल्प-संघर्ष और अंततः उत्कर्ष की गाथा है। हिंदी के सुप्रसिद्ध कथा शिल्पी श्रीलाल शुक्ल के शब्दों में "भगवतीचरण वर्मा आधुनिक भारतीय साहित्य के उन गिने-चुने कृतिकारों में रहे हैं जो साहित्य को जीवन के ही समान व्यापक और बहुरंगी समझकर उसमें जुड़ते हैं और एक या दो विधाओं या विषयों को अपनी सर्जना का माध्यम बनाकर अपनी संभावनाओं को सीमित नहीं होने देते।"[११] इन्होंने लगभग पचास वर्ष तक सहित्य साधना की। जीवन एवं परिवेश की विषम परिस्थितियों के फलस्वरूप उनमें कवि, तार्किक एवं व्यंग्यकार आदि रूपों का स्वतः समावेश हो गया है, जिनके समन्वित सदुपयोग से उनके साहित्य को ऊर्जा एवं विविधता प्राप्त होती रही।

निष्कर्ष

भगवतीचरण वर्मा का साहित्यिक व्यक्तित्व हिंदी साहित्य में अद्वितीय स्थान रखता है। उन्होंने अपने लेखन में मानव जीवन के विविध पक्षों—भावुकता, हास्य-व्यंग्य, सामाजिक यथार्थ, प्रेम, संघर्ष और दार्शनिक चिंतन—का प्रभावी समन्वय किया। उनकी रचनाएँ केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि समाज की समस्याओं और मानवीय संवेदनाओं का सजीव चित्रण भी हैं। कविता से लेकर उपन्यास और निबंध तक,

उन्होंने हर विधा में अपनी मौलिकता और रचनात्मक क्षमता का परिचय दिया। 'चित्रलेखा' जैसी कालजयी कृति उनकी कथन-कला की श्रेष्ठता को प्रमाणित करती है, वहीं व्यंग्यप्रधान कहानियाँ और निबंध उनकी सूक्ष्म दृष्टि और विनोदी स्वभाव को दर्शाते हैं। साहित्य को जीवन की तरह व्यापक और बहुरंगी मानने वाले वर्मा ने यह सिद्ध किया कि सृजनात्मकता का वास्तविक मूल्य उसकी बहुआयामी अभिव्यक्ति में निहित है। इस प्रकार उनका साहित्य आज भी प्रासंगिक है और हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर के रूप में सदैव स्मरणीय रहेगा।

संदर्भ –

1. झारी, कृष्णदेव. *भगवतीचरण वर्मा और उनका भूले-बिसरे चित्र*. पृ. 47
2. वर्मा, भगवतीचरण. *मेरी कविताएँ*. नई दिल्ली, भारत: राजकमल प्रकाशन. पृ. 172
3. शुक्ला, इन्दु. *साहित्यकार भगवतीचरण वर्मा*. पृ. 28
4. वर्मा, भगवतीचरण. (1936). *चित्रलेखा*. नई दिल्ली, भारत: राजकमल प्रकाशन. पृ. 37
5. वर्मा, भगवतीचरण. *वह फिर नहीं आई*. नई दिल्ली, भारत: राजकमल प्रकाशन. पृ. 86
6. वर्मा, भगवतीचरण. (1950). *मेरी कहानियाँ*. नई दिल्ली, भारत: राजकमल प्रकाशन. 39
7. वर्मा, भगवतीचरण. (1962). *अपने खिलौने*. नई दिल्ली, भारत: राजकमल प्रकाशन. पृ. 3
8. वर्मा, भगवतीचरण. *साहित्य की मान्यताएँ*. पृ. 1
9. वर्मा, भगवतीचरण. *साहित्य की मान्यताएँ*. पृ. 3
10. वर्मा, भगवतीचरण. धर्मयुग. पृ. 24
11. शुक्ल, श्रीलाल. *भगवतीचरण वर्मा*. पृ. 7

सामाजिक सरोकारों का कहानीकार : सुदर्शन

डॉ. अजीत कुमार सिंह*
ajitweb886@gmail.com

सारांश
यह शोधपत्र हिन्दी साहित्य के प्रमुख कथाकार सुदर्शन की रचनाओं में निहित सामाजिक यथार्थ और परिवर्तनशील चेतना पर केंद्रित है। लेखक ने कहानी विधा के विकासक्रम का संक्षिप्त परिचय देते हुए सुदर्शन को एक ऐसे कहानीकार के रूप में प्रस्तुत किया है जिनके कथ्य में सामाजिक अन्याय, शोषण, भ्रष्टाचार, वर्ग-संघर्ष, नारी-मुक्ति और मानवीय संवेदनाओं की गहरी अभिव्यक्ति मिलती है। हार की जीत, अठन्नी के चोर, मजदूर, काया-पलट, प्रेमतरु और पतितोद्धार जैसी कहानियों के उदाहरणों के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि सुदर्शन न केवल समाज की समस्याओं को उजागर करते हैं, बल्कि उनमें समाधान और नैतिक ऊर्जा का भी संचार करते हैं। उनकी कहानियाँ जनसामान्य के जीवनानुभवों से निकटता रखती हैं और पाठक को सामाजिक अन्याय के विरुद्ध खड़ा होने की प्रेरणा देती हैं।

मुख्य शब्द:
सुदर्शन, सामाजिक सरोकार, हिन्दी कहानी, यथार्थ चित्रण, नारी-मुक्ति, शोषण, भ्रष्टाचार, वर्ग-संघर्ष, मानवीय संवेदना, परिवर्तनशील चेतना।

मानव जन्म के साथ कथा कहानी का जन्म हुआ और मानव के विकास के साथ कहानी भी अनेक सोपानों को पार कर वर्तमान स्वरूप में समृद्ध साहित्यिक विधा के रूप में विद्यमान है। साहित्य के क्षेत्र में कहानी सबसे प्राचीन, सम्पन्न बहुविध लोकप्रिय विधा है। "कहानी, साहित्य का सबसे स्वाभाविक और अत्यंत स्वच्छंद रूप है। कहानी के अनंत प्रकार अलिखित रूप में चलते हैं। दृष्टांत, चुटकुले, हँसी-मजाक, साहसिक वर्णन, परियों की कथाएँ आदि न जाने कितने रूप में कहानी हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक काल में घुली-मिली रहती है। इसके अतिरिक्त स्वयं हममे से प्रत्येक व्यक्ति सैकड़ों कहानियों के बीच से गुजरता है। कहानी प्राणवायु की तरह जान पड़ती है, इसलिए यह साहित्यिक चेष्टा का अभिन्न अंग भी है।"[१] हिन्दी कहानी के उद्भव और विकास को विद्वानों ने भिन्न-भिन्न कालखण्डों में विभाजित किया है जिनमें व्यापकता के आधार पर प्रेमचन्द पूर्व युग, प्रेमचंद युग एवं प्रेमचंदोत्तर युग को अधिक स्वीकृति मिली है। बीसवीं सदी हिन्दी कहानी के विकास का पहला पायदान है, जिसमें इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी', किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमती', माधवराव सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी', बंग महिला की 'दुलाईवाली', रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' और राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द की 'राजा भोज

* **सहायक प्रध्यापक, हिन्दी विभाग, संताल परगना महाविद्यालय, दुमका, झारखंड**

का सपना' कहानियों से हिंदी कहानी की नींव रखी गयी। इस नींव पर मजबूत निर्माण का कार्य अनेक साहित्यकारों/ कहानीकारों ने किया, जिनमें प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, शिवपूजन सहाय, जैनेंद्र, यशपाल, अज्ञेय, इलाचंद जोशी, मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, मन्नु भंडारी, ममता कालिया, रवींद्र कालिया, उदय प्रकाश, महीप सिंह, हिमांशु जोशी एवं कमलेश्वर आदि के नाम सामने आते हैं। इन्हीं कहानीकारों में सुदर्शन का नाम सम्मान से लिया जाता है। सुदर्शन की कहानियों के कथ्य में सत्य को उजागर करने की क्षमता, लोकमंगल प्रवृत्ति, पूँजीवादी, सामन्ती और व्यक्तिगत लाभ के पथ पर चल रही व्यवस्था के प्रति आक्रोश के प्रतिपादन से उन्हें दूसरे कहानीकारों से अलग सम्मान मिलता है।

पश्चिमी पंजाब के स्यालकोट नमक नगर में जन्म लेनेवाले सुदर्शन का वास्तविक नाम बदरीनाथ है, लेकिन साहित्य संसार में आपका सुदर्शन नाम ज्यादा प्रचलित हुआ। सुदर्शन ने हिन्दी की विविध रचनाओं में सृजन कर साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आपकी कहानियों के कथ्य समाज के यथार्थ को अभिव्यक्ति देकर समाज में परिवर्तन के लिए नवीन उर्जा का संचार करते हैं। 'पुष्पलता', 'सुदर्शन सुधा', 'सुदर्शन सुमन', 'तीर्थयात्रा', 'चार कहानियाँ', 'पनघट', 'नगीना', 'अंजना', 'भाग्यचक्र', 'सिकन्दर', 'झरोखे', आपकी खास-खास पुस्तकें हैं।

सुदर्शन की कहानियों के कथ्य समाज के आर्थिक सामाजिक तथा राजनैतिक सभी पक्षों का यथार्थ चित्रण करते हैं अर्थात् सुदर्शन की कहानियाँ समाज के सभी परिप्रेक्ष्यों का उद्घाटन करती हैं। भ्रष्टाचार, शोषक-शोषितों की स्थितियों में नई ऊर्जा का संचार, उपेक्षित किए जा रहे वर्ग की जीवनधारा को संचरित करना, नारी जीवन को ऊँचाइयों की ओर अग्रसर करना आदि सभी विषय सुदर्शन के दृष्टिकोण से सामाजिक परिवर्तन के महत्त्व को स्थापित करते हैं।

'सुदर्शन' की 'हार की जीत' कहानी काफी चर्चित रही। इस कहानी में एक अजनबी को मनुष्यता के साँचे में ढाले जाने का चित्रण किया गया है। इस कहानी का पात्र बाबा भारती तथा खड्ग सिंह है। बाबा भारती एक सीधे, सच्चे तथा दयालु संत हैं तथा खड्ग सिंह उतना ही क्रूर तथा अन्यायी डाकू है। बाबा भारती ने अपनी इसी संत प्रवृत्ति का परिचय देते हुए एक अपाहिज की सहायता की जो कि डाकू खड्ग सिंह था। उसने बड़ी ही निर्ममता से घोड़े सुल्तान को बाबा भारती से छीन लिया। उस समय बाबा भारती के यही वो वाक्य थे जिसने खड्ग सिंह के हृदय को एकदम से परिवर्तित कर दिया – "लोगों को यदि इस घटना का पता लग गया, तो वे किसी गरीब पर विश्वास न करेंगे।"[२] इन्हीं शब्दों ने खड्ग सिंह की आत्मा को झकझोर कर जगाया तथा उसे मनुष्यत्व की राह पर लाकर खड़ा कर दिया। यही घटनाएँ इस कहानी के सार्थकता को भी साबित करती है। बाबा भारती सुल्तान को खोकर भले ही हार गए परंतु खड्ग सिंह के भीतर जो मनुष्यता जागी वही उनकी सबसे बड़ी जीत थी। सुदर्शन न परंपरा को त्यागते हैं न ही बदलती परंपराओं का अंधानुकरण करते हैं बल्कि उसके भीतर स्थित क्षमता का प्रयोग करते हैं।

सुदर्शन की कहानियों में हमें युग की स्पष्ट प्रतिध्वनि सुनाई देती है। समाज के दमन, शोषण और उत्पीड़न का सुंदर यथातथ्य चित्रण मिलता है। उदाहरण स्वरूप हम उनके 'अठन्नी के चोर' कहानी को देख

सकते हैं। यह कहानी मध्यवर्ग के प्रति सामाजिक व्यवस्था के एक अंतर्विरोध को बहुत ही तल्ख रूप में उजागर करती है। न्यायधीश और इंजीनियर हजारों रुपये की रिश्वत लेकर भी समाज में आदर सम्मान पाते हैं और रसीला अठन्नी की चोरी के लिए जेल की सजा भुगतता है। तभी तो रमजान कहता है – "यह दुनिया न्यायपुरी नहीं अंधेर नगरी है। यहाँ चोर मालिक गिरफ्तार कराता है, चोर सिपाही गिरफ्तार करता है, चोर हाकिम सजा देते हैं। रसीला चोर इसलिए है कि उसका अपराध प्रकट हो गया। परन्तु उन सभ्य चोरों को, उन असली डाकुओं को जो अपने घरों में बैठकर आराम से दूसरों का धन हथियाते हैं, कोई नहीं पूछता।"[३] इस प्रकार से मजदूर वर्ग के जीवन पर आधारित उनकी कहानी 'मजदूर' है, जिसका मुख्य पात्र एक मजदूर ही है। इस कहानी में मिल-मालिकों के शोषण के शिकार, कर्ज के बोझ से लदे, हर प्रकार से विवश मजदूरों के जीवन का प्रभावशाली चित्रण किया गया है। इसमें मजदूर की पत्नी की मृत्यु के रूप में संवेदना का एक संकेन्द्रित क्षण भी है, जो पाठक को भीतर से झकझोर कर रख देता है। सुदर्शन कहानियों के माध्यम से वर्तमान समय में जीवनमूल्यों के क्षरण का प्रमुख कारण पूँजीवादी समाज में बढ़ते भ्रष्टाचार को मानते हैं, जिसके कारण संपूर्ण सामाजिक ढाँचा चरमरा गया है। आम आदमी की समस्याएँ सभी पूँजीवादी वर्ग के सत्ताधारियों को पता है लेकिन उनके अंदर मानवीय संवेदनाएँ इतनी शून्य हो गई हैं कि उन्हें निम्नवर्गीय समाज की दयनीय स्थिति पर हँसने तथा मूक दर्शक बने रहने के सिवाय दूसरा विकल्प नजर नहीं आता है।

'काया-पलट' नामक कहानी के माध्यम से सुदर्शन ने नारी की समाज में वास्तविक स्थिति को प्रकट करने का प्रयास किया है। उन्होंने बताया है कि जो नारी अपने आप को बेचारी और असहाय समझती है उसके लिए समाज या उसके लोग उपयुक्त नहीं हैं वे उसे कुचलकर दबाकर और भी नीचे गिराने का प्रयत्न करेंगे। अतः आपको सबल और निर्भय होकर इस समाज में जीना होगा। तभी समाज के लोग आपको जीने योग्य समझेंगे। इस कहानी में भी सुदर्शन ने दो तरह के नारीपात्र को हमारे समक्ष रखा है – एक है रक्षा जो गाँव की सीधी-साधी कन्या है तथा अपने आपको निर्बल समझती है, तो दूसरी ओर सावित्री है जो सामाजिक रीति-रिवाजों एवं बन्धनों से एकदम मुक्त है तथा एक सबल नारी पात्र है। रक्षा अपनी परम्पराओं के बन्धन के कारण अपने पति से बिछुड़ जाती है क्योंकि उसने लड़के के चेहरे को नहीं देखा था तथा यात्रा के दौरान उसके पति ने भी रक्षा के चेहरे को नहीं देखा था। इस कारण रक्षा विपत्ति में फँस जाती है तथा सावित्री के निर्भीकता एवं साहस के कारण दुबारा सही सलामत अपने पति से मिल पाती है।

'प्रेमतरु' शीर्षक कहानी में सुदर्शन ने लोगों के रूढ़ियों एवं अंधविश्वास को व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। यह कहानी एक निर्धन ब्राह्मण जोड़े जयचंद एवं सुलक्खी की है। ये नि:संतान थे अतः अपने आँगन के बेरी के छोटे से पौधे को अपना पुत्र मान बैठते हैं। इसी पेड़ के कारण सीधी-साधी सुलक्खी एक मूर्ख हठी जाट के क्रोध का शिकार हो जाती है। लोगों ने उस स्थान को सुलक्खी देवी की समाधि बना दी तथा उसे पूजने लगे। लोगों ने इस अंधविश्वास को इतना बढ़ावा दिया कि लोग बेर खाने से पहले सुलक्खी देवी को चरणों में अर्पित करते हैं, किसी भी शुभ कार्य से पहले यहाँ पूजा-अर्चना करते हैं। यह एक तरह से इस गाँव की परंपरा बन चुकी है।

सुदर्शन की कहानी 'पतितोद्धार' को पढ़ने पर हमें यह ज्ञात होता है कि पतित दो प्रकार के हो सकते हैं एक तो सामाजिक वर्ण व्यवस्था के आधार पर तथा दूसरा अपने कर्म के आधार पर। अतः एक वेश्या की बेटी को भी हम पतित की श्रेणी में रख सकते हैं। हमें प्रशंसा करनी होगी सेठ सदासुख के एकमात्र पुत्र दीनानाथ की जिसने सामाजिक पतितों के उद्धार के लिए तो कार्य किया ही साथ ही वेश्या की बेटी के उद्धार के लिए वह अपने बाप तथा समाज से लड़ गया। तमाम दु:खों एवं कष्टों को झेलता हुआ वह उस वेश्या की लड़की को उस वेश्यालय से निकलता है तथा सम्मान की जिंदगी देता है। उसके इस साहसिक कार्य में उसके मित्र सत्यपाल एवं डिप्टी साहब तथा उनकी पत्नी ने मानवीयता के नाते उसकी सहायता की। अत: हम यह कह सकते हैं कि दीनानाथ ने एक वेश्या की लड़की से शादी कर उसे सम्मान की जिंदगी देकर असली पतितोद्धार का कार्य किया।

इस प्रकार हम पाते हैं कि सुदर्शन ऐसे कथाकार हैं जिनकी कहानियों में समाज का यथार्थ स्वरूप किसी न किसी रूप में चित्रित हुआ है। इन कहानियों को पढ़ते समय ऐसा लगता है कि कथ्य हमारे ही आसपास के वातावरण से सम्बन्धित हैं तथा कथा के पात्र कहीं न कहीं हमसे भी सम्बद्ध लगते हैं। सुदर्शन कहानियों के माध्यम से जनसामान्य की समस्याओं को उठाते हैं, उनके समाधान के लिए नवीन ऊर्जा का संचार करते हैं तथा अन्याय के खिलाफ़ पूरी ताकत से लड़ने का साहस आम जनता को देने का प्रयत्न करते हैं। अत: समाज के यथार्थ की अभिव्यक्ति में सुदर्शन की कहानियाँ खरी उतरती है।

निष्कर्ष

सुदर्शन की कहानियाँ हिन्दी साहित्य में सामाजिक यथार्थ की सशक्त अभिव्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने अपने कथ्य में समाज के विभिन्न वर्गों की समस्याओं—चाहे वह मजदूर वर्ग का शोषण हो, नारी की असमान स्थिति, भ्रष्टाचार का प्रसार, या रूढ़िवादी सोच—को बिना किसी संकोच के उजागर किया। उनकी कहानियाँ न केवल यथार्थ का चित्रण करती हैं, बल्कि उनमें सामाजिक परिवर्तन की संभावना और नैतिक पुनर्जागरण का संदेश भी निहित है। सुदर्शन के पात्र जीवंत, परिस्थितियों से जुड़े और मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण हैं, जो पाठक को सोचने, संवेदित होने और बदलाव की दिशा में प्रेरित करते हैं। इस प्रकार, सुदर्शन एक ऐसे कहानीकार हैं जिनकी रचनाएँ साहित्यिक सौंदर्य के साथ-साथ सामाजिक जिम्मेदारी का निर्वाह करती हैं।

संदर्भ:

1. वर्मा, धीरेन्द्र (संपा.). (1958). *हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1 (पारिभाषिक शब्दावली)*. वाराणसी: ज्ञानमण्डल लिमिटेड.
2. राय, कृष्णदास, & पाठक, वाचस्पति (संपा.). (1965/1966). *इक्कीस कहानियाँ*. इलाहाबाद: भारती भंडार.
3. सुदर्शन. (1957). *सुदर्शन-सुधा: शिक्षाप्रद और मनोरंजक मौलिक कहानियाँ* (4था सं.). बंबई: वोरा एण्ड कम्पनी.
4. सुदर्शन. *सुदर्शन सुमन*. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.
5. सुदर्शन. *पुष्पलता*. बंबई: एम. क. वोरा, वोरा एण्ड कम्पनी.

NOTES FOR AUTHORS

PADCHINHA: Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

1. Submissions

Authors should send all submissions and resubmissions to padchinhahindi@gmail.com or gandhikhadi@gmail.com some articles are dealt with by the editor immediately, but most are read by outside referees. For submissions that are sent to referees, we try to complete the evaluation process within one month. As a general rule, Padchinha operates a double-blind peer review process in which the reviewer's name is withheld from the author and the author's name is withheld from the reviewer. Reviewers may at their own discretion opt to reveal their name to the author in their review, but our standard policy is for both identities to remain concealed.

Absolute technical requirements in the first round are: ample line spacing throughout (1.5 or double), an abstract, adequate documentation using the author-date citation system and an alphabetical reference list and a word count on the front page (include all elements in the word count). Regular articles are restricted to an absolute maximum of 10,000 words, including all elements (title page, abstract, notes, references, tables, biographical statement, etc.).

2. Types of articles

In addition to Regular Articles, Padchinha publishes the Viewpoint column with research-based policy articles, Review Essays, Book Review and Special Data Features.

3. The manuscript

The final version of the manuscript should contain, in this order:

(a) title page with name(s) of the author(s), affiliation

(b) Abstract

(c) Main text

(d) List of references

(e) Biographical statement(s)

(f) Tables and figures in separate documents

(g) Notes (either footnotes or endnotes are acceptable)

Authors must check the final version of their manuscripts against these notes before sending it to us.

The text should be left justified, with an ample left margin. Avoid hyphenation. Throughout the manuscripts, set line spacing to 1.5 or double.

The final manuscript should be submitted in MS Word for Windows.

4. Language

Padchinha is a Bilingual Journal, i.e. English and हिंदी. The main objective of an academic journal is to communicate clearly with an international audience.

Elegance in style is a secondary aim: the basic criterion should be clarity of expression. We allow UK as well as US spelling, as long as there is consistency within the article. You are welcome to indicate on the front page whether you prefer UK or US spelling.

5. The abstract

The abstract should be in the range of 200-300 words. For very short articles, a shorter abstract may suffice. The abstract is an important part of the article. It should summarize the actual content of the article, rather than merely relate what subject the article deals with. It is more important to state an interesting finding than to detail the kind of data used: instead of 'the hypothesis was tested', the outcome of the test should be stated. Abstracts should be written in the present tense and in the third person (This article deals with...) or passive (... is discussed and rejected). Please consider carefully what terms to include in order increasing the visibility of the abstract in electronic searches.

6. Title and headings

The main title of the article should appear at the top of pg. 1, followed by the author's name an institutional affiliation. The title should be short, but informative. All sections of the article (including the introduction) should have principal subheads. The sections are not numbered. This makes it all the more important to distinguish between levels of subheads in the manuscripts – preferably by typographical means.

7. Notes

Notes should be used only where substantive information is conveyed to the reader. Mere literature references should normally not necessitate separate notes; see the section on references below. Notes are numbered with Arabic numerals. Authors should insert notes by using the footnote/endnote function in MS Word.

8. Tables

Each Table should be self-explanatory as far as possible. The heading should be fairly brief, but additional explanatory material may be added in notes which will appear immediately below the Table. Such notes should be clearly set off from the rest of the text. The table should be numbered with a Roman numeral, and printed on a separate page.

9. Figures

The same comments apply, except that Figures are numbered with Arabic numerals. Figure headings are also placed below the Figure. Example: Figure 1.

10. References

References should be in a separate alphabetical list; they should not be incorporated in the notes. Use the APA form of reference.

11. Biographical statement

The biosketch in Padchinha appears immediately after the references. It should be brief and include year of birth, highest academic degree, year achieved, where obtained, position and current institutional affiliation. In addition authors may indicate their present main research interest or recent (co-)authored or edited books as well as other institutional affiliations which have occupied a major portion of their professional lives. But we are not asking for a complete CV.

12. Proofs and reprints

Author's proofs will be e-mailed directly from the publishers, in pdf format. If the article is co-authored, the proofs will normally be sent to the author who submitted the manuscripts. (Corresponding author). If the e-mail address of the corresponding author is likely to change within the next 6–9 months, it is in the author's own interest (as well as ours) to inform us: editor's queries, proofs and pdf reprints will be sent to this e-mail address. All authors (corresponding authors and their co-authors) will receive one PDF copy of their article by email.

13. Copyright

The responsibility for not violating copyright in the quotations of a published article rests with the author(s). It is not necessary to obtain permission for a brief quote from an academic article or book. However, with a long quote or a Figure or a Table, written permission must be obtained. The author must consult the original source to find out whether the copyright is held by the author, the journal or the publisher, and contact the appropriate person or institution. In the event that reprinting requires a fee, we must have written confirmation that the author is prepared to cover the expense. With literary quotations, conditions are much stricter. Even a single verse from a poem may require permission.

IIFS IMPACT FACTOR

CERTIFICATE OF ACKNOWLEDGEMENT

This is certified that our evaluator evaluated the Journal "**Padchinha"** E/P-ISSN **2231-1351** and the journal got the Impact Factor **8.0** and the process adopted for the evaluation of the journal is blind.

This Impact Factor/Evaluation is Valid up to **16/7/2026** .

Team IIFS
INDIA

Visit Us: http://impactfactorservice.com/